ओ३म्

महर्षि याज्ञवल्क्य प्रणीत

शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ

काण्ड १-२

काण्ड १— हविर्यज्ञ दर्श-पौर्णमास।
काण्ड २—एकपादिका [अग्न्याधानम्, पुनराधेयम, अग्निहोत्रम्, पिण्डपितृयज्ञ: आग्रयणेष्टि:, दाक्षायणयज्ञ:, चातुर्मास्यानि।]

अनुवादक—
आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम. ए. काव्यतीर्थ,

प्रकाशक— विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७; महानगर, लखनऊ ६
मार्गशीर्ष पूर्णिमा २०४२ वि०, २७-१२-१९८५ ई०।
मूल्य दो काण्ड २०) बीस रुपये।

शतपथ का समर्पण

शतपथ के प्रथम अनुवादक स्व. गङ्गाप्रसाद उपाध्याय के सुपुत्र

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

की सेवामें सादर समर्पित

विनीत-- वीरेन्द्र

❀ ओ३म् ❀

महर्षि याज्ञवल्क्य-प्रणीत

वाजसनेयि माध्यन्दिन यजुर्वेदी

शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ काण्ड १

यजुर्वेद याज्ञिक अर्थ

अध्याय १ के ३१ और अध्याय ३ के २८ मन्त्र

[सरल हिन्दी अनुवाद]

❀ हविर्यज्ञ [दर्श-पौर्णमास] नामक प्रथम काण्ड ❀

अनुवादक तथा प्रस्तावना-लेखक—

वेदभाष्यकार आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री, एम० ए०, काव्यतीर्थ,

प्रकाशक—विश्व वेदपरिषद्

वेदसदन, सी ८१७ महानगर, लखनऊ उ० प्र०, पिन २२६००६

मुद्रक— आदर्श प्रेस लखनऊ। दूरवाणी ७३५०१

मूल्य सम्पूर्ण १४ काण्ड १५०), अग्रिम १००), एक काण्ड १०)

प्रथमवार २५० प्रतियाँ; वैशाख पूर्णिमा २०४२ वि०, ४-५-१९८५ ई०

वेद-सृष्टिसंवत् १९६०८५३०८६

अनुवादक का परिचय

पूर्वजों का स्थान—असहत (बदायूँ), जन्मस्थान—हाथरस (अलीगढ़) शिक्षास्थान—बरेली, वर्तमान—लखनऊ। माता-श्रीमती वासन्ती देवी, पिता—श्री हरिशङ्कर अग्निहोत्री, प्रधानाध्यापक डी०ए० वी० मैनपुरी और सरस्वती विद्यालय बरेली। अग्निहोत्री उपाधि आर्यसमाज ने दी।

जन्म-तिथि— आषाढ शुक्ल ५, १९७२ वि०, १-७-१९१५ ई०। आयु— ७० वर्ष। पत्नी- श्रीमती विमला शास्त्री। १ बहिन, तीन पुत्र।

शिक्षा—१२ की आयु में अष्टाध्यायी कण्ठस्थ, १५ में शास्त्री, यजुर्वेद कण्ठस्थ। २१ में आचार्य, २२-२४ की आयु में एम०ए० संस्कृत-हिन्दी। गुरु- श्री बुद्धदेव शास्त्री, रामचन्द्र सिद्धान्तालङ्कार, बिहारीलाल शास्त्री।

सेवा—स० रजिस्ट्रार ग० सं० का० परीक्षा, स० निरीक्षक सं० पा० उ. प्र, वाराणसी, प्रिंसिपल गव० कालेज, जिला विद्यालय निरीक्षक।

साहित्यिक कार्य— सम्पादक 'संघ' बरेली, वेदवाणी एवं देव-वाणी वाराणसी तथा वेदज्योति लखनऊ। सामवेद हिन्दी-अनुवाद, यजुर्वेद पुरुषसूक्त-ईशोपनिषद्-व्याख्या, भारतवर्षस्य भूगोल-शास्त्रम्, ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ हिन्दी-अनुवाद, योगदर्शन हिन्दी-व्याख्या; धर्म-शिक्षा ५भाग, स्वास्थ्यशिक्षा, संस्कृत-वाक्य-प्रबोध, संस्कृतबोधकलिका, वेदाङ्गशिक्षा, वेदाङ्गछन्दःशास्त्रम्, सत्यार्थसार, दीपावलीपर्वपरिचय, यज्ञ की सामान्य विधि,। अष्टाध्यायी-निरुक्त-शतपथ हिन्दी-अनुवाद छप रहे हैं। अथर्ववेद-यजुर्वेद-ऋग्वेद हिन्दी-अनुवाद, वेदों में क्या है, सत्यार्थ-मन्त्र-व्याख्या, ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका-महाभाष्य वेद-विषय-विचार, वेदार्थपारिजात-खण्डनम् अप्रकाशित हैं।

सामाजिक कार्य— सौ से अधिक वेद-पारायण-यज्ञ, दर्श-पूर्ण-मास-आग्रयणेष्टि आदि का सम्पादन, वेद-प्रवचन-वेद-कथा-शास्त्रार्थ वेद-संस्कृत-योग-शिविरों तथा वेद-सम्मेलनों का आयोजन, परीक्षा-सञ्चालन, सार्वदेशिक विद्यार्य-सभा का मन्त्रित्व तथा विश्व वेद-परिषद् की अध्यक्षता और निःशुल्क वैदिक-होम्यो-चिकित्सा।

—❀— —वीरेन्द्र मुनि

प्रथम काण्ड की सूची

—ॐ—

शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ

ब्राह्मण ग्रन्थोंमें सबसे अधिक महत्त्वशाली विपुलकाय तथा यागानुष्ठान का सर्वोत्तम प्रतिपादक ग्रन्थ यही है शतपथ ब्राह्मण। शुक्लयजुर्वेद की उभय शाखाओं – माध्यन्दिन तथा काण्व शाखाओं में– यह उपलब्ध होता है। विषय की एकता होने पर भी उसके वर्णन क्रम तथा अध्यायों की संख्या में यहाँ अन्तर पड़ता है। माध्यन्दिन शतपथ में काण्डों की संख्या १४, अध्याय १००, प्रपाठक ६८, ब्राह्मण ४३८ तथा कण्डिका ७६२४ हैं। काण्व शतपथ में प्रपाठक नामक उपखण्ड का अभाव है तथा काण्डों की संख्या १७, अध्याय १०४, ब्राह्मण ४३५ तथा काण्डिका६८०६ हैं। माध्यन्दिन शतपथ में प्रथम काण्ड से आरम्भ कर नवम काण्ड तक पिण्डपितृयज्ञ को छोड़कर विषयोंका क्रम माध्यन्दिन संहिताके अनुसार ही है। पिण्ड-पितृयज्ञ का वर्णन संहिता में दर्शपौर्णमास के अनन्तर है परन्तु ब्राह्मण में आधान के अनन्तर है, यही अन्तर है। अवशिष्ट कांडों में भी संहिताका क्रम अंगीकृत किया गया है। दोनों शतपथोंकेआरम्भमें एक अन्तर दृष्टिगोचर होता है। माध्यन्दिनशतपथ के प्रथम काण्डका विषय (दर्शपूर्णमासेष्टि) काण्व के द्वितीय काण्ड में है और द्वितीय काण्डका विषय [आधान, अग्निहोत्र] काण्व के प्रथम काण्ड में ही समाविष्ट है। अन्यत्र विषय उतने ही हैं परन्तु उनका क्रम दोनों में भिन्न भिन्न है।

माध्यन्दिन शतपथ के प्रथम काण्ड में दर्शपूर्णमास इष्टियों का तथा द्वितीय काण्ड में आधान, अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, आग्रयण और चातुर्मास्य का वर्णन है। सोमयाग के नाना यागों के विवरण से सम्बद्ध तृतीय व चतुर्थ कांड हैं। पंचम कांड में वाजपेय और राजसूय याग का विवेचन है ६ से १० कांड तक उखा सम्भरण, विष्णुक्रम, वनीवाहनकर्म [६ में], चयन का सम्पूर्ण वर्णन [७ व ८ में], शतरुद्रीय होम[९ में] तथा चिति सम्पत्ति और उपनिषद रूप से अग्नि की उपासना का वर्णन[१० कांड में]

किया गया है। प्रथम काण्ड पञ्चक में याज्ञवल्क्य का, जो चतुर्दश काण्ड में समस्त शतपथ के कर्ता माने गये हैं, प्रमाण्य सर्वातिशायी है परन्तु द्वितीय काण्ड पञ्चक [६–१० कांड] में याज्ञवल्क्य का नाम निर्देश न होकर शाण्डिल्य ऋषि का प्रामाण्य निर्दिष्ट है। यही शाण्डिल्य दशम कांड में वर्णित 'अग्निरहस्य' के प्रवक्ता बतलाए गए हैं। अन्तिम काण्ड चतुष्टय [११–१४काण्ड]में अनेक नवीन विषयों का विवेचन उपलब्ध होता है जो साधारण रूपसे ब्राह्मणों में विवेचित तथा संकेतित नही होते। ऐसे विषयों में कतिपय महत्त्वशाली विषय ये हैं। — उपनयन [११५.४],स्वाध्याय जो ब्रह्मयज्ञ के रूप में स्वीकृत किया गया है [११.५.६-८], और्ध्वदैहिक क्रियाओं का अनुष्ठान [१३.८] अश्वमेध, पुरुषमेध तथा सर्वमेध का विशद विवेचन १३वें काण्ड में तथा प्रवर्ग्य याग का वर्णन १४वें काण्ड में किया गया है। शतपथ के अन्त में बृहदारण्यक उपनिषद् है।

शतपथ का विषय वर्णन

शतपथ ब्राह्मण की महत्ता इस घटना से है कि वह विभिन्न प्रकार के यज्ञयागों का बड़ा ही सांगोपांग तथा पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है जो अन्य ब्राह्मणों में दुर्लभ है अथवा मात्रा में बहुत न्यून है। यज्ञका आरम्भ वैदिक युग के आरम्भ काल से है। पहले यज्ञ का विधान संक्षेप में ही होता था, परन्तु कालान्तर में यज्ञ संस्था बहुत ही विस्तृत बन गई। विभिन्न अंशों के यथावत् अनुष्ठान पर बल दिया जाने लगा। ब्राह्मणयुग यज्ञ संस्था के विकास का युग है जिसका परिचय हमें विभिन्न ब्राह्मणों से लग सकता है। इस ब्राह्मण साहित्य का भी, अपने वर्ण्य विषयों के विस्तार, विचार तथा विवरण के कारण शत-पथ ब्राह्मण मुकुट मणि माना जाता है।

शतपथ ब्राह्मण का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद (वाजसनेयी संहिता से)

है। इसलिए संहिता में निर्दिष्ट इष्टि और याग उसी क्रम से यहाँ भी उल्लिखित हैं। शतपथ के प्रथम ६ काण्डों में वाजसनेयी संहिताके प्रथम १८ अध्यायों की यज्ञपरक व्याख्या है जिसमें ब्राह्मणोचित आख्यायिकाओं का भी यथा स्थान निवेश यज्ञ के शुष्क वर्णनों को सजीव तथा रोचक बना देता है। इष्टियों में दर्श-पूर्णमास प्रधान दर्श-पूर्णमास इष्टि प्रत्येक अमावस्या तथा पूर्णिमा के अनन्तर प्रतिपद में होती है। इनके प्राधान्य के कारण इनका सांगोपांग विवरण शतपथ के प्रथम काण्ड में दिया गया है। इन इष्टियों के उपयुक्त मन्त्रों का निर्देश यजुर्वेद संहिता के प्रथम अध्याय की पंचम कण्डिका से लेकर द्वितीय अध्याय की २८ वीं कण्डिका तक किया गया है।

द्वितीय काण्ड में अग्निहोत्र का वर्णन प्रथमतः है। प्रत्येक आर्य गृहस्थ के लिए अग्नि का आधान करके उसमें प्रातः और सायं हवन करने की विधि है। इसी का नाम 'अग्निहोत्र' है। 'पिण्ड पितृयज्ञ' पितरों की तृप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। 'नवान्नेष्टि' में अगहन के महीने में नये अन्न के उत्पन्न होने पर उसी से हवन का विधान है। 'चातुर्मास्य' भी एक विशिष्ट याग है। पूर्वोक्त चारों यागों का विवरण शतपथ के द्वितीय कांड में प्रस्तुत मिलता है।

तृतीय और चतुर्थ काण्ड का विषय सोमयाग है। सोमयाग में सोमलता को कूटकर उसका रस निकालते हैं और उसमें गाय का दूध तथा मधु मिलाकर उचित समय पर देवों के निमित्त अग्नि में हवन करते हैं। सोमयाग का प्राकृतिभूत याग 'अग्निष्टोम' कहलाता है जिसके उपयोगी मन्त्रों का संकलन वाजसनेयी संहिता के चौथे अध्याय से आरम्भ कर ८वें अध्याय की ३२वीं कण्डिका तक किया गया है। प्रकृतियाग होने के कारण 'अग्निष्टोम' का वर्णन तृतीय काण्ड में तथा इसकी विकृति होने वाले ज्योतिष्टोम आदि इतर सोमयागों का वर्णन चतुर्थ काण्ड में किया गया है। पंचम काण्ड में

वाजपेय तथा राजसूय का विस्तृत विवरण है। राजसूय एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण याग है जिसका मूर्धाभिषिक्त नरेश ही अधिकारी होता है। अभिषेक प्राचीन भारत में राजनैतिक आधिपत्य का सूचक एक महनीय व्यापार था। षष्ठ काण्ड से लेकर दशम काण्ड तक अग्नि-चयन का विशिष्ट और विस्तृत विवरण है। इन काण्डों में शाण्डि-ल्य का प्रामाण्य विशेष रूप से स्वीकृत है और उनकी सम्मति बड़े आदर के साथ उद्धृत की गई है। इन शाण्डिल्य काण्डों में गान्धार, केकय और शाल्व जनपदों का उल्लेख किया गया है; जबकि इतर काण्डों में आर्यावर्त के मध्यभाग के निवासियों– कुरुपांचाल, कोशल-विदेह, सृञ्जय आदि – का उल्लेख मिलता है। इससे डा० मैक्डो-नल्ड ने निष्कर्ष निकाला है कि इन काण्डों के रचयिता याज्ञवल्क्य न होकर शाण्डिल्य हैं। परन्तु वस्तुतः स्थिति ऐसी नहीं प्रतीत होती है। प्राच्य लोगों के उल्लेख से यही जान पड़ता है कि याज्ञवल्क्य विदेह के निवासी थे और विदेह के राजा जनक उनके शिष्य थे। सम्भवतः शाण्डिल्य का सम्बन्ध उत्तर पश्चिम के प्रान्तों से था और इसीलिए उनके निर्देश के संग में इन जनपदों का उल्लेख स्वाभाविक प्रतीत होता है।

आर्य निवास के तीन खण्डों में इस समय पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध का अभाव न था। ये तीन प्रान्त थे –(क)गान्धार–पंजाब, (ख)कुरु-पांचाल और मध्यदेश, (ग) पूर्वीभाग, विदेह और कौशल। ब्राह्मणोंमें स्पष्ट वर्णन है कि व्याकरण का अध्ययन उत्तरी भाग में विशेष रूप से किया जाता था और कर्मकाण्ड का मध्यदेश में। वैयाकरण पाणिनि का जन्म स्थान गान्धार प्रान्त के शालातुर नामक स्थान में था तथा कुरु-पांचाल आर्य संस्कृति के विकास का क्षेत्र था। इन बातोंकी संगति पूर्णरूपसे जमती है। फलतः शाण्डिल्य के प्रामाण्य का उल्लेख होने पर भी इन कांडों की भी रचना का श्रेय याज्ञवल्क्य को ही देना उचित प्रतीत होता है।

शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम ४ काण्डों की विषय-वस्तु शुक्ल संहिता के आधार पर है। ११ वें काण्ड में पञ्चमहायज्ञ, पशुबन्ध [दुष्टों का बन्धन] और दर्श-पूर्णमास के अवशिष्ट विधानों का वर्णन है। भूतयज्ञ, मनुष्य-यज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ— ये प्रख्यात यज्ञ महायज्ञ के रूप में यहाँ अंकित हैं(११।५।६)। स्वाध्याय वेद का अध्ययन —ब्रह्मयज्ञ का ही रूपान्तर है जिसकी यहाँ [११।५।७ में] भूयसी प्रशंसा बड़ी ही आलंकारिक शैली में की गई है। ऋक् का अध्ययन देवों के लिए दुग्ध आहुति है, यजुष् का आज्याहुति, साम का सोमाहुति, अथर्वांगिरस का मेद आहुति [अन्न द्वारा शरीर को पुष्ट करना] और अनुशासन[वेदांग विद्या, वाको-वाक्य, इतिहास-पुराण और नराशंसी गाथाओं का अध्ययन देवों के लिए मधु की आहुति है। और इसलिए शतपथ का वेद और वेदांग के अनुशीलन के लिए बड़ा ही बलवान् आग्रह है। अनेक प्रमाणों से 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' का समर्थन इस काण्ड का महिमामय सिद्धान्त है।

द्वादश काण्ड में द्वादशाह क्रतु, द्वादश सत्र, संवत्सरसत्र, सौत्रामणी और और्ध्वदेहिक अनुष्ठान का विस्तृत वर्णन है। जो यज्ञ आरम्भ के दिन से लेकर लगातार १२ दिनों तक चलते हैं,उन्हें क्रतु कहते हैं। अधिक दिनों (६ मास या कई सालों)तक चलने वाले यज्ञों को 'सत्र' कहते हैं। द्वादशाह दो प्रकार का होता है - सत्र और अहीन। द्वादशाह और सवत्सरसत्र [वर्ष भर चलने वाला यज्ञ]के अनन्तर सौत्रामणि नामक प्रख्यात याग का विवरण कुछ विस्तार के साथ किया गया है [१२।७।१]। इस याग के आध्यात्मिक रूप का भी विवेचन बड़ा मार्मिक है (१२।९।१)।

१३वें कांड में अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध और पितृमेध का विवरण है। मूर्धाभिषिक्त राजा को ही अश्वमेध करने का अधिकार है। अश्वमेध अनेक दिनोंमें व्याप्त होनेवाला याज्ञिक विधान है जिसमें राष्ट्र रूपी यज्ञीय अश्व के संगठन का विधान है।

१४वें काण्ड में प्रवर्ग्य का वर्णन है। अन्तिम ६ अध्यायों में [चौथे से लेकर ९ वें तक] वृहदारण्यक उपनिषद् निबद्ध है।

इस प्रकार यज्ञ के नाना प्रकारों का विस्तृत प्राञ्जल तथा प्रामाणिक विवरण देने में शतपथ ब्राह्मण अद्वितीय है।

यज्ञों का आध्यात्मिक तत्त्व

यज्ञ-कर्म के भीतर नाना कर्मों का अनुष्ठान पाया जाता है और वह एक विशिष्ट क्रम से सम्पन्न होता है। यह क्रम भी सयुक्तिक है। शतपथ ब्राह्मण में इस क्रम के प्रत्येक पदार्थ की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए बड़ी ही उदात्त और प्रांजल व्याख्या की गई है। तथ्य यह है कि भौतिक याग एक प्रतीकात्मक व्यापार है। अन्तर्याग तथा बहिर्याग में पूर्ण सामंजस्य तथा आनुरूप्य है। अग्नि समिन्धन होने पर दो आहुतियां प्रथमतः दी जाती हैं — मन के लिए पहली आहुति पूर्वाधार आहुति कहलाती है और वाक् के लिए दूसरी आहुति उत्तराधार आहुति। भौतिक रथ को ले चलने के लिए जैसे दो अश्वों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार यज्ञचक्र को खींचने के लिए मन और वाक् की आवश्यकता होती है। मन किसी वस्तु का प्रथमतः संकल्प करता है, तब वाक् वचन व्यापार के द्वारा उसका प्रतिपादन करती है। मन-वाक् के बिना संयोग हुए किसी भी कर्म का, विशेषतः यज्ञ जैसे अध्यात्म कर्म का, यथार्थ सम्पादन असम्भव है। इसी दृष्टि से दोनों आहुतियों की निष्पत्ति क्रमशः मन = स्रुव तथा वाक् = स्रुक् नामक पात्रों के द्वारा की जाती हैं।

दो प्रधान तत्त्व हैं— अग्नि और सोम (अग्नि सोमात्मक जगत्) अग्नि है अन्नाद [= अन्न का भक्षण करने वाला पुरुष तत्त्व] तथा सोम है अन्न [उपभोग्य तत्त्व, स्त्री तत्त्व]। इन तत्त्वों का यथार्थ मिलन और सामन्जस्य होने पर ही विश्व का कल्याण सम्पन्न होता है। अग्नि में सोमरस की आहुति देने का यही अभिप्राय है कि अन्नाद तथा अन्न

के परस्पर सम्बन्ध से जगन्मंगल की साधिका सामग्री प्रस्तुत होती है। उपनिषदों में यही तत्त्व प्राण और रयि के नाम से उल्लिखित है। यज्ञ की प्रत्येक छोटी से छोटी प्रक्रिया का भी स्वारस्य इसी मूल तत्त्व की पीठिका में पूर्णतया अभिव्यक्त करने का श्रेय शतपथ ब्राह्मण को है पूर्वाघार की आहुति बैठे ही दी जाती है तथा उत्तराघार की आहुति खड़ेखड़े दी जाती है। इस प्रक्रिया के भीतर विद्यमान तत्त्व का स्पष्टीकरण शतपथ में बड़े विस्तार के साथ किया गया है [१।४।५]। सच तो यह है कि यज्ञ का विधान साधारण दृष्टि से निर्जीव, आडम्बर सा लगता है, शतपथ के अनुशीलन से उसके अन्तर्निहित तत्त्वों का यथार्थतः उन्मीलन होता है।

शतपथ की प्राचीनता

शतपथ ब्राह्मण आजकल उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राचीनतम माना जाता है। भट्टोजी दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी में निर्दिष्ट एक उल्लेख से यह प्राचीन न होकर नवीन प्रतीत होता है। इस तथ्य का क्या कारण है ? अष्टाध्यायी में पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु [४।३।१०५] सूत्र के द्वारा प्रोक्त अर्थ में 'णिन्' प्रत्यय का विधान किया गया है, यदि वह ब्राह्मण या कल्प चिरन्तन ऋषि के द्वारा प्रोक्त किया गया हो। उदाहरण इस सूत्र का है भाल्लविनः तथा शाट्यायनिनः अर्थात् इन उदाहरणों द्वारा भल्लु ऋषि और शाट्यायन ऋषि और उनके द्वारा प्रोक्त ब्राह्मण प्राचीन हैं। प्रत्युदाहरण 'याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि' है अर्थात् याज्ञवल्क्य के द्वारा प्रोक्त ब्राह्मण में णिन् प्रत्यय का इसलिए निषेध है कि वे अर्वाचीन कालके ऋषि थे। भट्टोजिदीक्षित का यह मत प्राचीन वैयाकरणों के मत से नितान्त विरुद्ध होने के कारण उपेक्षणीय है। उन्होंने वररुचि के वार्तिक 'याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधः तुल्यकालत्वात्' की बिल्कुल

उपेक्षा कर दी है। यह वार्तिक स्पष्टतः याज्ञवल्क्य को पूर्व निर्दिष्ट ऋषियों के तुल्य काल (समकालीन) मानता है। पतंजलि ने इस वार्तिकको महाभाष्य में स्वीकार किया है❀ इस विषय की मीमांसा हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचाती है कि वैयाकरणों की दृष्टि में भाल्लवि, तथा शक्टयायन ब्रा० जो आज उपलब्ध नहीं हैं निःसन्देह प्राचीनतम थे और याज्ञवल्ख्य का शतपथ भी इसी काल से सम्बद्ध ग्रन्थ था। भट्टोजीदीक्षित के द्वारा इसे अर्वाचीन मानना कथमपि न्याय नहीं है। नागोजि भट्ट ने 'लघुशब्देन्दुशेखर'में याज्ञवल्क्य को अर्वाचीन मानना दीक्षितजी का अभिमान बतलाया है। अतः दीक्षित-पूर्व और दीक्षित-पश्चात् उभय विध वैयाकरणों के द्वारा शतपथ ब्राह्मण की प्राचीनता अक्षुण्ण ही सिद्ध होती है।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से पश्चिमी विद्वानोंमें शतपथ के विषय में दो मत दिखायी पड़ते हैं। डा० वाकरनागेल पञ्चविंश और तैत्तिरीय को प्राचीनतम मानते हैं, और ऐतरेय एवं शतपथ को अर्वाचीन स्वीकार करते हैं। इसी मत के समान ही मत है डा० ओल्डनबर्ग का जिन्होंने संस्कृत गद्य इतिहास प्रतिपादक अपने ग्रन्थ में प्राचीन उदाहरण तैत्तिरीय से और अर्वाचीन गद्य का नमूना शतपथ से दिया है। डा० कीथ इन मतों के विपरीत हैं। उनके मत में अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा शतपथ प्राचीनतर है। यही मत युक्ति-युक्त प्रतीत होता है। शतपथ स्वरांकित रूप में उपलब्ध है और तैत्तिरीयको छोड़कर अन्य कोई ब्राह्मण स्वरांकित नहीं हैं। शतपथकी प्राचीनता का यह स्पष्ट सूचक है। इसकी स्वरांकन पद्धति सामान्य वैदिक पद्धति से भिन्न है, परन्तु इसका कोई महत्त्व नहीं। वाजसनेयी संहिताकी भी स्वरांकन पद्धति अन्य वेदोंकी पद्धतिसे भिन्न है।

❀ द्रष्टव्य अष्टाध्यायी ४.३.१ का भाष्य।

शतपथ का वैशिष्ट्य

शतपथ अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों से अनेक दृष्टियों में महत्त्वशाली है। जैसा ऊपर वर्णित है इसमें यज्ञ विद्या अपने पूर्ण वैभव के साथ आलोचकों के सामने उपस्थित होती है। यज्ञीय अनुष्ठान के छोटे से छोटे विधि-विधानों का विशद विवरण, इन क्रियाओं के हेतु का निर्देश, प्राचीन आख्यानों का सरस विवेचन— शतपथ के उत्कर्ष बताने के लिये पर्याप्त कारण माने जा सकते हैं, परन्तु इतना ही नहीं यज्ञ के आध्यात्मिक रहस्य का पूर्ण संकेत इस ग्रन्थ में पाया जाता है मण्डलब्राह्मण सूर्यके आध्यात्मिक रूप को दिखाने के लिए जितना समर्थ है उतना ही वह भी भाग है जिसमें यज्ञ के अवान्तर अनुष्ठान कहीं प्रजापति और कहीं विष्णु के प्रतीक रूप में उल्लिखित किए गये हैं। प्राचीन आख्यानोंमें मनु की कथा बड़ी मार्मिक और सरस है। पुराणों में उल्लिखित मत्स्यावतार का बीज इसी कथा में है (शत० १।८।१.१) जिससे पता चलता है कि किस प्रकार जलके ओघ (बाढ़) से मनु ने उस अपूर्व मत्स्य की सहायता के बल पर मानवी-सृष्टि की रक्षा की, मानवों के नष्ट हो जाने पर संचित बीजों के द्वारा यज्ञ से मानव का पुनः प्रादुर्भाव इस भूतल पर हुआ आदि। यह घटना हिमालय के ऊपर घटित हुई थी और मनु के नाव बाँधने का स्थान 'मनोरवसर्पण' के नाम से विख्यात था। इस प्रलयंकारी जलौध की कथा पुरानी बाईबिल में हिब्रू लोगों के बीच भी पायी जाती है। यह कथा शतपथ से ही ली गई है।

आर्यावर्त में आर्यों के प्रसार के वृत्तज्ञान के निमित्त शतपथ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का वर्णन करता है। इसके प्रथम का० (अध्याय ४, ब्रा० १; कण्डिका १०–१७) में माथव विदेघ और उनके पुरोहित गोतम राहूगण ऋषिकी बड़ी रोचक आख्यायिका है।

इसके अनुसार विदेघ माथव सरस्वती के तट पर थे। वहाँ से अग्नि वैश्वानर सब स्थानों को जलाता हुआ पूर्व की ओर उत्तरगिरि [हिमालय] से बहनेवाली 'सदानीरा' नदी तक गया। राजा और पुरोहित अग्नि के पीछे पीछे गये और अपने निवास स्थान के विषय में पूछने पर अग्नि ने 'सदानीरा' [गण्डक] के पूरब प्रदेश में उन्हें रहने की आज्ञा दी। इस कथा में वैदिक धर्म के सारस्वत मण्डल सरस्वती नदी के प्रदेश से पूरब की ओर प्रसार का संकेत है। यहाँ सदा-नीरा से आगे पूरवी प्रान्त प्राचीन काल के ब्राह्मणों के निवास स्थान के लिए अयोग्य बतलाया है। तद्ध अक्षत्रेतर-निवास-स्वादितरमिव अस्वा-दितमग्निना [श० १.४.१.१५] इस घटना के अनन्तर ही वह आर्यप्रदेश बना तथा ब्राह्मणों के निवास योग्य बना। सदानीरा के पार्श्वस्थ भूखण्ड— मिथिला में शतपथ के मान्य राजा जनक का उल्लेख है जिनके प्रधान उपदेष्टा याज्ञवल्क्य मुनि थे। अनेक प्राचीन राजाओं का भी उल्लेख अश्वमेध के प्रसंग में यहाँ किया गया है। दुष्यन्त तथा भरत अश्वमेध कर्ता रूप में उल्लिखित किये गये हैं (शत० १.३.५.४)। महाराज जनमेजय का भी यहाँ निर्देश है। स्मरण रखना चाहिए कि मिथिला के राजाओं की उपाधि ही 'जनक' थी। अतः शतपथ में उल्लिखित जनक को जानकी का जनक बतलाना एकदम निराधार तथा प्रमाण-रहित है। शतपथ में याज्ञवल्क्य के गुरु उद्दालक आरुणि का व्यक्तित्व और पाण्डित्य बड़ा ही आकर्षक है। अनेक शिष्यों की सत्ता उसके व्यक्तित्व को स्पष्टतर बना रही है। —❀—

शतपथ का हिन्दी अनुवाद पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय ने किया था किन्तु वह इस समय उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त उसमें प्रक्षिप्त अंश को न तो अलग किया गया और न उस पर आलोचना की गई अतः उसके आधार पर विधर्मी यज्ञों में पशुहिंसा को सिद्ध करते हैं। अतः यह शुद्ध एवं सरल अनुवाद प्रस्तुत किया जाता है।

— वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

ओ३म्

माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण

❀ हविर्यज्ञम् नाम प्रथमम् काण्डम् ❀

अध्याय १ ब्राह्मण १

❀ दर्श (अमावस्या)-पूर्णमास इष्टि ❀

विधि १, व्रत-ग्रहण— व्रत करना चाहता हुआ मनुष्य आहवनीय और गार्हपत्य अग्नि के मध्यमें पूर्वाभिमुख स्थित होकर जल को छूता है, क्योंकि जो मनुष्य असत्य बोलता है वह अशुद्ध है। जलके छूने से उसकी शुद्धि हो जाती है। जल वस्तुतः शुद्ध है। अतः 'मैं शुद्ध होकर व्रत करूँ'। जल पवित्र है। अतः पवित्र के द्वारा पवित्र होकर मैं व्रत करूँ। अत एव जल को छूता है ॥१॥

वह अग्नि को ही देखता हुआ इस मन्त्र से व्रत लेता है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥ [यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र ५]❀

अर्थ— हे व्रत के रक्षक स्वामी अग्नि (परमेश्वर), मैं व्रत को करूँगा, उसे मैं कर सकूं, वह मेरा सिद्ध हो। मैं असत्य से हट कर सत्य को प्राप्त कर रहा हूं। (यहाँ कुछ छिपा हुआ नहीं है।) ॥२॥

यज्ञ की समाप्ति पर व्रत का विसर्जन करता है—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि।
इदमहं य एवास्मि सोऽस्मि ॥ [य० २।२८]

❀ यजुर्वेद के १–४ मन्त्र अध्याय ७ ब्राह्मण १ में देखिये।

अर्थ—हे व्रतपते अग्नि, मैंने व्रत किया। मैं उसको कर सका। मैं इस योग्य हो सका। वस्तुतः जिसने यज्ञ को समाप्त किया वह व्रत को पाल सका। वह व्रत-पालन के योग्य हो सका। प्रायः यज्ञ करने वाले इसी तरह व्रत करते हैं। इस प्रकार ही व्रत करे ॥३॥

दो ही बातें होती हैं तीसरी नहीं। एक सत्य दूसरी अनृत। देव (विद्वान्) केवल सत्य हैं। मनुष्य अनृत (भी)। यह जो मन्त्र में कहा कि झूठ से सत्य को प्राप्त होऊँ उसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यों में से एक मैं देवों में से एक हो जाऊँ ॥ ४ ॥

उसे सत्य ही बोलना चाहिए। देव सत्य रूपी व्रत का पालन करते हैं। इसी से उनको यश मिलता है। जो इस रहस्य को समझ कर सत्य बोलता हैं उसको यश मिलता है ॥५॥

यज्ञ की समाप्ति पर वह व्रत को समाप्त करता है—[य०२।२८]

मैं अब जो हूँ वही रहूं। जब उसने व्रत किया था तो वह अमानुष अर्थात् देव हो गया था। ऐसा कहना उसको उचित नहीं था कि मैं सत्य से अनृत को प्राप्त हो जाऊँ। इसलिये यज्ञ करते हुए देव की कोटि में होकर यज्ञ की समाप्ति पर जब मनुष्य की कोटि में आता है तो केवल इतना कहता है मैं जो अब हूं वही रहूँ। इस तरह वह व्रत को समाप्त करत है ॥६॥

विधि २, व्रत के मध्य भोजन— अब प्रश्न यह है कि व्रतके मध्य खावे या न खावे। आषाढ सावयस मुनि का मत था कि व्रत में खाना नहीं चाहिए। देव मनुष्य के मन को जानते हैं। वे जानते हैं कि जब उसने आज व्रत किया है तो कल वह यज्ञ करेगा। वे सब उसके घर आते हैं। वे उसके घर में आकर वास करते हैं। इसीलिए इस दिन का नाम है 'उपवसथ' (उपवास का दिन)॥७॥

यह तो सर्वथा अनुचित है कि आगन्तुक मनुष्यों को खिलाने से पहले घर वाला स्वयं खाले। और वह तो और भी अनुचित है कि देवों को खिलाने से पहले खा ले। इसलिए नहीं खाना चाहिए ॥८॥

इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा— यदि नहीं खाता तो पितृ-देवत्य होता है, यदि खाता है तो देवोंसे पूर्व खाने का दोषी, अतः जो खाना न खाने के समान हो वह खाले, जिसकी हवि देव नहीं लेते। इससे दोनों दोष नहीं होंगे ॥९॥

अथवा वह जंगली फल-अन्न खाये। इस पर बर्कु वार्ष्ण ने कहा— मेरे लिए माष (उड़द) पकाओ, इसकी हवि देव नहीं लेते। किन्तु ऐसा न करे। उड़द आदि दालें चावल-जौ के साथ हैं। उनसे इन्हें बढ़ाते हैं। अतः वन में उत्पन्न वस्तु ही खाए ॥१०॥

विधि३, रात्रि-शयन—वह इस रात में आहवनीय या गार्हपत्य के स्थानमें सोए। जो व्रत करता है वह जिनके पास रहना चाहता है वहीं सोता है। नीचे सोये। कल्याण के लिए सेवा नीचे ही होती है ॥११॥

विधि ४, अपः प्रणयन— अध्वर्यु प्रातः पहला कार्य जल ही लाने का करता है। जल यज्ञ है। अतः वह इस पहले कार्य से यज्ञ के ही पास पहुँचता है। जल लाता है तो यज्ञका ही विस्तार करता है ॥१२॥

वह इस मन्त्र को पढ़कर जल लाता है—

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति।

अर्थ— कौन तुझे जोड़ता है? वह प्रजापति तुझे जोड़ता है। किस के लिए तुझे जोड़ता है? उस प्रजापति के लिए तुझे युक्त करता है।

प्रजापति अनिरुक्त यज्ञ है, अतः इन अनिरुक्त वचनों से वह इस यज्ञ की ही योजना करता है ॥१३॥

या जलसे यह सब व्याप्त है अतः इस पहले कर्मसे सब पाता है।१४।

या जिसको होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा अग्नीध्र या स्वयं यजमान नहीं पा सकता, वह सब इससे प्राप्त हो जाता है ॥ १५ ॥

या, यज्ञ से यजन करते हुए देवों को जब असुर-राक्षसों ने रोका (ररक्षुः) कि यज्ञ मत करो तब उनका नाम राक्षस हुआ ॥ १६ ॥

तब देवों ने इस वज्र को देखा। यह जल वज्र है। अतः यह जहाँ जाता है, गड्ढा कर देता है, जहाँ पहुँचता है उसे नष्ट कर देता है।

उन्होंने इस वज्र को लिया, उसके अभय आश्रय में यज्ञका विस्तार किया। वैसे ही यह भी जल-वज्र लाकर यज्ञ-विस्तार करता है ॥१७॥

पात्र में थोड़ा सा जल लेकर गार्हपत्य अग्नि के उत्तर की ओर रख देता है। आपः (जल) स्त्रीलिंग है और अग्नि पुल्लिग। गार्हपत्य घर है। स्त्री-पुरुष मिलकर घरमें ही सन्तानोत्पत्ति करते हैं। जो जल का प्रणयन करता है वह वज्र को लाता है। जो भूमि में सुदृढ़ता से खड़ा नहीं होता वह वज्र को नहीं ले सकता। क्योंकि वज्र उसी को हानि पहुँचा देगा ॥१८॥

गार्हपत्य में रखने का प्रयोजन यह है कि गार्हपत्य घर है। घर ही प्रतिष्ठा (खड़े होने की जगह) है। घर में इसकी प्रतिष्ठा करता है। इस प्रकार वज्र उसको हानि नहीं पहुँचाता। इसीलिए वह जल की गार्हपत्य में स्थापना करता है ॥१९॥

फिर जल को आहवनीय अग्नि के उत्तर में (बाईं ओर) ले जाता है। क्योंकि आपः (जल) स्त्रीलिंग है, अग्नि पुँल्लिग है स्त्री पुरुष के मिलने से सन्तान होती है। स्त्री पुरुष के बाईं ओर सोती है ॥२०॥

जल और अग्नि के बीच में से न निकले। क्योंकि स्त्री पुरुष के जोड़े के बीच नहीं पड़ना चाहिए। (जल को ठीक उत्तर की ओर रखना चाहिए) न तो सीमा से आगे बढ़ाकर और न सीमा को प्राप्त करने के पहले, (न पूर्व की ओर न पश्चिम की ओर)। यदि सीमा से बढ़ाकर रक्खेगा तो जल और अग्नि में परस्पर जो विरोध है उसको बढ़ा देगा और जब जलका स्पर्श होगा तो अग्निका विरोध बढ़ जायगा। यदि सीमा को प्राप्त किये बिना ही रख देगा तो कामना की पूर्ति नहीं होगी। इसलिए जल का प्रणयन ठीक उत्तर में करना चाहिए ॥२१॥

विधि ५-६, तृणों का बिछाना और यज्ञपात्रों को लाना—अब तृणों को बिछाता है। (अग्नियों की) चारों ओर। पात्रों का जोड़ा जोड़ा करके ले जाता है। १- सूप और अग्निहोत्र हवणी २- स्फ्या और

कपाल ३- शम्या और कृष्ण-मृग-चर्म, ४-ऊखल-मुसल, ५- सिल-बट्टा। यह दस हो गये। विराट् छन्द दस अक्षर का होता है। यज्ञ भी विराट् है। इस प्रकार यज्ञ को विराट्-रूप दे देता है। दो-दो करके क्यों ले जाते हैं ? इसलिए कि दो में शक्ति होती है। जब दो मिल कर काम करते हैं तो वह काम सुदृढ़ होता है। दो से सन्तान होती है। इस प्रकार यज्ञ को प्रजनन-शील कर देता है ॥२२॥

अध्याय १ - ब्राह्मण २

विधि ७, शूर्प-हवणी-ग्रहण। इस मन्त्र से—

कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ [य० १।६]

अर्थ— कर्म के लिये तुम दोनों को, व्यापकत्व के लिए तुम दोनों को'। यज्ञ कर्म है। कर्म के लिए अर्थात् यज्ञ के लिए। व्यापकत्व के लिए तुम दोनों को, क्योंकि यजमान यज्ञ में व्यापक होता है ॥१॥

विधि ८, मौन धारण—अब वाणी को रोकता है। वाणी यज्ञ है। इस प्रकार यज्ञ को पूरा करूं- यह तात्पर्य है। अब इन दोनों (सूप और हवणी) को आग पर तपाता है यह मन्त्र बोलकर—

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः ।(१.७)

अर्थ— झुलस गया राक्षस, झुलस गये शत्रु। जल गया राक्षस, (काम-क्रोध आदि, दुष्ट मनुष्य, दुष्ट रोग-कीटाणु) जल गये शत्रु ॥२॥

क्योंकि जब देव यज्ञ करने लगे तो डरे कि कहीं असुर-राक्षस यज्ञ में विघ्न न डालें। अतः पहले से ही वह दुष्ट राक्षसों को यज्ञ से दूर कर देता है ॥३॥

विधि ९, धान की गाड़ी की ओर प्रयाण— अब वह (धान की गाड़ी की ओर) चलता है। यह मन्त्र बोलकर--

उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ [य० १।७],

'अन्तरिक्ष में चलता हूँ'। राक्षस दोनों ओर स्वतन्त्र रहता है वैसे

ही अध्वर्यु चलता है और वेद-द्वारा अन्तरिक्षको अभय करता है ॥४॥

धान को गाड़ी से ही ले। गाड़ी आगे यज्ञशाला पीछे। जो आगे उसे पहले करूँ—अतः गाड़ी से ही धान ले ॥५॥

अनः [गाड़ी वस्तुतः बड़ी होती है। अतः जब बहुत होता है तो कहते हैं कि गाड़ी भर कर है। अतः बहुतायत-हेतु अनः से ही ले ॥६॥

यज्ञ निश्चय ही गाड़ी है। अतः इसी ओर यजुओं का संकेत है न कुठिया, न घड़े की ओर। अपि थैले से निकालते हैं तब मन्त्र उनकी ओर संकेत करते हैं। यहाँ तो प्रकृत है कि यज्ञसे यज्ञ करूँ अतः अनः से ही धान ले ॥७॥

और पात्री से लेते हैं। तब बिना रुके, यजुओं को जपे। तब स्फ्य नीची उलटी कर पकड़े। जहाँसे जोड़ते हैं वहीं खोलते हैं ॥८॥

उस अनः का अग्नि ही निश्चय धूः(जुआ) है। उसे जब कन्धे पर रखते हैं तो बैल का कन्धा अग्नि से दग्ध सा हो जाता है। जो जघनसे कस्तम्भी तक है वह इसकी वेदि है,नीड ही हविर्धान है ।६।

विधि १०, धूः को छूना—अब वह धूः को इस मन्त्र से छूता है—
धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः(य१.८)

'तू धूः है, उसको सता जो सताने वाला है। उसको सता जो हमको सताता है या जिसको हम सताते हैं"। धूः में अग्नि होती है। जब वह हवि लेने जायगा तो धूः के पास से गुजरेगा। इस प्रकार धूः को प्रयुक्त करता है जिससे धूः उसे कष्ट न दे ॥१०॥

आरुणि ने जो कहा था कि मैं हर आधे मास में शत्रुओं का नाश करता हूँ वह इसी सम्बन्ध में कहा था ॥११॥

विधि ११, कस्तम्भी-ईषा का स्पर्श— जघन से कस्तम्भी-ईषा (डण्डे) को छूते हुए इन अंशों का जप करता है—

देवानामसि वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ।(य.१।८)
अह्रुतमसि हविर्धानं दृंहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतं रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥ [य०१।९]

शतपथ ब्राह्मण

अर्थ— तू देवों में सबसे अच्छा ले जानेवाला, सबसे अच्छा जुड़ा हुआ सबसे अच्छा भरा हुआ, सबसे अच्छा प्यारा, सबसे अच्छा निमन्त्रण देने वाला है। तू सबसे दृढ़ हविर्धान है। दृढ़ रह ढीला न पड़— इस प्रकार वह शकट की प्रशंसा करता है कि इस प्रकार प्रशंसित गाड़ी से हवि ले सके। यज्ञपति स्खलित न हो (यजु० १।९)। यजमान ही यज्ञपति है। यजमान की दृढ़ता के लिए ही यह प्रार्थना करता है ॥१२॥

विधि १२, गाड़ी पर आक्रमण (चढ़ना)— [दहिने पहिए पर से] इस मन्त्र (यजु० १।६) को पढ़कर गाड़ी पर चढ़ता है। 'विष्णु तुझ पर चढ़े'। यज्ञ का नाम विष्णु है। यज्ञने ही अपनेको पराक्रमयुक्त किया जो पराक्रम कि देवों में है पहले पैर से पृथ्वी को, दूसरे से अन्तरिक्ष को तीसरे से द्यौ को। इस यजमान के लिये भी यह विष्णु नामक यज्ञ इस सब पराक्रम को प्राप्त कराता है ॥१३॥

विधि १३, धानों का प्रेक्षण— अब वह (धान को) देखता है और गाड़ी के प्रति 'वाताय' मन्त्रांश [यजु० १।९] का जाप करता है— 'वायु के लिए खुल'। वायु प्राण है। इस मन्त्र के जाप से वह यजमान के प्राण को खुली वायु प्रदान करता है ॥१४॥

विधि १४, धान में से छिलकों का हटाना— अगर धानों पर कोई तिनका या घास आ जाय तो 'अपहतं रक्षः' [यजु० १।९] को पढ़कर उड़ाता है। (राक्षस भाग गया)। यदि न हो तो भी छू ले और इस मन्त्रको पढ़ ले जिससे कृमि दूर भाग जायें ॥१५॥

विधि १५, धानों को छूना— अब वह धानों को 'यच्छन्तां पञ्च' को जपकर छूता है —(पाँचों इसको लेलेवें) पाँचों का अर्थ है पाँच अंगुलिय यज्ञको भी पांक्त [पाँचवाला] कहते हैं इसतरह यज्ञको धारणकरता है ।१६।

विधि १६ धान का ग्रहण—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णामि। अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं ग्रहणामि ॥ [यजु० १।१०]

इस मन्त्र को पढ़कर (धान) लेता है।

अर्थ—देव सविता के उत्पादित संसार में अश्विओं (सूर्य-चन्द्र) के बाहुओं और पूषा (प्राण) के हाथों से अग्नि और अग्नि तथा सोम (जल के लिए सेवा-युक्त तुझे लेता हूं।

सविता देवों का प्रेरक. अश्वी अध्वर्यु, और पूषा बाँटने वाला है। देव सत्य तथा मानव अनत हैं। इसप्रकार सत्यसे ही इसे लेता है।१७।

· विधि १७,— अब देवताओं का नाम–निर्देश करता है। सभी देवता अध्वर्यु के हवि लते ही पास स्थित हो जाते हैं कि 'मेरा नाम लेगा, मेरा नाम लेगा। उनको ही वह संघर्ष-रहित्त करता है ॥१८॥

अथवा नाम लेने से जिनके लिए हवि ली जाती है वे उससे ऋण ही मानते हैं कि उसकी कामनाको पूरा करें, अतः नाम लेता है ॥१९

विधि १८, धान का स्पर्श—जहाँ से ही लेता है वहीं पूरा करता है। मन्त्र —भूताय त्वा नारातये,(तुझे विभूतिकेलिए, शत्रुके लिए नहीं)। २०

विधि १९— अब पूर्व को देखता है। मन्त्र— स्वरभि विख्येषम्। (मैं प्रकाश को देखूं)। गाड़ी ढँकी सी होती ह। उसका चक्षु पापी के समान होता है। यज्ञ सचमुच प्रकाश-दिन-देव-सूर्य है। अतः वह इस यज्ञ-प्रकाश को ही देखता है॥ २१॥

विधि २०—गाड़ी से उतरना है। मन्त्र– दृंहन्तां दुर्याः पृथिव्याम्। (दरवाजों वाले पृथ्वी पर सदैव सुदृढ़ रहें।) दरवाजोंवाले घर हैं। अध्वर्यु यज्ञ के साथ चलता है तो संभव है कि उसके पीछे यजमान के घर टूट जायँ और उसका परिवार नष्ट हो जाय। अतः इस प्रकार यजमान के घर को भूमि पर सुदृढ़ करता है कि वे न टूटें और न परिवार नष्ट हों। इसलिए वह कहता है— दरवाजोंवाली पृथ्वी सुदृढ़ होवे। अब वह (गार्हपत्य के उत्तर की ओर) चलताहै–

विधि २१— यह मन्त्र पढ़कर— उरु अन्तरिक्षमन्वेमि । 'मैं अन्तरिक्ष में चलता हूं।' इसका यही अर्थ है ॥२२॥

जिस यजमान की गार्हपत्य अग्नि में अध्वर्यु आदि हवि पकाते हैं उसी गार्हपत्य में पात्र भी रखते हैं। वे पात्र गार्हपत्य के पिछले भाग में रखने चाहिए। परन्तु जिस हवि को आहवनीय में पकाते हैं वे पात्र आहवनीय में रखते हैं। इन पात्रों को आहवनीय अग्नि केपीछे रखना चाहिए।

विधि २२—१.११ के इस अंश को जपकर ऐसा करे— पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामि। 'मैं तुझको पृथ्वी की नाभि में रखता हूँ'। नाभि का अर्थ है मध्य। मध्य में भय नहीं होता। इसलिए कहता है कि मैं तुझे पृथ्वी की नाभि में रखता हूं। 'अदित्याः उपस्थे।' जब किसी चीज को सुरक्षित रखते हैं तो कहावत है कि गोद में रख

ली है'। इसीलिए कहा कि अदिति की गोद में। 'अग्ने हव्यम् रक्ष'— यह कहकर वह हवि को पृथ्वी और अग्नि के संरक्षण में देता है। इसलिए कहता है—हे अग्नि, तू इस हविकी रक्षाकर ॥२३॥

अध्याय एक, ब्राह्मण 3

विधि २३— अब दो पवित्रा बनाता है। यजु० १.१२ का यह अंश पढ़कर—पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ। 'तुम पवित्रा हो विष्णु के।' यज्ञका नाम विष्णु है इसलिए कहता है कि तुम यज्ञ के हो ॥१॥

ये दो होते हैं। यह जो वायु बहता है वह पवित्रा है। वह एक ही होता है। परन्तु जब पुरुष के भीतर जाता है तो उसके दो भाग हो जाते हैं-- एक अगला और दूसरा पिछला। ये हैं प्राण तथा उदान। यह पवित्रीकरण भी उसीप्रकार का है इसलिए पवित्रा दो होते हैं।२।

तीन भी हो सकते हैं। क्योंकि व्यान भी तो है। परन्तु दो ही होने चाहिए। इन दोनों पवित्रों से प्रोक्षणी-जल को छिड़कता है। इसका कारण यह है— ॥३॥

वृत्र इस सब पृथ्वी को घेर कर सो रहा। द्यौ और पृथ्वी के बीच में जो कुछ है उस सबको ढक कर सो रहा। इसलिए उसका नाम वृत्र (मेघ, भोग) पड़ा ॥४॥

उस वृत्र को इन्द्र ने मारा। वह मर कर दुर्गन्ध करता हुआ चारों ओर जलों की ओर बह निकला। समुद्र तो चारों ओर ही हैं। इससे इससे कुछ जल भयभीत हुए और ऊपर-ऊपर बहे। वहीं से यह दर्भ उत्पन्न हुए (जिनसे पवित्रा बनते हैं)। यह उस जल के भाग हैं जो सड़ा नहीं था। परन्तु दूसरे जलों में वह बदबूदार भाग मिल गया। क्योंकि वृत्र उनमें बह कर जा मिला। इन पवित्रों से वह उस भाग को शुद्ध करता है। इसलिए पवित्रा से ही जल छिड़कता है। इसलिए उनसे शुद्ध करता है ॥५॥

विधि २४— वह इस मन्त्रांश [य० १.१२] को पढ़कर पवित्र करता है— सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। 'सविता की प्रेरणा से छिद्र-रहित पवित्रा से सूर्य की किरणों से।' सविता देवों का प्रेरक है छिद्ररहित पवित्रा से। वायु जो बहता है छिद्र-रहित पवित्रा है। 'सूर्य की किरणों से' क्योंकि सूर्य की किरणें पवित्रा करने वाली हैं ॥६॥

विधि २५— बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ से उछालता है। स्तुति करते हुए और महत्ता दर्शाते हुए [यजु० १.१२] —

देवी: आपो अग्रेगुवो अग्रेपुवः। 'दिव्य जलो! आगे चलनेवाले, आगे पवित्र करने वाले।' जल दिव्य हैं। इसलिए कहा देवीरापः। चलकर समुद्र में जाते हैं इसलिए कहा अग्रेगुवः। अग्रे पुवः। क्योंकि पहले वे सोमका पान करते हैं। 'अग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिं सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्' ॥१२॥ अब इस यज्ञ को आगे बढ़ाओ। यज्ञपति को जो सुधातु और देवों का प्रिय है। इसके कहने का तात्पर्य है कि यज्ञ और यजमान ठीक हों ॥७॥

विधि २६— अब जपता है [यजु० १.१३] युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्य्ये! 'हे जलों तुमको इन्द्र ने वृत्र की लड़ाई में साथी चुना।' जब इन्द्र ने वृत्र को मारना चाहा तो जलों को चुना कि इन्हीं की सहायता से मैं वृत्र को मारूँगा। इसलिए कहता है कि हे जलो वृत्र की लड़ाई में तुम इन्द्र के साथी हो ॥८॥

'यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये।'। जब इन्द्र वृत्र से लड़ाई कर रहा था तो जलों ने भी इन्द्रको चुना और इन्द्रने वृत्रको मारा। इसलिए कहता है कि तुमने भी इन्द्र को वृत्र की लड़ाई में चुना ॥९॥

यह मन्त्रांश पढ़ता है — प्रोक्षिताः स्थ। 'तुम पवित्र हो गये।' हवि के ऊपर जल छिड़क कर उसको पवित्र करता है, इस पवित्रीकरण का भी वही तात्पर्य है। इसलिए ऐसा करता है ॥१०॥

विधि २७— वह पवित्र करते समय इस अंश को पढ़ता है — अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। 'अग्नि के लिए तुमको पवित्र करता हूँ।' जिस देवता के लिए हवि होती है उसी के लिए पवित्र की जाती है। यथापूर्व सब हवियों को पवित्र करके— ॥११॥

विधि २८— यज्ञ-पात्रों को पवित्र करता है यह मन्त्रांश पढ़कर— दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै। 'दिव्य कर्म के लिये, देव यज्ञ के लिए पवित्र होओ।' दिव्य कर्म के लिए शुद्ध करता है।

यद् वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदम् वस्तच्छुन्धामि ॥१३॥

बढ़ई ने या किसी और ने छू कर इनको अशुद्ध कर दिया हो— इस अशुद्धि को वह इस प्रकार दूर करता है। इसलिये कहा कि अपवित्रों ने जो तुम्हारा अंश अपवित्र किया हो उसको मैं पवित्र करता हूँ ॥१२॥

अध्याय एक, ब्राह्मण ४

विधि २९— अब यज्ञ की पूर्णता के लिए काले मृग का चमड़ा लेता है। एक बार यज्ञ देवताओं से भाग गया और काले मृग(वेद) के रूप में विचरता रहा। देवताओं ने उसको खोज लिया और उस का चमड़ा उतार कर ले आये ॥१॥

उसके जा सफेद और काले लोम हैं वह ऋक् और साम का रूप हैं। सफेद साम का और काले ऋक् का। या इससे उल्टा अर्थात् काले लोमसामका और सफेद ऋक्का। जो भूरे या खाकी हैं वे यजु का रूप हैं ॥२॥

यह त्रयी विद्या यज्ञ है। उसका जो शिल्प है वह काले मृग के रूप में है, वह इस चमड़े को यज्ञ की पूर्णता के लिए लेता है, इस-लिए काले मृग चर्म पर ही दीक्षा ली जाती है। यज्ञ की पूर्णता के लिए चर्म को लेते हैं इसलिए चावलों के कटने-फटकने का काम भी इसी पर किया जाता है। जिससे हवि न फैले, यदि कुछ भाग गिरेगा भी तो इसी पर गिरेगा और यज्ञ की पूर्णता नष्ट न होगी। इसी-लिए कूटने फटकने का काम चर्म पर लिया जाता है ॥३॥

कृष्णमृग चर्म लेते समय [य० १.१४] के अंश का जाप करता है शर्मासि। 'तू शर्म या कल्याणकारक है'। इसका मानुषी नाम है चर्म, दैवी नाम है शर्म। इसीलिए कहा तू शर्म है। अब मन्त्र के अगले टुकड़े को बोल कर उसे झाड़ता है— अवधूतं रक्षोऽव धूता अरातयः। 'राक्षस झाड़ दिय गये, शत्रु झाड़ दिये गये'। ऐसा कह करके वह राक्षसों या शत्रुओं को दूर करता है। पात्रों से हट कर झाड़ता है। जो कुछ उसमें अपवित्र हो उसको झाड़ता है ॥४॥

विधि ३०—अब उसकी गर्दनका भाग पश्चिम की ओर करके इस प्रकार बिछाता है कि बाल ऊपरको रहें। [य०१.१४]का अगला भाग पढ़ता है,अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु।'तू अदितिका चमड़ा है। अदिति तुझको स्वीकार करें'। पृथिवी अदिति है। उसके ऊपर जो कुछ हो वह उसका चमड़ा है। इसीलिए कहता है, तू अदिति का चर्म है। अदिति तुझे स्वीकार करे। अपना अपने को स्वीकार करता है। कृष्ण मृग चर्म को इसलिए ऐसा करता है कि चर्म और पृथिवी में सम्बन्ध स्थापित किया जाय और एक दूसरे को न सतावें।

जब वह बायें हाथ में पकड़ा होता है उसी समय—॥५॥

विधि ३१— दाहिने हाथ से उखली पकड़ता है कि कहीं इस बीच में वहाँ राक्षस न आ जायें। ब्राह्मण राक्षसों का घातक होता है,अतः जब कि बायें हाथ में चमड़ा पकड़ा होता है तभी— ॥६॥

विधि ३२— उखली को रख देता है, यह कहकर— अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः। [य० १.१४] 'तू पत्थर है वनस्पति का चौड़ा पत्थर'। जैसे सोमयज्ञ में सोमलता को पत्थरों पर पीसते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी हवि को उखली और मूसल से कूटते हैं. इनका सामान्य नाम 'अद्रि' है। इसलिए कहा तू अद्रि(पत्थर)है। वनस्पति का इसलिए कहा कि वह ऊखली लकड़ी की होती है। चौड़ा पत्थर है इसलिए चौड़ा पत्थर कहा। प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥ अदिति का चमड़ा तुझे स्वीकार करे— यह इसलिए कहा कि चमड़े और उखली में सम्बन्ध हो जाय। एक दूसरे को हानि न पहुँचावें ॥७॥

अब [य० १.१५] के टुकड़े को पढ़कर हवि डालता है— अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनम्। 'तू अग्नि का शरीर है, वाणी को मुक्त करनेवाला'। धान यज्ञ के लिए है इसलिए उसको अग्नि का शरीर कहा। वाणी को मुक्त करनेवाला इसलिये कहा कि जब गाड़ी से धान लेने गया था उस समय मौन धारण किया था। अब उस मौन को तोड़ता है। मौन तोड़ने का हेतु यह है कि अब यज्ञ उखली में स्थापित हो गया। उसका प्रसार हो गया। इसी से कहा तू वाणी को मुक्त कराने वाला है॥८॥

यदि इस बीच में (मौन के समय) कुछ लौकिक शब्द मुँह से निकल जाय तो ऋक् या यजुः से कोई विष्णु का मन्त्र बोलना चाहिए, यज्ञ विष्णु का है। इस प्रकार यज्ञ का आरम्भ हो जाता है, और वह मौन तोड़ने का प्रायश्चित भी होता है। अब जपता है— देववीतये त्वा गृह्णामि। 'देवों की प्रसन्नता के लिये मैं तुझको लेता हूँ'। वस्तुतः देवों की प्रसन्नता के लिए यज्ञ किया जाता है ॥९॥

विधि ३३— अब [य० १.१५ के इस अंश को पढ़कर मुसली पकड़ता है— बृहद् ग्रावासि वानस्पत्यः। 'तू लकड़ी का बड़ा पत्थर है'। क्योंकि यह लकड़ी का भी है और बड़ा भी। अब इस मन्त्रांश को पढ़े—

स इदम् हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व।

तब मुसली उखली में डालता है,(देवों के लिए हवि तैयार कर अच्छी तरह तैयार कर) तात्पर्य यह है कि इस हवि को देवों के लिए तैयार कर जल्दी से तैयार कर॥१०॥

विधि ३४— अब वह हविष्कृत् (हवि तैयार करनेवाले को बुलाता) है— हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि । 'हविष्कृत् आ! हविष्कृत् आ'। वाणी ही हविष्कृत् है। इस प्रकार वाणी को मुक्त करता है, वाणी यज्ञ है, इस प्रकार वह यज्ञ को फिर बुलाता है ॥११॥

बुलाने के ४ प्रकार हैं—ब्राह्मण को बुलाना हो तो कहेंगे 'एहि'। वैश्य के लिए 'आगहि', क्षत्रिय के लिए 'आद्रव', शूद्र के लिए 'आधाव'। इस स्थल पर ब्राह्मण वाला निमन्त्रण देना चाहिए, क्योंकि वही यज्ञके उपयुक्त है और शान्ततम है। अतः कहता है 'एहि' (यहाँ आइये) ॥१२॥

पहली प्रथा यह थी कि यजमान की पत्नी ही उठकर हविष्कृत् बनती थी। इसलिए यहाँ भी वह (पत्नी) या कोई ऋत्विज् उठता है। जब अध्वर्यु हविष्कृत् को बुलाता है तो एक ऋत्विज् दोनों सिलों को पीटता है, ऐसा घोर क्यों करते हैं ? इसलिए कि– ॥१३॥

मनु (मन) के पास एक बैल (शब्द = गद्य काव्य) था. उसमें असुर तथा शत्रु को मारने वाली वाणी घुस गई। जब वह हुंकारता और चिल्लाता तो असुर मर जाते थे। तब असुरों ने कहा यह बैल तो हमारा बड़ा अनर्थ करता है, इसको कैसे दबायें ? असुरों के ऋत्विज् थे किलात और आकुली [विक्षेप और गड़बड़] ॥१४॥

यह दोनों बोले– कहते हैं मनु अश्रद्धालु है इसको जांचें। तब वे मनु के पास गये और कहा– हे मनु! हम तुम्हारे लिए यज्ञ करना चाहते हैं। मनु ने पूछा किससे ? उन्होंने कहा इस बैल से। उसने कहा अच्छा। बैल के अच्छे प्रकार पकड़ने पर वाणी वहाँ से चली गई ॥१५॥

वह मनु की पत्नी मनावी [कविता] में घुस गई। जब वह उसको बोलते हुए सुनते तो राक्षस और असुर मर्दन किये जाते थे। तब असुरों ने कहा यह तो और बुरा हुआ। क्योंकि (बैल की अपेक्षा) मनुष्य अधिक बोलता है। तब किलात और आकुली ने कहा— मनु को श्रद्धालु कहते हैं चलो इसकी जांच करें। वे उसके पास गये और कहा– हम तुम्हारे लिए यज्ञ करना चाहते हैं। मनु ने पूछा किससे? उन्होंने कहा— इस तेरी पत्नी [कविता] से। उसने कहा– अस्तु, उसके आलभन = अच्छे प्रकार पकड़ने पर वाणी उसमें से निकल गई ॥१६॥

अब वह यज्ञ और यज्ञपात्रों [नाटक] में घुस गई। और वे दोनों किलात और आकुली उसको न निकाल सके। यही असुर और राष्ट्र-शत्रु को मारने वाली वाणी इन पत्थरों से निकलती है। जो इस रहस्य

को समझता है उसके लिए जब यह शोर किया जाता है तो उसके शत्रुओं को बहुत हानि पहुंचती है ।।१७।।

वह इस मन्त्रांश को पढ़कर पत्थरों को पीटता है— कुक्कुटोऽसि मधु-जिह्व। १.१६'तू मीठी वाणीवाला कुक्कुट है'। वस्तुतः वह देवोंकेलिए मीठी वाणी वाला और असुरों के लिए विषयुक्त वाणीवाला है इसीलिये कहताहै 'जैसा तू देवोंकेलिए है वैसेही हमारेलिए हो । फिर वह कहता है—इषमूर्ज-मावद त्वया वयं संघातं संघातं जेष्म। रस और शक्ति हमारेलिए ला,तेरी इस सहायता से हम हर एक युद्ध को जीतें । यहाँ कुछ छिपा नहीं है ।।१८।।

विधि ३५— अब अध्वर्यु इस मन्त्रांश[य० १.१६]से सूप पकड़ता है— वर्षवृद्धमसि । 'तू वर्षा में बढ़ा हुआ है' । वस्तुतः यह वर्षा में बढ़ा हुआ होताहै,चाहे वह नरकुल हो,या सिरकी का, येसब वर्षा ऋतुमें बढ़ते हैं।१९.

अब वह कुटे हुए चावलों को सूपमें डालता है इस मन्त्रांश को पढ़कर— प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु । 'वर्षा में बढ़ा हुआ तुझे स्वीकार करे' । क्योंकि यह हवि भी वर्षा में बढ़ी हुई होती है । चाहे यव या जौ होंचाहे तण्डुल, ऐसा कहकर हवि और सूप के बीच में सम्बन्ध स्थापित कर देता है । जिससे एक दूसरे को न विगाड़ने पावें ।।२०।।

अब वह फटकता है इस मन्त्रांश को पढ़कर — परापूतं रक्षः परापूता अरातयः 'राक्षस दूर हो गये, शत्रु दूर हो गये '। अपहतं रक्षः — ऐसा कहकर भूस फेंक देता है ऐसा करने से शत्रु क्रमि दूर हो जाते हैं ।।२१।।

अब कुटे चावलों को वेकुटे चावलों से अलग करता है । इस मन्त्रांश को पढ़कर — वायुर्वो विविनक्तु । 'वायु तुमको अलग-अलग करे' । क्योंकि सूप की वायु ही चावलों को अलग करती है । और संसार में जिस चीज को अलग करना होता वायु द्वारा ही अलग करते हैं । जब कृत्य जारी होता है और वह फटकते हैं तभी— ।।२२।।

वह पात्र में डाले हुए चावलों को सम्बोधन करके यह मन्त्रांश पढ़ता है— देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना । १६।। 'सोने के हाथों वाला सविता देव छिद्ररहित हाथ से तुमको ग्रहण करे' अर्थात् वे इस हवि को आदर के साथ लेवें । वह तीन वार फटकता है, फलो करता है टूटे चावलों में से साबित चावलों को अलग करता है, क्योंकि यज्ञ त्रिवृत्(तिहरा) है।।२३।।

कुछ लोग देवेभ्यः शुन्धध्वम् कहकर फटकते हैं किन्तु ऐसा न कहे — क्योंकि वह हवि एक देवता के लिए होती है अनेक के लिये नहीं ।।

शतपथ कां. १ अ. २ ब्राह्मण १

विधि ३६— अग्नीध् कपालों को (गार्हपत्य अग्नि पर) रखता है और अध्वर्यु चक्की-पाटों को रखता है। दोनों काम एक साथ होते हैं। ये काम एक साथ क्यों होते हैं? क्योंकि– ॥१॥

पुरोडाश यज्ञ का सिर है। ये जो कपाल हैं वे सिर की खोपड़ी की हड्डियाँ हैं। पिसी हुई चावल की पीठी मस्तिष्क का भेजा है। यह सब मिलकर एक अंग होते हैं। वे सोचते हैं कि इन सबको एक कर दें। इसलिए इन दोनों कामों को एक साथ करते हैं ॥२॥

वह जो कपालों को आग पर रखता है उपवेश [चिमटे] को हाथ में लेकर कहता है–

धृष्टिरसि। (तू धृष्टि है।) [य० १.१७]

इसको 'धृष्टि' इसलिये कहा कि इसी से अंगारों को पकड़ कर ठीक करेगा (धृष्टि का अर्थ है साहस के साथ काम करनेवाला)। इसका नाम उपवेश इसलिए है कि इसी से आग के अंगारो का स्पर्श करता है॥३॥

इससे वह पूर्व से अंगारों को पश्चिम की ओर हटाता है यह पढ़कर–

अपाऽग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादं सेध। १.१७

(हे अग्नि, कच्चा खानेवाली अग्नि को छोड़। शव खानेवाली अग्नि को दूर कर)। कच्चा खानेवाली (आमाद) अग्नि वह है जिस पर खाना पकाते हैं। क्रव्याद अग्नि वह अग्नि है, जिस पर मरे हुए पुरुषके शव को जलाते हैं। इन दोनों को गार्हपत्य अग्नि से अलग करता है ॥४॥

अब एक अंगारे को अपनी ओर खींचता है यह मन्त्रांश पढ़कर–

आ देवयजं वह। १.१७

(उस अग्नि को लाओ जिसमें देवताओं के लिए यज्ञ किया जाता है)। मैं देवयज अग्नि में हवि पकाऊँ। उसी में यज्ञ करूँ। इसीलिए उस अंगारे को निकालता है ॥५॥

उस अंगारे पर बीच का कपाल रखता है। जब देव यज्ञ करने लगे तो उनको भय हुआ कि कहीं असुर-राक्षस यज्ञ को विध्वंस न करें। उनको यह भय पैदा हुआ कि कहीं हमारे नीचे से असुर राक्षस न उठ खड़े हों। अग्नि राक्षसों का घातक है। इसलिये कपाल को आग पर रखता है।

इसी अंगारे पर क्यों रखता है, दूसरों पर क्यों नहीं?

इसका कारण यह है कि यह अंगारा यजुष्कृत है (यजु मन्त्रों के पाठ से पवित्र किया हुआ है) अतः इसके ऊपर मध्य कपाल को रखता है ॥६॥

इस समय वह यह मन्त्रांश पढ़ता है–

ध्रुवमसि पृथिवीं दृंहे। (१.१७)

(तू ध्रुव है ! पृथ्वी को दृढ़ कर।) पृथ्वी के रूप में ही वह यज्ञ को दृढ़ करता है। इसी से वह शत्रु का नाश करता है। अब कहता है—

ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। १.१७

(ब्राह्मण की रक्षा करनेवाले, क्षत्रियकी रक्षा करनेवाले, सजातीय को रक्षा करनेवाले ! तुझको मैं शत्रु के नाश के लिए रखता हूं।) आशीर्वाद के बहुत से यजुर् मन्त्र हैं। इस मन्त्र से ब्राह्मण और क्षत्रिय को आशीर्वाद देता है जो दो वीर्यवान् शक्तियाँ हैं। सजातीय की रक्षा करनेवाले— ऐसा कहने से धन की अधिकता का आशीर्वाद देता है क्योंकि सजातीय धन है। 'शत्रु के वध के लिए' ऐसा कहते हुए चाहे किसी को मारना चाहे या न चाहे, उसको कहना चाहिए 'अमुक अमुक के वध के लिए'। अभी बायें हाथ की अँगुली से कपाल रक्खा ही था कि— ॥७॥

दूसरे अंगारे को लेता है कि कहीं इस बीच में असुर राक्षस (कृमि) घुस न आवें। ब्राह्मण राक्षसों को दूर करनेवाला है। क्योंकि ज्यों ही बायें हाथ की अंगुली से कपाल रक्खा वैसे ही शीघ्र ॥८॥

उसे अंगारे पर रख देता है यह मन्त्रांश पढ़कर—

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व। (हे अग्नि, ब्रह्म, इसको ग्रहण कर)।

वह ऐसा कहता है जिससे असुरराक्षस पहले से ही न घुसने पावें। वह इस लिए कपालको अंगारेपर रखता है क्योंकि अग्नि राक्षसोंका नाशक है।९

अब बीच वाले कपाल के पश्चिम की ओर के कपाल को यह मन्त्रांश पढ़कर अंगारे पर रखता है—

धरुणमस्यन्तरिक्षं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। १.१८

(तू सहारा है। अन्तरिक्ष को दृढ़कर) अन्तरिक्ष के रूप में वह यज्ञ को सुदृढ़ करता है। इससे वह दुष्ट शत्रु को दूर करता है। तुझे ब्राह्मण की रक्षा करनेवाले, क्षत्रिय की रक्षा करनेवाले, सजातीय की रक्षा करनेवाले तुझको मैं शत्रु के वध के लिये रखता हूँ ॥१०॥

अब पूर्व की ओर के कपाल को रखता है यह मन्त्रांश पढ़कर—

धर्त्रमसि दिवं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। १.१८

[तू धर्ता है। द्यौ लोक को सुदृढ़ कर] द्यौ के रूपमें वह यज्ञ को सुदृढ़ करता है। इससे वह शत्रु को दूर भगाता है। (ब्राह्मण की रक्षा करने वाले, क्षत्रिय की रक्षा करनेवाले, सजातीय की रक्षा करनेवाले तुझ को मैं शत्रु के वध के लिए रखता हूँ ॥११॥

अब दक्षिणवाले कपाल को रखता है यह मन्त्रांश पढ़कर—

विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि। १.१८

(सब दिशाओं के लिये मैं तुझे रखता हूँ) इन तीनों लोकों के आगे कोई

है या नहीं, यह अनिश्चित है। और सब दिशाओं का भी निश्चय नहीं। अतः कहता है, सब दिशाओं के लिए। शेष कपालों को वह चुपचाप रख देता है इस मन्त्रांश को पढ़कर—

चित स्थोर्ध्वचित: । १.१८ (तुम चित हो, तुम ऊर्ध्वचित हो। तुम चयन किये हुए हो, ऊपर भी चयन किये हुए हो) ।।१२।।

विधि ३७— अब उनको अंगारों से ढक देता है इस मन्त्रांश से—

भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम्। १.१८

(भृगु और अंगिरसों के तप से तपो।) भृगु और अंगिरसों का तेज बहुत बलिष्ठ है। इसीलिए वह इसको अंगारों से ढक देता है ।।१३।।

विधि ३८— अब जिसने दो पत्थरों को चर्म पर रखा था वह उस चर्म को ईस मन्त्रांश को पढ़कर उठाता है—

शर्मासि। १.१६ [तू शर्म अर्थात् कल्याणप्रद है।]

उसी मन्त्र के अगले अंश को पढ़कर झाड़ता है—

अवधूतं रक्षोऽवधूता अरातय: । १.१९

[राक्षस झड़ गये। शत्रु झड़ गये।] अर्थ वही है। अब उसको पश्चिम की ओर गर्दन हो इस प्रकार बिछा देता है, इस मन्त्रांश को पढ़कर—

अदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। १.१६

(तू अदिति का चमड़ा है। अदिति तुझे स्वीकार करे।) इसका तात्पर्य वही है ।।१४।।

विधि ३९— अब उस पर दृषद अर्थात् नीचे की सिल रखता है इस मन्त्रांश को पढ़कर—

धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु। १.१९

(तू पहाड़ी पत्थर है। अदिति का चमड़ा तुझे स्वीकार करे।) यह पत्थर भी है और पहाड़ी भी। यह जो कहा 'अदिति का चर्म तुझे स्वीकार करे' इसका तात्पर्य यह है कि इसमें और चर्म में सम्बन्ध स्थापित हो जाय, जिससे से एक दूसरे को हानि न पहुँचावें। नीचे का पाट पृथ्वी का रूप है ।।१५।।

विधि ४०— अब उसके ऊपर शम्या को रखता है, इस प्रकार कि उसका सिरा उत्तर की ओर रहे। यह मन्त्रांश पढ़कर—

दिव: स्कम्भनीरसि। १.१६ [तू द्युलोक को थामनेवाली है।]

यह अन्तरिक्ष का रूप है। द्यौ और पृथ्वी अन्तरिक्ष के द्वारा थमे हुए हैं। इसलिए वह यह कहता है— ।। ६।।

विधि ४१— अब ऊपर के पाट (उपल) को नीचे के पाट पर रखता है यह मन्त्रांश पढ़कर—

धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु। १.१९

(तू पर्वत से उत्पन्न हुआ पाट है। पर्वती तुझे स्वीकार करे।)

यह पाट छोटा होता है। इसलिए यह नीचे के पाट की लड़की हुआ। इसलिए नीचे के पाट को पर्वती और ऊपर के पाट को पुत्री के समान पार्वतेयी कहा। पर्वती पार्वतेयी को स्वीकार करे। क्योंकि सजातीय सजातीय को स्वीकार करता है। इस प्रकार वह इन दो पाटों में सम्बन्ध स्थापित करता है जिससे वे एक दूसरे को न सतावें। यह द्यौलोक का रूप है। या यह दोनों पाट दो हनु या जबड़े हैं और शम्या जीभ है। इसीलिए शम्या से शब्द करके चलाता है। जीभ ही से तो बोला जाता है ॥१७॥

विधि ४२– अब यजु० १.२० से नीचे के पाटपर हवि को छोड़ता है–

धान्यमसि धिनुहि देवान्।

[तू धान्य है, देवों की तृप्ति कर।] हवि इसलिये दी जाती है कि जिससे देवताओं की तृप्ति हो सके ॥१८॥

अब यजु० १.२० को पढ़कर पीसता है––

प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धाम्।

[तुझको प्राण,उदान,व्यान के लिए लेकर मैं यजमान के जीवन में वृद्धि करूँ] अब पिसे हुए भाग को चर्म पर छोड़ता है यह पढ़कर––

देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा। १.२०

[सोने के हाथोंवाला सविता देव छिद्ररहित हाथोंसे तुझे स्वीकार करे ॥१९

वह इसको इस प्रकार इसलिए पीसता है कि हवि देवताओं का जीवन है, अमरों के लिए अमृत है। अब ऊखल-मूसल तथा दृषद-उपल से हवि को पीसते हैं ॥२०॥

यह जो कहा कि प्राण और उदान के लिए तुझको, इससे प्राण और उदान धारण करता है। 'व्यान के लिए तुझको' इससे व्यान धारण करता है। बड़ी आयु हो, इससे आयु बढ़ाता है,यह जो कहा कि 'सविता सोने के हाथोंवाला देव छिद्ररहित हाथों से तुझे स्वीकार करे' यह इसलिए कि उसको भलीभाँति स्वीकार किया जाय। 'आँख के लिये तुझको' इससे आँख की शक्ति को धारण करता है। यही जीवन के चिह्न हैं। हवि जीवित की होती है। अमरों के लिए अमृत हो जाती है। अतः हवि पीसते हैं। हविको पीसते और कपालों को गर्म करते हुए– ॥ २१

विधि ४३–– एक [अग्नीध्र] आज्यथाली में घी डालता है। जब किसी निर्दिष्ट देवता के लिए हवि ली जाती है तो उसी देवता की हो जाती है, उसको विशेष यजुष् मन्त्र पढ़ कर लेते हैं। यह घी किसी विशेष देवता के लिये नहीं है। अतः सामान्य यजुष् मन्त्र पढ़कर––

महीनां पयोऽसि। १.२० (तू महियों का दूध है।) मही गौ का नाम है। यह गाय का रस है। यह भी इसी यजुष् मन्त्र से लिया जाता है इसीलिए इसे महियों का दूध कहा ॥२२॥

अध्याय २ ब्राह्मण २

विधि ४४— पात्री में रखे दो पवित्रे हटाकर उसमें पिसी हवि को डालता है यह मन्त्र पढ़कर—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यांसंवपामि ।१.२१

देव सविता की प्रेरणा से अश्विनों की दो भुजाओं से, पूषा के दो हाथों से तुझको उड़ेलता हूं । इस यजु० का तात्पर्य वही है [जो १-१-२-१७ में कह दिया गया है] ॥१॥

अब वेदि के भीतर बैठता है । अब एक अग्नीध् उपसर्जनी (आटा सानने का जल) लेकर आता है और उसको उसके पास लाता है, वह इसको पवित्रों के द्वारा यह मन्त्र पढ़कर लेता है—

समाप ओषधीभिः । १.२१ [जल ओषधियों से मिले]

इस प्रकार जल पिसे हुए चावल रूपी औषधियां में मिलता है।

समोषधयो रसेन । १.२१ [ओषधियाँ रस से मिलें ।]

इस प्रकार जल रस के साथ पिसे हुए चावलों को मिलते हैं।

सं रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताम् । १.२१

(रेवती जगती के साथ मिलें । जल रेवती हैं और ओषधियाँ जगती हैं । यह दोनों परस्पर मिलते हैं ।

सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् । १-२१

[मधुवाली मधुवालियों के साथ मिलें अर्थात् रसवाले रसोंके साथ मिलें] ॥२॥

विधि ४५— अब सानता है यह मन्त्रांश पढ़कर—

जनयत्यै त्वा संयौमि । १-२२ (श्री के लिए तुझे मिलाता हूं ।)

लक्ष्मी के लिए पिसे आटे को गूंथता है कि जिससे यजमान के लिए इन प्रजाओं में श्री, खाद्य और सन्तान को दे सके । वह इसलिए भी गूंथता है कि यह अग्नि के ऊपर रखा जा सके और पक सके ॥३॥

अब उसके दो भाग करता है, यदि दो हवि देनी हों तो । पूर्णिमा की इष्टि में दो हवियाँ दी जाती हैं । अब वह छूकर देखता है कि ये दोनों फिर तो नहीं मिल गई । और यह मन्त्रांश पढ़ता है—

इदमग्नेरिदमग्नीषोमयोः । १.२२

(यह अग्नि के लिए और यह अग्नि-सोम के लिये ।) पहले यह दोनों हवियाँ अलग-अलग ली गईं थीं [देखो १-१-२-१७] फिर इन को साथ फटका, साथ पीसा । अब फिर बाँट कर अलग-अलग कर दिया । इसीलिये छूता है एक [अध्वर्यु] पीठी को; और दूसरा [अग्नीध्] घी को आग पर रखता है ॥४॥

ये दोनों काम साथ-साथ किये जाते हैं। क्यों कि यज्ञ के आत्मा का आधा भाग घी है और आधा हवि। वे दोनों सोचते हैं कि आधा भाग यह हुआ और आधा भाग यह हुआ। इन दोनों को साथ-साथ अग्नि में ले जायें। इसलिये इन दोनों कामों को साथ-साथ करते हैं जिससे यज्ञों का आत्मा पूरा-पूरा जुड़ जाय ॥५॥

अतीध्र घी को आग पर यह मन्त्रांश पढ़कर पकाता है—

इषे त्वा १.३० [इष के लिए तुझको]

इष से तात्पर्य है वृष्टि का। फिर उसको आग पर से हटा लेता है और कहता है— उर्जे त्वा। १.३० [ऊर्ज के लिए तुझको] वर्षा से यह ऊर्ज (वृक्षों में) उत्पन्न होता है उसी से तात्पर्य है ॥६॥

विधि ४६— अब (अध्वर्यु) पुरोडाश को पकाता है यह पढ़कर-

घर्मोऽसि। १.२२ (तू यज्ञ है)

उसको कपालों पर पकाया। इस प्रकार उसको यज्ञ बना देता है। अब कहता है—

विश्वायुः। [इससे वह यजमान के जीवन की वृद्धि करता है] ॥७

अब वह उसको (कपालों) में फैलाता है—

उरुप्रथा उरु प्रथस्व उरु ते यज्ञपतिः प्रथताम्। १.२२

[तू फैला हुआ है, फैल जा। तेरा यज्ञपति भी ऐसा ही फैले।]

यह यजमान के लिये आशीर्वाद है ॥८

हविको बहुत नहीं फैलाना चाहिए। बहुत फैलाने से वह मानुषी हो जाती है (दैवी नहीं रहती)। मानुषी हवि अशुभ होती है। वह चाहता है कि ऐसा काम न हो कि अशुभ हो जाय, इससे कम फैलाता है ॥८

कुछ का कहना है कि हवि घोड़े की टाप के बराबर होनी चाहिए। परन्तु कौनजाने कि घोड़े की टाप कितनी चौड़ी होती है? अतः इतनी चौड़ीकरनी चाहिए कि बुद्धि कहे कि बहुत चौड़ी नहीं है ॥ १०

विधि ४७— अब,हविको जल से स्पर्श कराता है, १ बार यां३ बार। क्योंकि फटकने या पीसने में जो कुछ उसको क्षति हो गई हो, जलसे दूर हो जाती है। जल शान्ति है जल से उसको शमन कर देता है। इसीलिए जल स्पर्श कराता है ॥११

वह जल का स्पर्श इस मन्त्रांश से करता है—

अग्निष्टे त्वचं मा हिंसीत् १.२२ (अग्नि तेरी त्वचा की हानि न करे अग्नि पर उसे तपाना है इसलिए यह वचन कहता है ॥१२

अब उसके चारों ओर अग्नि की परिक्रमा करता है। मानो उसके चारों ओर एक छिद्र-रहित परिखा बनाता है जिससे राक्षस उसको ग्रहण न कर सकें क्योंकि अग्नि राक्षसोंका नाश करनेवाला हैइसीलिए अग्नि की परिखा बनाता है ॥१३

अब उसे इस मन्त्रांश को पढ़कर पकाता है—

देवस्त्वा सविता श्रपयतु बर्षिष्ठेऽधिनाके । १-२२

(देव सविता तुझे पकावे ।) पकाने वाला मनुष्य नहीं है। देव हैं। इसलिये देव सविता पकावे– ऐसा कहता है। अब कहता है स्वर्ग में अर्थात् देवों के स्थान में। अब यह कहकर छूता है, देखूँ पका कि नहीं। इसीलिए छूता है ॥१४

विधि ४८— वह इस मन्त्रांश को पढ़कर छूता है—

मा भेर्मा संविक्था: । १-२२ [मत डर, मत संकोच कर।]

डर मत, संकोच मत कर– कहने का तात्पर्य यह है कि मैं मनुष्य हूं और तू अमानुष अर्थात् देव है। मैं तुझे छूता हूं, डर मत ॥१५

जब पुरोडाश पकजाय तो ढक देता है कि कहीं राक्षस इसे देख न लें। अथवा यह कहीं नंगा और खुला न रहे। इसलिए वह उसको ढक देता है ॥१६

उसको इस मन्त्रांश से ढकता है—

अतमेरुर्यज्ञो अतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् ! १.२३

(यज्ञ हीन न हो, यजमान की संतान हीन न हो), अब मैं इसको ढक दूँ– ऐसा सोच कर ।१७

विधि ४९— अब पात्री को धोकर और अंगुलियों को धोकर धोवन को आप्त्य देवों के लिये डालता है ॥१८

अध्याय २ ब्राह्मण ३

अग्नि पहले ४ प्रकार विहित था। वह अग्नि जिसको उन्होंने पहले होता के लिए वरण किया वह भाग गया। दूसरी बार जिसको चुना वह भी भाग गया। तीसरी बार जिसको चुना वह भी भाग गया। इस पर आजकल जो अग्नि है वह डर कर छिप गया। वह आप: में प्रविष्ट हो गया, देवो ने उसे खोज लिया और बलात् वहाँ से निकाल लाये। अग्नि ने आप: पर थूक दिया और कहा तुम रक्षा के स्थान नहीं हो। मेरी इच्छा के बिना यह देव मुझको तुममें से खींच लाये। उनमें से ३ आप्त्य देव निकले त्रित, द्वित और एकत ॥१

वे इन्द्र के साथ फिरते रहे; जैसे आजकल ब्राह्मण राजा के साथ फिरा करते हैं। जब इन्द्र ने त्वष्टा के ३ सिरवाले विश्वरूप पुत्र को मारना चाहा तो वे इसके मारे जाने की बात जान गये और त्रितने उसे मार डाला। इन्द्र हत्या के इस पाप से बचा रहा, इन्द्र तो देव है ॥२

लोगों ने कहा 'यह पाप उन्हीं को लगना चाहिए जो यह जानते थे

पाप लगा देगा। इस प्रकार जब यह पात्रीको धोते हैं और उसी जल में अध्वर्यु अपनी अँगुलियाँ धोता है तो वह पाप यज्ञ द्वारा आप्त्यों को लग जाता हैं ॥३

आप्त्यों ने कहा 'इस पाप को हम आगे बढ़ा दें' लोगों ने पूछा किस तक ? आप्त्यों ने उत्तर दिया, उस तक जो बिना दक्षिणा दिये यज्ञ करता है। अतः बिना दक्षिणा दिये यज्ञ नहीं करना चाहिए। अन्यथा यज्ञ उस पाप को आप्त्यों तक पहुंचा देगा और आप्त्य उस मनुष्य तक जो बिना दक्षिणा के यज्ञ करता है ॥४

इस पर देवों ने दर्श–पूर्णमास इष्टियों में उस दक्षिणा की योजना की जिसको अन्वाहार्य कहते हैं,जिससे हवि दक्षिणा-रहित न रहे ॥५

विधि ५०— इस जल को तीनों आप्त्यों में अलग-अलग बाँटता है, गरम करके, जिससे वह उनके लिए पक जाय। यह मन्त्र पढ़ता है–

त्रिताप त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा। १.२३

हे त्रित तुझको इतना, द्वित तुझे इतना,एकत तुझे इतना, इस प्रकार बाँटता है। यह जो पुरोडाश है वह दर्शनीय रूप में प्राप्त किया है ॥५

देवों ने पहले-पहल पुरुष रूपी पशु को प्राप्त किया। उस पुरुष से मेध(बल) चला गया और घोड़े में घसा। उन्होंने घोड़े को प्राप्त किया तब मेध घोड़े से निकलकर गायमें घुस गया, जब उन्होंने गाय को प्राप्त तब मेध गाय में से निकल कर भेंड़ में घुस गया। जब उन्होंने भेंड़ को प्राप्त किया तब मेध भेंड़ में से निकल कर बकरी में चला गया। जब बकरी को प्राप्त किया तब मेध बकरी में से निकल भागा ॥६

वह इस पृथ्वी में चला गया। वह पृथ्वी को खोदकर खोजने लगे और उसको पा लिया। यही चावल और जौ हैं। इनको आजकल भी पृथ्वी से खेती करके निकालते हैं। उन सब पशुओं के पाने से जो लाभ होता है वही चावल की हवि से होता है, उस मनुष्य को जो इस रहस्य को समझकर यज्ञ करता है। यह (५ पशुओंवाला)पांक्त यज्ञ है।

यह जो पिट्ठी है वह लोम हैं। जो जल है वह त्वचा है। जब गूँधते हैं तो यह मांस है, मांस गूँधा हुआ होता है। पकाने से कड़ी हड्डी के समान हो जाता है। जब उसपर घी डालते हैं तो मज्जा हो जाता है। इस प्रकार यह हवि पांक्त पशु (दर्शनीय) हो जाती है ॥८

जिस पुरुष को प्राप्त किया था वह किं-पुरुष हो गया। जिस घोड़ेको और गाय को प्राप्तकिया था,वह गौर और गवय बनगये। जिस भेंड़को प्राप्त किया वह ऊँट बनगया। जिस बकरीको प्राप्त किया वह शरभ बन गयी। इसलिए हमें पाँच पशुओं का (दूध आदि) न खाना चाहिए, क्योंकि इनमें मेध (बल, शक्ति, सार) नहीं रहा ॥९ —※—

शतपथ कां. १ अ, २ ब्राह्मण ४

जब इन्द्र ने वृत्र को वज्र मारा तो उसके चार टुकड़े हो गये। इसके तीन भागों में तिहाई या उसके लगभग स्फ्य हो गया (स्फ्य तलवार की आकृति का [खदिर की] लकड़ी का होता है जो यज्ञ में काम आता है), तिहाई या लगभग यूप हो गया और तिहाई या लगभग रथ हो गया। जो भाग वृत्र के लगा वह टूट कर शर (बाण) हो गया। बाण को शर इसलिये कहते हैं कि वह टूट गया (शृ का अर्थ है टूटना)। वज्र के इस प्रकार चार टुकड़े हो गये ॥१

इनमें से दो टुकड़े ब्राह्मण यज्ञ के काम में लाता है अर्थात् स्फ्य और यूप। शेष दो टुकड़े क्षत्रिय लड़ाई के काम में लाता है अर्थात् रथ और शर ॥२

विधि ५०— वह स्फ्य को लेता है। जैसे इन्द्र ने वृत्र को मारने के लिये वज्र लिया था, उसी प्रकार अध्वर्यु पापी वैरी को मारने के लिए स्फ्य लेता है। स्फ्य लेने का यही प्रयोजन है ॥३

वह स्फ्य को इस मन्त्रांश को पढ़कर पकड़ता है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददेऽध्वरकृतं देवेभ्यः। १.२४

(देव सविता की प्रेरणा से, अश्विनों की भुजाओं से, देव पूषा के दोनों हाथों से, देवताओं के अध्वर के लिए तुझे उठाता हूं।) सविता देवों का प्रेरक है। अतः वह देव सविता की प्रेरणा से ही स्फ्य लेता है। अश्वि दो अध्वर्यु हैं। उन्हींकी भुजाओंसे उठाताहै,अपनी से नहीं। यह वज्र है। वज्र कोई मनुष्य उठा नहीं सकता। इसलिये वह देवोंकी सहायता से काम करता है ॥४

आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यः। १.२४ (मैं तुझे देवों के लिये लेता हूँ।)

'अध्वर' का अर्थ है यज्ञ। इसका तात्पर्य है कि वह देवों के लिए यज्ञ करता है। इसको बायें हाथ से उठाकर और दाहिने हाथ से छूकर जप करता है, जप का प्रयोजन है तेज करना ॥५

वह इस मन्त्रांश को जपता है—

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः। १.२४ (तू इन्द्र की दाहिनी बाहु है।) इन्द्र की दाहिनी बाहु बहुत बलवान् होती है, इसलिए यह कहता है—

सहस्रभृष्टिः शततेजाः।

(हजारों नोकों वाला, सैकड़ों धार वाला।) वज्र हजारों नोकोंवाला

था। इन्द्र ने जो वज्र फेंका, वह सैंकड़ों धारों वाला था। इस प्रकार वह स्फ्य में वैसी ही भावना करता है ॥६

वायुरसि तिग्मतेजाः। १.२४

(तू तेज धारवाला वायु है।) वायु जो बहता है तेज धारवाला होता है, क्योंकि वह संसार भर को चीर कर बहता है, इस प्रकार वह उसको तेज करता है।

द्विषतो वधः। १.२४ (वैरी के वध के लिए।)

चाहे किसीको मारना चाहे या न चाहे,उसे कहना चाहिए 'अमुक को मारने के लिए'। जब वह तेज हो जाय तो इससे न अपने को छुए,और न पृथ्वी को। यह सोचकर कि कहीं इससे मुझे वा पृथ्वीको हानि न पहुंच जाय। इसलिए न वह स्वयं को छूता है और न उससे पृथ्वी को छूता है ॥७

देव और असुर दोनों प्रजापति की सन्तान अपनी बड़ाई के लिये झगड़ बैठे। देवों ने असुरों को हरा दिया। परन्तु असुर भी देवों को कष्ट देने लगे ॥८

देवों ने कहा—हमने असुरों को हरा दिया फिर भी असुर हमको सताते रहे। क्या काम करें कि अब फिर हम असुरों को हरा दें और दुबारा लड़ना न पड़े ॥६

अग्नि ने कहा— वे उत्तर को भागे, वहाँ वे बच गये, उत्तर में भागने से वस्तुतः बच गये ॥१०

अग्नि ने कहा— मैं उत्तर की ओर से इनको घेर लेता हूं,तुम इधर से रोको। जब हम रोकेंगे तो तीनों लोकों से इनको दबा देंगे और तीनों लोकों के आगे जो चौथा लोक है, इससे वे फिर सिर न उठा सकेंगे ॥११

इस पर अग्नि उत्तर को चला गया और दूसरे देवों ने उन असुरों को इधर से रोक दिया, और रोक कर उनको तीनों लोकों से दबा दिया। और जो चौथा लोक इन लोकों से परे है उससे वह फिर न उठ सके। यह जो घास फेंकना है यह वही असुरों को दबाने के कृत्य का रूप है ॥१२

अग्नीध्र उत्तर की ओर जाता है क्योंकि अग्नीध्र अग्नि(नेता) है। अध्वर्यु उनको इधर से रोक देता है। इनको रोक कर इन लोगों द्वारा उनको दबा देता है। इन तीन लोकों के अतिरिक्त जो चौथा लोक हो वहाँ से भी वे उठने न पायें। वे इस प्रकार नहीं उठ पाते क्योंकि जैसे देवों ने पहले उनको रोक दिया था उसी प्रकार इन

ब्राह्मणों ने भी उनको रोक दिया ॥१३

जो यजमान से वैर करता है या उससे द्वेष करता है उसको वह इन तीनों लोकों द्वारा या यदि कोई चौथा लोक हो तो उसके द्वारा भी दबा देता है। इन तीनों अथवा चौथे से भी इसको निकाल देता है, क्योंकि इसी पृथ्वी पर सब लोक स्थित हैं यदि वह कहेगा कि मैं अन्तरिक्ष को फेंक दूं या द्यौ को फेंक दूँ तो वह क्या फेंकेगा ? अतः वह पृथ्वी से ही सबको फेंक देता है ॥१४

विधि ५१— वेदि का निर्माण

अब तृण को बीच में कर प्रहार करता है। बीच में तृणको इसलिए रखता है कि कहीं वज्र से पृथ्वी को हानि न पहुँच जावे ॥ १५

प्रहार करते समय इस मन्त्र को पढ़ता है—

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्यो- ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ १.२५

हे देवयजनि पृथ्वी, मैं तेरी ओषधियों के मूलको हानि न पहुँचाऊँ। इस प्रकार वह उसको उत्तर-मूला कर देता है अर्थात् उसके मूल सुदृढ़ हो जाते हैं। जब वह स्फ्य से खुदी हुई मिट्टी उठाता है तो कहता है, 'मैं तेरी ओषधियों के मूल को हानि न पहुँचाऊँ।' तू व्रज अर्थात गोशाला को जा। 'द्यौ तुझ पर वर्षा करें।' जब पृथ्वी खोदी गई तो खोदने में पृथ्वी को क्षति पहुँची। जल शान्ति है। अतः जल को वहाँ पर डाल कर उपशमन कर देता है। इसीलिए कहा कि द्यौ तुझ पर वर्षा करें। [खुदी हुई मिट्टी को फेंकते समय] कहता है– 'हे देव सविता, तू इसे पृथ्वी के परले सिरे से बाँध दे।' इसका तात्पर्य यह है कि 'गहरे अन्धेरे से बाँध'। 'सौ पाशों (फंदों) से' अर्थात् इस प्रकार कि वह छूटने न पाये। फिर कहता है– 'जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं उसको मत छोड़'। चाहे किसी निश्चित की ओर संकेत हो या न हो तो भी उसे कहना चाहिए कि 'अमुक अमुक को मत छोड़' ॥१६

अब स्फ्य से दुबारा प्रहार करता है। यह मन्त्रांश पढ़कर—

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासम्। १.२६

(मैं अररु (हिंसक) को इस यज्ञस्थली पृथ्वीसे दूर करता हूँ) अररु एक राक्षस (कूड़ा) है, देव उसे भगा देते हैं। इसी प्रकार अध्वर्यु भी अररु को भगाता है। अब फिर कहता है—

व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥१.२६

(तू गायों के स्थान अर्थात् व्रज को जा। द्यौ तुझपर वर्षें, सविता देव तुझे पृथ्वी के परले सिरे से बाँधे। जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं, उसको यहाँ से मत छोड़)॥१७

अग्नीध्र उस(कूड़े) को यह मन्त्रांश पढ़कर दूर फेंकता है—

अररो दिवं मा पप्त। १.२६

हे अररु [दुष्ट] तू स्वर्ग को न जा। जब देव राक्षस अररु को निकालते हैं तो वह द्यौ को जाना चाहता है। अग्नि ने उसे दबा दिया और कहा,- 'अररु तू द्यौ को मत जा।' वह द्यौ को नहीं गया। इसी प्रकार अध्वर्यु उसको पृथ्वी से छुड़ा देता है और अग्नीध् द्यौ से रोक देता है। यह इसीलिए किया जाता है॥१८

अब (स्फ्य से) तीसरी बार प्रहार करता है यह मन्त्र पढ़कर—

द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥ १.२६

(तेरा अंश द्यौ लोक को न जावे)। यह अंश वह रस है जिससे प्रजायें जीती हैं। इसलिए वह कहता है कि- तेरा अंश द्यौ लोक को न जावे। अब कहता है— गोशाला या व्रज को जा। द्यौ तुझ पर वर्षे। हे सविता देव, तू इसको पृथ्वी के परले सिरे से बाँध, सौ फन्दों से। जो हमसे द्वेष करे या हम जिससे द्वेष करें उसको मत छोड़॥१९

तीन बार यजुः मन्त्रों से उसको फेंकता है। तीन लोक हैं। इन तीन लोकों से उस बुराई को दबाता है। जो यह तीन लोक हैं वही वास्तव में यह यजुः हैं। इसलिए वह इस प्रकार यजुः मन्त्र पढ़कर प्रहार करता है ॥२०

चौथी बार चुपचाप। इन लोकों से परे कोई चौथा लोक है या नहीं इस लोक से उस शत्रु को भगा देता है। यह नहीं निश्चित है कि इन तीन लोकों से आगे कोई चौथा लोक है या नहीं। और जो मौन होकर किया जाय वह भी अनिश्चित ही है। इसलिये वह चौथी बार मौन होकर प्रहार करता है॥२१

अध्याय २ ब्राह्मण ५

प्रजापतिकी दो सन्तान देव और असुर अपने महत्त्वके लिए लड़पड़े। देव हार गये। असुरों ने सोचा, अब तो यह जगत् हमारा ही होगया ॥१

उस पर उन्होंने कहा— अच्छा, इस पृथ्वी को परस्पर बाँट लें और उस पर बस जायँ। अब उन्होंने उसको बैल के चमड़े से पश्चिम से पूर्व तक बांटा ॥२

देवों ने सुना और कहा— अरे! असुर तो पृथ्वी को वास्तव में बाँट रहे हैं। चलो, वहाँ चलें जहाँ बाँट हो रहा है। यदि हमको कोई भाग न मिला तो हम क्या करेंगे? विष्णु अर्थात् इस यज्ञ को अपना नेता बना कर वे वहाँ गये ॥३

और कहा— अपने साथ हमको भी कुछ बांट दो। हमारा कुछ तो भाग हो। असुरों ने संकोच करते हुए कहा— अच्छा हम तुमको केवल इतना भाग देते हैं जितने में विष्णु लेट सके ॥४

विष्णु तो वामन था। परन्तु देवोंको भय नहीं हुआ। उन्होंने कहा- इस यज्ञ भर को यदि स्थान मिल गया तो बहुत मिल गया ॥५

उन्होंने उस विष्णु या यज्ञ को पूर्व की ओर लिटा कर तीन ओर से छन्दों से घेर दिया —

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥१.२७॥

दक्षिण की ओर गायत्री छन्द से घेरता हूं, पश्चिम की ओर त्रिष्टुप छन्द से तुझे घेरता हूं, उत्तर की ओर जगती छन्द से तुझे घेरता हूं ॥३

इस प्रकार तीन ओर छन्दों से घेरकर पूर्व की ओर अग्नि को रखकर देव अर्चना और श्रम करते रहे। इस प्रकार होते-होते समस्त पृथ्वी ले ली। सब पृथ्वी ले ली इसलिए इसका नाम 'वेदि' पड़ा। इसीलिए कहते हैं कि जितनी वेदि उतनी पृथ्वी। क्योंकि इसी वेदि के द्वारा उन्होंने पृथ्वी जीत ली। जो इस रहस्य को समझता है वह इसी प्रकार समस्त पृथ्वी को अपने शत्रुओं से छीन लेता है और उनको उसमें भाग नहीं देता है ॥७

अब विष्णु थक गया। तीनों ओर से छन्दों द्वारा ढका हुआ था और पूर्व की ओर अग्नि था। अतः वहाँ से भाग न सकता था। इसलिए

वह ओषधियों की जड़ों में छिप गया ।।८

देव कहने लगे विष्णु कहाँ गया ? यज्ञ कहाँ गया ? वह तो छन्दों द्वारा तीनों ओर तथा अग्नि द्वारा पूर्व की ओर घिरा हुआ था । भाग तो सकता नहीं । उसे यहीं खोजना चाहिए, कुछ खोदा ही था कि उसे वहाँ पर ठीक पाया ,केवल तीन अँगुल नीचे । इसलिए वेदि को तीन अंगुल नीचे होना चाहिए । तदनुसार ही 'पाङ्चि' ने सोमयाग की वेदि तीन अँगुल गहरी ही रखी थी ।।९

किन्तु ऐसा न करे । यतः उन्होंने ओषधियों के मूल में यज्ञ को पाया, अतः (अध्वर्यु अग्नीध्र से कहे कि) ओषधियों की जड़ काट दो, क्योंकि वहाँ यज्ञ को पाया । इसलिए (विद् लाभे धातु से बन कर) इसका नाम वेदि पड़ा ।।१०

अब उन्होंने उसको फिर घेर दिया। दक्षिण का घेरा बनाते हुए कहा— [तू सुक्ष्मा (अच्छी भूमि) और शिवा (कल्याणी) है ।] इस प्रकार पृथ्वी को सुक्ष्मा और शिवा बना दिया । पश्चिम की ओर घेरा बनाकर कहा— [तू स्योना (सुखदा) और सुषदा (अच्छा आसन) है]। इस प्रकार उसको स्योना, सुखदा बना दिया । उत्तर की ओर घेरा बनाकर कहा— तू ऊर्जस्वती(अन्नवाली), पयस्वती (दूध या रस वाली) है। इस प्रकार उस भूमि को रसवती और बसने योग्य बना दिया ।।११

वह पहले तीन, फिर तीन— इस प्रकार ६ घेरे बनाता है । ६ ही संवत्सर की ऋतुएँ हैं जो यज्ञ प्रजापति है। जितना यज्ञ है, जितनी उसकी मात्रा है, उतना ही उसे घेरता है ।।१२

६ व्याहृतियों से पहले घेरे को, ६ से दूसरे को— इस प्रकार १२ से ग्रहण करता है । १२ ही संवत्सरके मास हैं जो यज्ञ प्रजापति है। जितना ही यज्ञ और उसकी मात्रा है उतना ही बड़ा घेरा बनाता है ।।१३

कुछ कहते हैं कि वेदि व्याममात्र[पुरुष के बराबर]पश्चिम को लम्बी हो, पूर्व की ओर ३ अरत्नि [हाथ] हो, क्योंकि यज्ञ त्रिवृत् है । किन्तु यहाँ मात्रा नहीं है, जितनी मन से माने उतनी करे ।।१४

अग्नि के दोनों ओर वेदि की २ बाहें बढ़ाते हैं, क्योंकि वेदि स्त्री है, अग्नि पुरुष। बाहें लपेट कर स्त्री पुरुष के पास सोती है । यह जोड़ा ही प्रजनन करता है, अतः अग्नि के दोनों ओर वेदि की बाँहें बनाता है ।।१५

वह पश्चिम में चौड़ी, बीच में तंग और पूर्व में फिर चौड़ी हो । ऐसी ही स्त्री प्रशंसित है, नीचे का भाग भारी, कन्धों के पास कुछ कम चौड़ी और बीच में पतली । ऐसी ही वेदि देवों के लिए बनाता है ।।१६

वह वेदि पूर्व की ओर ढालू हो, क्योंकि वह देवों की दिशा है। उत्तर को भी ढालू हो, क्योंकि वह मनुष्यों की दिशा है। पुरीष को दक्षिण की ओर हटाता है क्योंकि यह पितरों की दिशा है। वह यदि दक्षिण को ढालू हो तो शीघ्र ही यजमान उस लोक को चला जाय। ऐसा करने से यजमान बहुत जीता है। इसलिए पुरीष [गोबर आदि] को दक्षिण की ओर हटाता है। उसको पुरीष वाली करे। पशु ही पुरीष हैं। इस प्रकार इसको पशु-युक्त करता है ॥१७

वेदि को लोपता है। संग्राम को तय्यारी करते हुए देवों ने कहा— अरे! इस पृथिवी का जो पवित्र देवयजन हो उसको चन्द्रमा में रखदें, वह यदि हमें यहाँ से असुरों ने जीत लिया तो हम अर्चा और श्रम करते हुए फिर हरायें—इस प्रकार जो इस पृथिवी का पवित्र देवयजन था उसको चन्द्रमा में रख दिया। वह चन्द्र में काला भाग है, अतः कहते हैं कि चन्द्र में इस पृथिवी का देव-यजन है, इससे भी इसका इस वेदि में इष्ट होता है, अतः वह उसको लोपता है— ॥१८

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् उदादाय पृथिवीं जीवदानुम्।
यामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिः तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते ॥ य १.२८

हे शक्तिमन्, इधर-उधर गति करते हुए क्रूर के पहले। क्रूर-यह संग्राम का नाम है, क्योंकि इसमें क्रूरता की जाती है, पुरुष मरा, घोड़ा मरा सो रहा है। वे पहले ही पृथिवी के जीवन-दान। भाग को उठाकर चन्द्रमा में ले गये। जिसे चन्द्रमा में स्वयं धारक शक्तियों से विज्ञान के द्वारा प्रेरित किया। धीर उसी भूमि का अनुदेश करके यज्ञ करते हैं। जो इसे जानता है उसका यज्ञ इस वेदि पर सफल होता है ॥१९

अब वह कहता है—

प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि (प्रोक्षणीपात्रों को रक्खो) यजु १.२८

स्फ्य-वज्र और ब्राह्मण ने इस यज्ञकी पहले रक्षा की। जल भी वज्र है, अतः अब इसे ही रक्षा के लिए रखता है। पहले स्फ्य को उठा लेता है। यदि बिना उठाये प्रोक्षणी रखे तो दो वज्र टकरा जायँ, इसीलिए प्रोक्षणियों को रखने से पहले स्फ्य को उठा लेता है ॥२०

अब इस वाणी को बोलता है — प्रोक्षणियाँ लाओ, समिधा-बर्हि पास रखो, स्रुक् माँजो, पत्नी तय्यार कर घी लेकर आओ। यह आज्ञा ही है। वह चाहे कहे चाहे नहीं, अग्नीध्र स्वयं ही जानता है ॥२१

अब उत्तर की ओर स्फ्यको फेंकता है, यदि अभिचार करे तो कहे— मैं ...के लिए तुझ वज्रको फेंकता हूं, इससे स्फ्य-वज्र नाश करेगा ॥२२

अब हाथ धोता है, क्योंकि जो कुछ क्रूर था उसे फेंक दिया ॥२३

जिन्होंने पहले यज्ञ किया था उन्होंने वेदि छुए हुए ही यज्ञ किया। वे पापी थे। जिन्होंने हाथ धो डाले, उन्होंने ठीक किया। अब अश्रद्धा उत्पन्न हो गई। लोग कहने लगे 'जो यज्ञ करते हैं वे पापी हो जाते हैं। जो यज्ञ नहीं करते वे पुण्यवान् होते हैं'। अब इस पृथ्वी से देवताओं के पास कुछ हवि नहीं पहुँची। देवता तो उसी हवि के आश्रय रहते हैं जो इस पृथ्वी लोक से दी जाती है ।।२४

तब देवोंने बृहस्पति आंगिरस से कहा— मनुष्य में अश्रद्धा ने घर कर लिया है उनके लिए यज्ञ का आदेश दीजिए। तब बृहस्पति आंगिरस ने कहा– आप लोग यज्ञ क्यों नहीं करते? वे बोले— यज्ञ क्या करें? जो यज्ञ करते हैं, वे पापी होजाते हैं। जो यज्ञ नहीं करते वे पुण्यात्मा हैं।।२५

तब बृहस्पति आंगिरस ने कहा– 'हमने ऐसा सुना है कि जो देवताओं के लिए तैयार किया जाता है अर्थात् पकी हुई हवि, वही यज्ञ है। तुमने वेदि को छूकर(मिट्टी से सने हुए हाथों से) उस हवि को बनाया, अतः पापी हो गये। वेदि को न छूकर करते तो पुण्यात्मा होते। बिना छुये ही यज्ञ करो, ठीक हो जायगा'। बर्हि से वेदि सन्तुष्ट रहती है। इसलिये यदि बर्हि बिछाने से पूर्व वेदि पर कोई चीज गिर जाय तो बर्हि बिछाते ही समय उठानी चाहिए। क्योंकि जब वह बर्हि को बिछाते हैं तो वेदि पर पैर रखते हैं। जो इसे समझता है वह कल्याण को प्राप्त करता है। अतः वेदि को बिना छुए ही यज्ञ करें ।।२६

अध्याय 3 ब्राह्मण 1

विधि ५२— अत्र (अग्नीध्) चमचों को मांजता है। चमचों को इसलिए मांजता है कि जैसा मनुष्यों का चलन होता है वैसा ही देवों का। जब मनुष्यों का भोजन परोसा जाता है तो ।।१

बरतनों को मांजते हैं, और तब उसमें खाना परोसते हैं। इसी प्रकार देवों को हवि दी जाती है। अर्थात् हवि को पकातेहैं और वेदि को बनाते है और देवोंके पात्रों अर्थात् चमचों आदि को ठीक करते हैं ।।२

जब वह मांजता है तो धोता भी है। मैं इस प्रकार धुले पात्रों से यज्ञ करूँगा। देवोंके पात्रोंको दो चीजों से शुद्ध करतेहैं और मनुष्यों के पात्रों को एक से। देव-पात्रों को जल और प्रार्थना से। कुश जल का प्रतिनिधि है और प्रार्थना तो है ही। मनुष्यों के पात्रों को केवल एक अर्थात् जल से इस प्रकार दोनों में भेद हो जाता है ।।३

विधि ५३— पहले स्रुवा को लेता है, और आग पर तपाता है—

शतपथ अ, ३ ब्राह्मण. १

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः। झुलस गये राक्षस, झुलस गये शत्रु। जल गये राक्षस जलगये शत्रु ॥४

जब देवों ने यज्ञ किया था तो उनको भय था कि राक्षस असुर कहीं यज्ञ को विध्वंस न कर दें। अतः वह पहले से ही राक्षस और असुरों को भगा देता है ॥५

वह पात्र के आगे से लेकर भीतर को ओर स्रुवा को माँजता है—

अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्। य० १.२६

(तू तेज तो नहीं है। परन्तु शत्रुओं का घातक है।) यह इसलिए कहता है कि यजमान के शत्रुओ को मार दे।

वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि। य० १.२६

(मैं तुझ अन्नवाले को अन्न के लिये माँजता हूं।) इसी प्रकार सब को माँजता है। स्रुवा पुल्लिङ्ग है अतः उसको माँजते हुए वाजिन पुल्लिग का प्रयोग करता है। स्रुच् स्त्रीलिंग है अतः उसको माँजते समय वाजिनी स्त्रीलिग का प्रयोग करता है। प्राशित्रहरण नामक खदिर के पात्र को मौन होकर माँजता है ॥६

आगे से लेकर भीतर इसलिए माँजता है कि प्राण और उदान की गति इसी प्रकार है। इस प्रकार वह प्राण और उदान को प्राप्त करता है भुजामें कोहनी से ऊपर के लोम ऊपर की ओर होते हैं नीचे के नीचे।७

ज्यों ज्यों वह धोकर तपाता है (अध्वर्यु को) देता जाता है। जैसे बर्तनों को माँजते समय पहले तो हाथ लगाकर माँजते हैं फिर बिना हाथ लगाये पानी डालकर धो देते हैं। इसी प्रकार वह माँजकर तपा कर अध्वर्यु को दे देता है ॥८

स्रुवाको पहले माँजता है। सब स्रुच् तो स्त्री है और स्रुवा पुरुष। यों तो स्त्रियाँ एक साथ चलती हैं। परन्तु उसमें जो पुरुष होता है वह आगे चलता है और स्त्रियाँ उसके पीछे। इसीलिए वह स्रुवा को पहले माँजता है और अन्य स्रुच् आदि को पीछे ॥९

इसको इस प्रकार माँजना चाहिए कि कोई भाग आग में न पड़ने पावे। ऐसा करने से तो वह खाने वाले के ऊपर बरतनों का मैल डाल देगा। इसीलिए इस पकार माँजना चाहिए कि आग में बरतनों का मैल न पड़ने पावे। अर्थात् आहवनीय से पूर्व की ओर माँजे ॥१०

कुछ स्रुच् को माँजनेवाले कुश अग्नि में डाल देते हैं कि उन्हें यज्ञ से बाहर नहीं फेंकना चाहिए किन्तु ऐसा न करे यह ऐसा ही होगा। जिस के लिये भोजन दिया जाय उसी को धोवन भी पिलाया जाय। अतः

इन्हें बाहर ही फेंके ॥११

विधि ५४— अब यजमान की पत्नी की (अग्नीध्र) कमर कसता हैं। पत्नी यज्ञ का पिछला भाग है। जब अग्नीध्र उसकी कमर कसता है तब वह सोचती जाती है कि यज्ञ मेरे सामने फूले फले। अग्नीध्र सोचता है कि वह मेरे यज्ञ में कमर कसी हुई (तैयार) बैठी रहे ॥१२

पत्नी की कमर रस्सी से कसता है। रस्सी से ही पशुओं को बाँधते हैं। पत्नी का वह भाग जो नाभि से नीचे होता है अपवित्र होना है, उस अपवित्र भाग से ही वह आज्य के सामने आवेगी। अतः वह कमर में रस्सी बाँध देता है कि उसका ऊपर का भाग ही जो पवित्र है वह सामने आवे ॥१३

रस्सी को वस्त्रों के ऊपर बाँधते हैं। वस्त्र ओषधि का रूपान्तर है रस्सी वरुण की पाश है। इस प्रकार ओषधि पत्नी की शरीर और वरुणकी गाँठ के बीचमें आ जाती है। इस प्रकार यह वरुणकी रस्सी पत्नी को हानि नहीं पहुंचा सकती। अतः वह वस्त्रों केऊपर कसता है।१४

वह कमर कसते समय पढ़ता है—

अदित्यै रास्नासि। य० १.३० (तू अदिति की रास्ना है।)

यह पृथ्वी ही अदिति है। वह देवों की पत्नी है। और यह स्त्री यजमान की पत्नी है। इस प्रकार वह इस रस्सी को रस्सी न मानकर केवल यजमान की पत्नी की रास्ना(सीमा) बना देता है॥१५

रस्सी में गाँठ नहीं बाँधनी चाहिए। गाँठ वरुण की होती है। गाँठ बाँधने से वरुण पत्नीको पकड़लेगा। इसलिये गाँठ नहीं बाँधता ॥१६

निम्न मन्त्रांश पढ़कर वह उसे ऊपर की ओर मोड़ देता है—

विष्णोर्वेष्पोऽसि। य० १.३० (तू विष्णु से व्याप्य है।)

पत्नी को चाहिए कि वह वेदि के पश्चिम में पूर्वाभिमुख न बैठे। यह पृथ्वी अदिति है वह देवों की पत्नी है, देवो की पत्नी वेदि के पश्चिम को पूर्वाभिमुख बैठती है। यदि वह स्त्री ऐसा ही करेगी तो अदिति हो जायगी और शीघ्र ही परलोक सिधारेगी। अपने नियत स्थान पर बैठकर बहुत दिनों जीती है। अदिति को प्रसन्न रखती है और अदिति उसको हानि नहीं पहुँचाती। इसलिए उसको दक्षिण की ओर हट कर बैठना चाहिए ॥१७

अब वह (पत्नी) आज्य को देखती है। पत्नी स्त्री है और आज्य वीर्य है। इस प्रकार दोनों में सम्पर्क स्थापित करके सन्तति-प्रजनन कर देता है। इसीलिए पत्नी आज्य को देखती है ॥१८

वह यह मन्त्रांश पढ़कर आज्य को देखती —

अदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि । य० १.३०

(मैं तुझको दोष-रहित आँख से देखती हूं।) अर्थात् शुभ दृष्टि से।

अग्नेर्जिह्वासि, सुहूर्देवेभ्यः, धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥१.३०

तू अग्नि की जीभ है। अग्नि में उसकी आहुति देते हैं तो अग्नि की जीभ उसे ले लेती है। अतः आज्य अग्नि की जीभ है। तू देवों के लिए 'सुहू' है। अर्थात् भलीभाँति निमन्त्रित। मेरे कल्याण के लिए कृत्य हो। तात्पर्य यह है कि यह आज्य समस्त यज्ञ केलिए सुहू हो ॥१९

विधि ५५— अग्नीध्र आज्य को लेकर कुछ पूर्व की ओर ले जाता हैं। जो अपनी हवियों को आहवनीय अग्नि पर पकाते हैं उनके यहाँ यह आज्य आहवनीय अग्नि पर पकाते हैं, यह मानकर कि हमारी समस्त हवियाँ आहवनीय पर पकें। गार्हपत्य पर यह आज्य को इस लिए रखता है कि पत्नी को देखने का अवकाश मिल सके। यह तो ठीक न होगा कि यज्ञ करते समय आहवनीय अग्नि पर से उठा कर आज्य को केवल इसलिए पश्चिम को लाया जाय कि पत्नी को देखने का अवकाश मिल सके। यदि पत्नी का आज्य न दिखाया जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि पत्नी को यज्ञ में कोई अधिकार नहीं दिया गया। ऐसा करने से वह पत्नी को यज्ञ के अधिकार से बहिस्कृत नहीं समझता, और (गार्हपत्य पर) पत्नी के निकट पकाकर और पत्नी को दिखाकर ही पूर्व की ओर ले जाता है। यदि पत्नी न हो (मर गई हो या अन्य कारण हो) तो पहले से ही आहवनीय पर रखा देता है। फिर वहाँ से उठाकर वेदि के भीतर रख देता है ॥२०

कुछ लोग कहते हैं कि वेदि के भीतर न रखना चाहिए। इससे देव पत्नियों के लिए आहुति दी जाती है। देव-पत्नियों को सभा से बहिष्कृत कर देता है। और यजमान की पत्नी भी यजमान से रुष्ट हो जाती है। इस पर याज्ञवल्क्य का कहना है कि पत्नी के लिए जो नियत है वही होना चाहिए। किसको चिन्ता है कि उसकी पत्नी दूसरों से सम्बन्ध रखती है। वेदि यज्ञ है। और आज्य भी यज्ञ है, मैं यज्ञ में से यज्ञ बनाऊँगा। इसलिए आज्य को वेदि में रखना चाहिए ॥२१

दोनों पवित्रे प्रोक्षणी-पात्रों में होते हैं। वह उनको वहाँ से निकाल कर आज्य को पवित्र करता है। उनमें से एक तो उत्पवन का है। इस प्रकार वह आज्य को यज्ञ के योग्य बनाता है ॥२२

वह यह मन्त्र पढ़कर पवित्र करता है—

सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।१.३१

(सविता के प्रसव में छिद्र-रहित पवित्र। से सूर्य की किरणों द्वारा तुझे पवित्र करता हूं।) शेष स्पष्ट है ॥ २३

अब घी से लिपटे पवित्रों से प्रोक्षणियों को पवित्र करता है—

सवितुर्वः प्रसवऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ॥१.३१॥

(तुम्हें सविता के प्रसव में अछिद्र पवित्र से सूर्य की रश्मियों से पवित्र करता हू) यह स्पष्ट है ॥२४

घीसे लिपटे पवित्रोंसे प्रोक्षणियों का पवित्र करना जलमें दूध रखना है। यह जलमे दूध रखता है। जब बरसता है तब ओषधियाँ पैदा होती हैं उन्हें खाकर, जल पीकर उससे यह रस बनता है। उसी से यजमान को रस वाला और सर्वस्व के लिए योग्य करता है ॥ २५

विधि ५६— अब अध्वर्यु आज्य को देखता है। कुछ कहते हैं कि यजमान देखे। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि वे स्वयं ही अध्वर्यु क्यों नहीं हो जाते ? क्यों स्वयं ही आशीर्वाद नहीं देते ? क्यों इनकी यहीं श्रद्धा होती है ? ऋत्विज यज्ञमें जिस किसी आशीर्वाद को देते हैं वह यजमान का ही होता है अतः आज्य को अध्वर्यु ही देखे ॥२६

वह देखता है। सत्य ही चक्षु है, सत्य निश्चय ही चक्षु है। इसीलिए जब विवाद करते हुए दो आते हैं कि मैंने देखा, मैंने सुना— उनमें जो ही कहे कि मैंने देखा उसी पर श्रद्धा करते हैं। अतः वह सत्य से ही इसे समृद्ध करता है ॥२७

वह इस मन्त्र को पढ़कर अवलोकन करता है—

तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि (तू तेज है, शुक्र है, अमृत है) १.३१

वह यह सच्चा ही मन्त्र है — यह (घी) तेज, शुक्र, अमृत है। अत. सत्य से ही इसे समृद्ध करता है ॥ २८

अध्याय 3 ब्राह्मण २

पुरुष निश्चय ही यज्ञ है, क्योंकि वह इसका विस्तार करता है। यह विस्तृत किया जाता हुआ, जितना ही पुरुष है उतना, विधान किया जाता है इसलिए पुरुष यज्ञ है ॥ १

उसकी यही (दाहिनी भुजा) जुहू, यही (बाईं) उपभृत, आत्मा ही ध्रुवा है, उसी आत्मा से ही ये सब अङ्ग प्रभावयुक्त होते हैं इसीलिये ध्रुवा से सब यज्ञ प्रभावयुक्त होता है ॥ २

प्राण ही स्रुवा है। वह यह प्राण सब अङ्गों में जाता है वैसे ही स्रुवा सब स्रुचों (चमचियों) में जाता है ॥ ३

उसकी वही द्यौ जुहू, यह अन्तरिक्ष उपभृत् और यह पृथ्वी ध्रुवा है। इसीसे ये सब लोक उत्पन्न होते हैं वैसे ही ध्रुवा से सब यज्ञ होताहै ॥४

यही (वायु: जो वहता है स्रुवा है। वह इन सब लोकों में चलता है वैसे ही स्रुवा सब स्रुचों में चलता है ॥५

विस्तारित यज्ञ देव–ऋतु–छन्दों के लिये है। जो हवि-सोम-पुरोडाश है वह उन उन का नाम लेकर ग्रहण करता है कि मैं अमुक के लिये लेता हूँ और वह उनकी हो जाती है॥ ६

विधि ५७—जुहू में ४ बार, उपभृत् में ८ बार जो आज्य लिये जाते हैं वे ऋतुओं और छन्दों के लिये, उनका नाम लिए बिना, लेता है॥ ७

जुहू में ४ बार ऋतुओं=प्रयाजों के लिए, अजामिता–हेतु बिना नाम लिए, लेता है। यदि वसन्त ग्रीष्म आदि के लिए कहे तो जामि (दोष) हो जाय अतः आज्य के ही रूप से लेता है ॥८

उपभृत्में आज्य ८ बार छन्दों=अनुयाजों के लिए बिना नाम लिए लेता है, गायत्री–त्रिष्टुप् आदि नाम कहने से जामि (दोष) होगा ॥९

विधि ५८—ध्रुवा में ४ वार घी सब यज्ञ के लिए बिना देवता–नाम लिये लेता है। किस किस का नाम ले ?क्योंकि सभी देवताओंके लिये निकालता है अतः नाम के बिना, आज्य के ही रूप में देता है॥ १०

यजमान ही जुहूके पीछे और जो इसके लिये अराति(अदानी)हो वह उपभृत्के पीछे रहे। अत्ता ही जुहू के, और आद्य उपभृत्के पीछे हों।११

वह जुहू में ४ बार लेकर खानेवाले को परिमित–छोटा, और उपभृत् में ८बार लेकर खाद्यको अपरिमित–वड़ा करता है। वही समृद्ध है जहाँ अत्ता छोटा और खाद्य बड़ा–बहुत हो॥ १२,

वह जुहूमें ४वारमें अधिक उपभृत् में ८ बार में कम घी लेता है॥१३

४ बारमें बहुत और ८ बार में उससे कम लेकर वह अत्ता को छोटा परिमित करके उसमें वीर्य–वल धारण कराता. और खाद्य को बड़ा–अपरिमित करके अवीर्य–निर्बल करता है। जैसे राजा अपार प्रजा को वशमें करके भी एक स्थान से ही मनचाहा राज्य करता है वैसे ही अध्वर्यु जुहू में अधिक घी लेकर उसकी, और उपभृत् में लिये घी की भी जुहू से ही आहुति देता है ॥१४

प्रश्न कहते हैं— यदि उपभृत् से आहुति नहीं तो उसमें लेना क्यों ? उत्तर—यदि न ले तो ये प्रजाएँ अलग हो जायँ, न अत्ता हो न आद्य, जैसे ये प्रजाय क्षत्रिय के लिये कर देती, क्षत्रिय के ही वश में होने पर वैश्य को पशु आदि मिलते हैं। क्षत्रिय जब चाहे वैश्यसे कहे—जो मेरे

आधीन एकत्र किया वह ला। इस प्रकार वह उसको वश में रखता और जैसा चाहता है वैसा इस शक्ति से ले लेता है ॥ १५

ये आज्य छन्दोंके लिए लिये जाते हैं, जुहू में गायत्री, उपभृत् में त्रिष्टुप्-जगती, ध्रुवामें अनुष्टुप्के लिए। वाणी और पृथ्वी अनुष्टुप् है, उनसे यह सब, और इस ध्रुवा से यज्ञ उत्पन्न होता है ॥१६

विधि ५६—निम्नांकित मन्त्र पढ़कर वह आज्य लेता है—

धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देव-यजनमसि ॥ (य १.३१)

यही आज्य देवों का प्रियतम धाम है। आज्य वज्र है अतः कहा—तू अजेय देव-यजन है ॥१७

वह घी लेता है— इस यजु से जुहू और ध्रुवा में १ बार, ३ बार मौन, इसी यजु से उपभृत् में १ बार, ७ बार मौन। कुछ कहते हैं कि मन्त्र ३-३ बार कहे क्योंकि यज्ञ त्रिवृत है। किन्तु १-१ बार बोलने से भी यहाँ ३ बार हो जाता है ॥ १८

इति द्वितीयं ब्राह्मणम् समाप्तम्

शतपथ कां. १ अ. ३ ब्राह्मण ३

विधि ६०— अध्वर्यु प्रोक्षणियों को लेता है। पहले इध्म का—

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। य २.१

(हे ईंधन, तू काला, वेदि में स्थित है; तुझे अग्नि के लिये शोधता हूं) यह कहकर प्रोक्षण (जल-सिंचन) करता है ॥१

फिर वेदि का प्रोक्षण अगले मन्त्रांश से करता है—

वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टांप्रोक्षामि(तू वेदि है बर्हिकेलिये तुझे शोधताहूं)

इस प्रकार बर्हि (कुश) के लिये वेदि को पवित्र करता है ॥ २

विधि ६१—अग्नीत् इसके लिये बर्हि देता, वह उन्हें ग्रन्थियाँ पूर्वको करके रखता और प्रोक्षण कर स्रुचों के लिये पवित्र करता है—

बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ य २.१

विधि ६२— अब जो जल बचा उसे औषधियोंके मूलमें डालता है—

अदित्यै व्युन्दनमसि। (तू अदिति के लिये गीला करनेवाला है)

यह पृथ्वी ही अदिति, अतः इसी की ओषधियों की जड़ों को सींचता, वे तर होतीं हैं, यद्यपि आगे के भाग सूखे रहते हैं ॥४

विधि ६३—अब गाँठ खोलकर सामने से प्रस्तर (सिरा) लेता है—

विष्णो स्तुपोऽसि ।(तू विष्णु का स्तुप है) य २.२

विष्णु यज्ञ, उसकी यही शिखा आगे से लेकर इसमें रखता है ॥५

विधि६४.अब वह बर्हिका गट्ठा खोलता है जैसे इसकी स्त्री सन्तान उत्पन्न करती हो। उसे वेदि की दाहिनी श्रोणि में रखता है, क्योंकि यह इसकी दक्षिण की ओर नीवि के समान है। अब उसको बर्हि से छा देता है जैसे कमर कपड़े से ढकी रहती है ॥६

विधि ६५— अब बर्हि को बिछाता है। यह प्रस्तर स्तुप है, शेष बर्हि नीचेके लोमोंके समान है जिन्हें इसमें रखता है अतः बर्हि बिछाता है ॥७

वेदि स्त्री है,उसके चारों ओर देव और शुश्रुवान् श्रेष्ठ ब्राह्मण बैठते हैं। वह नग्न न रहे अतः बर्हि बिछाता है ॥८

जितनी वेदि है उतनी पृथिवी। बर्हि ओषधियाँ हैं। वह इनको उसपर रखता हैं,वे ओषधियाँ पृथिवीपर प्रतिष्ठित हुईं,अतः बर्हि बिछाता है ॥६

कुछ लोग कहते हैं कि बहुत बिछाए। क्योंकि जहाँ ओषधियाँ बहुत होती हैं वह इसका सर्वाधिक जीवनीय भाग है। ३ बार बिछाए क्योंकि यज्ञ त्रिवृत् है, सिरे ऊपर रखकर बिछाए क्योंकि ऋषि(ईश्वर)ने कहा—

स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् (ऋ ७.३२) (बर्हि को जड़ नीचे कर बिछाते हैं) जड़ों को नीचे की ओर करके बिछाये। ये ओषधियाँ इस पृथिवी पर जड़ नीचे करके प्रतिष्ठित हैं ॥१०

वह इस मन्त्र को पढ़कर बर्हि को बिछाता है—

ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः (य २.२)

ऊन के समान नरम, देवों के लिए प्रिय तुझको बिछाता हूं।' ऊन के समान नरम इसलिए कहा कि देव सुख से बैठ सकें ॥११

अब अग्नि को ठीक करता है। आहवनीय अग्नि यज्ञ का सिर है। पूर्वार्ध सिर। इसको यज्ञ का पूर्वार्ध करता है। जब आग को ठीक करता है तो ऊपर प्रस्तर को उठाये रखता है। प्रस्तर स्तुप या चोटी है। मानो वह उसको धारण कराता है। इसीलिए प्रस्तर को इसके ऊपर-ऊपर उठाये रखकर अग्नि को ठीक करता है ॥१२

विधि ६६– अब आगके चारों ओर ३ परिधियाँ(लकड़ियाँ)रखता है। परिधियां इसलिए रक्खी जाती हैं। जब देवों ने अग्नि को होता के रूपमें वरण किया तो अग्नि बोला मुझे उत्साह नहीं कि होता बनूं और हव्य को ले जाऊँ। तुमने तीन होता बनाये थे, वे लुप्त हो गये। उनको मुझे दिला दो, मैं तुम्हारा होता बनूंगा और हव्यको ले जाऊँगा। तब उन्होंने इन तीन परिधियों की कल्पना की १३

उसने अब कहा वषट्कार रूपी वज्र ने उन तीनों (होताओं)को मार डाला था। मुझे डर है कि वषट्कार मुझे भी न मार डाले। इसलिए इन तीन परिधियों की स्थापना कर दो। तब वषटकार मुझे मार नहीं

सकेगा। अतः उन्होंने इन ३ परिधियों की स्थापना कर दी। अतः वह उसको मार न सका। ये ३ परिधियाँ अग्नि के लिए कवच हैं।।१४

तब (दूसरी अग्नियों ने) कहा— यदि यह है तो हमें यज्ञ में नियुक्त करो और हमारा भी यज्ञ में भाग हो ॥१५

देव बोले—तथाऽस्तु। जो परिधि के बाहर गिरे, जो तुममें आहुति हो, जो ऊपर ऊपर गिरे सब तुम्हारा। इस प्रकार सब अग्नि के लिए है। जो आज्य गिरे तो पाप नहीं। वे इस पृथ्वी में घुसीं अतः जो कुछ गिरे सब इसी में रहेगा ॥१६

वह गिरे हुए को इस मन्त्रसे स्पर्श करता है—

भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा (य २.२)

ये ३ नाम भुवपति, भुवनपति और भूतानाम्पति— इन ३ अग्नियों के हैं जिनको 'वषट्' कहकर आहुतियाँ दी जातीं हैं ॥१७

कुछ लोग समिधाओं की ही परिधियाँ बना देते हैं किन्तु ऐसा न करे। समिधा अग्नि पर रखने के लिए होने के कारण परिधि के योग्य नहीं। अतः अन्य ही परिधियाँ बनाए ॥ १८

वे पलाश से निर्मित हों क्योंकि वह तथा अग्नि दोनों ब्राह्मण हैं ॥ १६

यदि पलाश न मिले तो विकङ्कत, कार्ष्मर्य, बेल, खदिर, उदुम्बर की हों, ये वृक्ष यज्ञिय हैं अतः इन वृक्षों की परिधियाँ होतीं हैं ॥ २०

अध्याय 3 ब्राह्मण 4

वे परिधियाँ हरी होनी चाहिए। यही हरापन उनका जीवन है। इसी से उन में शक्ति रहती है। इसलिए हरी होनी चाहिए ॥१

बीच की परिधि के पहले [अग्नि के पश्चिम की ओर] यह मन्त्र पढ़कर रखता है—

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥ य० २.३

गन्धर्व विश्वावसु तुझको विश्व के कल्याण के लिए रखे। तू यजमान की परिधि (रक्षक) है। तू पूज्य अग्नि है ॥२

दक्षिण की परिधि को यह मन्त्र पढ़कर रखता है—

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥ य० २.३

तू इन्द्र की दाहिनी भुजा है। विश्व की शान्ति के लिए। तू यजमान की परिधि (रक्षक) है। तू पूज्य अग्नि है ॥६

शतपथ अ,३ ब्राह्मण ४.

अब उत्तर की ओर परिधि को यह मन्त्रांश पढ़कर रखता है—

मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्टयै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः य० २.३

मित्र और वरुण देवता तुझको उत्तर की ओर रक्खें, ध्रुव नियम से विश्व के कल्याण के लिये। तू यजमान की परिधि है। तू अग्नि है। यह परिधियाँ अग्नि ही हैं। इसलिए कहता है तुम पूज्य अग्नि हो ॥४

विधि ६७— अब एक समिधा रखता है। पहले वह समिधा से बीच की परिधि को छूता है। इस प्रकार वह तीन परिधियों (लकड़ियों) को जलाता है। फिर वह उस समिधा को आग पर रख देता है। इससे वह प्रत्यक्ष अग्नि को जलाता है ॥५

वह इसको गायत्री छन्द (य० २.४) से रखता है—।

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥

हे कवि अग्नि, तुझ देवों को बुलाने वाले, प्रकाश-स्वरूप को हम जलाते हैं। यज्ञ में बलवान् तुझको। इस प्रकार वह गायत्री को दीप्त करता है। गायत्री दीप्त होकर दूसरे छन्दों को दीप्त कर देती है और दूसरे छन्द दीप्त होकर यज्ञको देवों तक ले जाते हैं ॥६

अब वह दूसरी समिधा रखता है। उससे वह वसन्त को प्रज्वलित करता है। वह प्रज्वलित वसन्त दूसरी ऋतुओं को प्रज्वलित करता है। प्रज्वलित ऋतुयें सन्तान को उत्पन्न करती हैं, ओषधियों को पकाती हैं। वह इस मन्त्रांश को पढ़कर रखता है—

समिदसि। य० २.५

तू समित् है। वस्तुतः वसन्त समित् है ॥७

अब उसको रखकर जपता है —

सूर्यस्त्वा पुरस्तात्पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै। य० २.५

सूर्य तेरी पूर्व की ओर से रक्षा करे और अन्य बुराई से भी। परिधियाँ चारों ओर से रक्षा के लिये होती हैं। इस प्रकार वह पूर्व में सूर्य को रक्षक बना देता है कि कहीं पूर्व से दुष्ट राक्षस विघ्न न करें। सूर्य दुष्ट राक्षसों को मारने वाला है ॥८

यह जो तीसरी समिधा को अनुयाज के पीछे रखता है, उससे वह ब्राह्मण को प्रज्वलित करता है। प्रज्वलित होकर ब्राह्मण देवों तक हवि ले जाता है ॥९

विधि ६८— अब वह कुशां से ढकी हुई वेदि तक लौटता है। दो तृणों को लेकर टेढ़ा रख देता है। इस मन्त्रांश से—

सवितुर्बाहू स्थ। य० २.५

(तुम सविता की भुजायें हो।) प्रस्तर स्तुप या चोटी है। वह इन दोनों को भौहों के समान तिरछा रख देता है। इसीलिये भौहें टेढ़ी होती हैं। प्रस्तर क्षत्रिय है, और दूसरे बर्हि वैश्य। क्षत्रिय और वैश्य को अलग-अलग करने के लिये इनको रखता है; इनको 'विधृति' कहते हैं। विधृति का अर्थ है अलग-अलग करने वाला ॥१०

विधि ६९— अब वह प्रस्तर को यह मन्त्रांश पढ़कर बिछाता है-

ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः। य० २.५

(तू ऊन के समान नरम और देवों के योग्य आसन है।) ऊन के समान नरम कहने का तात्पर्य है कि बहुत अच्छा है। देवों के योग्य आसन कहने का तात्पर्य है कि वह देवोंको सुख पहुँचाने वाला है ॥११

विधि ७०— वह (बायें हाथ से) उसको यह पढ़कर दबाता है—

आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु। य० २.५

(वसु, रुद्र और आदित्य तुझ पर बैठें।) वसु, आदित्य और रुद्र ३ देवता हैं। वे यहीं बैठें। जब उसको बायें हाथ से दबाये होता है उस समय— ॥१२

दहिने हाथ से जुहू को पकड़ता है कि कहीं दुष्ट राक्षस न घुस आवें। ब्राह्मण राक्षसों को रोकने वाला है। इसीलिए जब वह प्रस्तर को बायें हाथ से दबाये होता है उस समय— ॥१३

विधि ७१— वह दाहिने हाथसे जुहू को यह मन्त्र पढ़कर पकड़ता है-

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सदऽआसीद, घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सदऽआसीद, घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना पियं सदऽआसीद, प्रियेण धाम्ना प्रियं सदऽआसीद। य० २.६

तू जुहू नाम वाली घृताची [घी को प्यार करनेवाली] है। यह घृताची भी है और जुहू भी। (प्रिय धामवाली इस पर सुख से बैठ।) अब उपभृत् को लेता है यह पढ़कर (तू उपभृत् घृताची है। प्रिय धाम वाली, सुख से बैठ।) वह उपभृत् भी है और घृताची भी। अब ध्रुवा को लेता है यह पढ़कर- ध्रुवा घृताची है। प्रिय धामवाली, सुखसे बैठ) वह ध्रुवा भी है घृताची भी। जो कुछ हवि शेष रहे उसको यह कह कर रख देता है (प्रिय धाम से प्रिय स्थान में बैठ) ॥१४

विधि ७२—वह ऊपर जुहू को और नीचे अन्य स्रुचों को रखता है। जुहू क्षत्रिय है अन्य स्रुच् वैश्य। इस प्रकार क्षत्रिय को वैश्य से ऊँचा करता है। इसीलिये ऊपर बैठे क्षत्रिय के नीचे ये प्रजाएँ बैठती हैं। अतः जुहू को ऊपर तथा अन्य स्रुचों को नीचे रखता है ॥१५

विधि ७३—अब वह यह मन्त्र पढ़कर हवियों का स्पर्श करता है—

ध्रुवा असदन् ऋतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥ य २.६

वे ऋत की योनि (यज्ञ) में ठीक बैठ गये। हे विष्णु, उनकी रक्षा करो यज्ञ, यज्ञपति और मुझ यज्ञ-नेता की रक्षा करो। इस तरह अपने को भी यज्ञ के बाहर नहीं बताता। यज्ञ विष्णु है, अतः उसकी रक्षा के लिये सब कार्य करता है, अतः कहा— हे विष्णु, उनकी रक्षा करो ॥१६

—❀—

अध्याय 3 ब्राह्मण 5

विधि ७४—

अध्वर्यु इध्म से अग्नि जलाता है अतः उसे इध्म कहते हैं और होता उसे जिनसे सम्यक् दीप्त करता है उन मन्त्रों का सामिधेनी नाम है ॥१

विधि ७५—सामिधेनी १५ (वास्तव में ११) ऋचाएँ हैं—

वह कहता है— जलाई जानेवाली अग्नि के लिए मन्त्र बोलो, होता बोलता है ॥२

कुछ कहते हैं कि पहले 'हे होता' कहे। किन्तु ऐसा न कहे, क्योंकि अभी वह पहले अहोता है। जब वरण किया जायगा तब होता बनेगा अतः केवल यही कहे कि समिध्यमान अग्नि के लिए मन्त्र बोलो ॥३

वह अग्नि की ऋचाएँ बोलकर उसे उसी देवता से दीप्त करता, और इसी के छन्द गायत्री के मन्त्र बोलता तथा उसी से इसे दीप्त करता है गायत्री वीर्य तथा ब्रह्म है, वीर्य से ही इसे दीप्त करता है ॥४

वह ११ ऋचाएं बोले। ११ अक्षरों की त्रिष्टुप् क्षत्रिय, तथा गायत्री ब्राह्मण है। इन दोनों के वीर्य से ही अच्छी तरह दीप्त करता है, अतः ११ ऋचाएँ बोलता है ॥५

पहली और अन्तिम ऋचा को ३-३ बार बोलता है, क्योंकि यज्ञ आरम्भ और अन्त में त्रिवृत् है, अतः पहल और अन्तिम ऋचा को ३-३ बार बोलता है ॥६

अत: सामिधेनियाँ ११ मन्त्रों की १५ हो जाती हैं । १५ का अंक वज्र है। वज्र वीर्य है । अत: वीर्य रूपी वज्र से वह यज्ञ को समन्वित करता है। यदि वह किसीसे द्वेष करता हो तो जब सामिधेनियों का उच्चारण हो रहा हो उस समय वह अपने पैर से शत्रु को कुचल सकता है। वह उसको उस वज्र से मार सकता है ।।७

अर्ध-मास या आधे महीने में १५ रातें होती हैं । वर्ष पक्ष-पक्ष करके ही समाप्त हो जाता हैं । इसलिए वह रातों की प्राप्ति करता है ।।८

१५ गायत्रियों में ३६० अक्षर हुए । एक वर्ष में ३६० दिन होते हैं । इस प्रकार वह दिनों की प्राप्ति करता है और वर्ष की भी ।। ९

यदि (किसी विशेष उद्देश्य से) इष्टि करना हो तो १७ सामिधेनियाँ पढ़नी चाहिए । जिस कामना से इष्टि देनी होती है उसके लिए चुप-चाप धीरे से इष्टि की जाती है। वर्षमें १२ मास होते हैं और ५ ऋतुयें। इस प्रकार प्रजापति में १७ हो गये । प्रजापति सम्पूर्ण है । इसलिए जिस देवता के लिए इष्टि की जाती है वह सब सम्पूर्णता के लिए । अर्थात् यज्ञ करने वाले को सम्पूर्णता प्राप्त हो जाती है । इष्टि के लिए यही उपचार है ।। १०

कुछ लोगों का कहना है कि दर्श और पौर्णमास यज्ञों में २१ सामिधे-नियाँ पढ़नी चाहिए । बारह मास हुए, पाँच ऋतुयें, तीन लोक और २१ वाँ जो नित्य तपता है अर्थात् सूर्य । वही गति है वही प्रतिष्ठा है । गति और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है । इसलिए इक्कीस सामिधेनियाँ पढ़नी चाहिए ।।११

इनको गतश्री ही पढ़े, जो चाहे कि मुझे न इससे अधिक होना है न कम । क्योंकि जिस देवता के लिए पढ़ते हैं, पढ़ने वाला उसी देवता के समान होगा या कम । जो इस रहस्य को समझता है उसी के लिए वे (२१ मन्त्र) बोलते हैं । परन्तु यह तो मीमांसा मात्र है । इक्कीस मन्त्र बोले नहीं जाते ।।१२

पहले मन्त्र को ३ बार और पिछले को ३ बार एक साँस में पढ़ना चाहिए। ३ ही लोक हैं । अतः वह ३ लोकों को फैलाता है । पुरुष में ३ प्राण होते हैं । ऐसा करने से उसका जीवन बढ़ जाता है । मृत्यु उस को बीच से काटती नहीं ।।१३

होता को चाहिए कि बिना बीच में तोड़े हुए जितनी भर उसकी शक्ति हो उससे मन्त्रों को पढ़ता रहे । बीच में साँस तोड़ देने का अर्थ यह है कि यज्ञ का अनादर किया गया । बिना साँस तोड़े लगातार पढ़ने से यह पाप नहीं लगता है ।।१४

यदि वह ऐसा करना न चाहे तो एक-एक मन्त्र को ही बिना साँस तोड़े बोले। इस प्रकार वह एक-एक करके लोकों की प्राप्ति करेगा। वह साँस इसलिए लेता है कि गायत्री प्राण है। पूरी गायत्री पढ़कर मानो वह यजमान के लिए पूरे प्राण का सम्पादन करता है। इसलिए उसको एक-एक मन्त्र बिना साँस तोड़े पढ़ना चाहिए ॥१५

उनको बराबर बिना तोड़ हुए पढ़ना चाहिए, इस प्रकार वह सम्वत्सर के दिन और रातों को लगातार कर देता है। वर्ष के दिन और रात बिना अन्तर के ही गुजरते हैं। इस प्रकार वह द्वेषी शत्रु को अवसर नहीं देता। यदि बीच में तोड़कर पढ़ेगा तो अपने शत्रु को अवकाश दे देगा। इसलिए वह बिना तोड़े हुए लगातार पढ़ता है ॥१६

—०—

अध्याय ४ ब्राह्मण १

विधि ७६— मन्त्र बोलने से पहले 'हिङ्' बोलना चाहिए। ऐसा कहते हैं कि बिना सामगान के यज्ञ नहीं होता और साम बिना हिंकार के गाया नहीं जाता। हिंकार से हिङ् का रूप होता है और प्रणव (ओङ्कार)से सामका रूप। ओ३म् कहने से पूरा यज्ञ सामरूप होजाता है ॥१

हिङ्कार क्यों कहता है? इसलिए कि प्राण हिङ्कार है। प्राण हिङ्कार इसलिए है कि नाक के नथने बन्द करने पर हिङ्कार नहीं बोल सकते। ऋचाओं को वाणी से बोलता है। वाणी और प्राण का जोड़ा है। हिङ्कार बोलकर सामिधेनियाँ पढ़ने का तात्पर्य यह है कि सामिधेनियों में सन्तान का प्रजनन करा देता है (जोड़ा मिलाकर) ॥२

हिङ्कार मन्दस्वर से बोला जाता है। यदि हिङ्कार उच्चस्वर से बोलेगा तो हिङ्कार और वाणी एक ही हो जायेगी। अतः हिङ्कार को मन्द स्वर से बोलना चाहिए ॥३

विधि ७७— आ और प्र कहकर बोलता है। इस तरह वह उधर जाने वाली गायत्री को इधर आने वाली से जोड़ देता है। उधर जाने वाली गायत्री देवों के लिए यज्ञको ले जाती है। इधर आनेवाली गायत्री मनुष्यों की रक्षा करती है इसलिए आ और प्र का प्रयोग करता है ॥४

आ और प्र कहने का एक कारण और भी हो सकता है। प्र प्राण है और आ उदान। इस तरह प्राण और उदान को धारण कराता है। इसलिये आ और प्र का प्रयोग करता है ॥५

आ और प्र कहने का एक कारण और हो सकता है। प्र से वीर्य सींचा जाता है। आ से सन्तान उत्पन्न होती है। प्र से पशु चरने के लिए जाते हैं। आ से घर को लौटते हैं। वस्तुतः संसार में हर एक वस्तु आती और जाती है। इसलिए आ और प्र का प्रयोग करता है ॥६

वह कहता है प्र वो वाजा अभिद्यवः। (आप के अन्न द्यौलोक को जावें।) यह हुआ प्र का जाना। अब कहता है– 'अग्न आ याहि वीतये' (हे अग्नि वृद्धि के लिये आ।) इससे आ का आना हुआ ॥७

कुछ का कहना है कि इन दोनों से प्र अर्थात् जाने का अर्थ ही निकलता है। परन्तु यह तो साधारण बुद्धि में आतानहीं। वस्तुतः'प्र वो वाजा अभिद्यवः' से जानाही अभीष्ट है और अग्न आयाहि वीतये से आना ॥८

वह (पहली सामिधेनी को) पढ़ता है — प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या। देवान् जिगाति सुम्नयुः ॥ ऋ० ३-२७-१

इससे जाना अभिप्रेत है। वाज कहते हैं अन्न को। इसके पाठ से अन्न की प्राप्ति होती है। अभिद्यवः से अर्धमास का अर्थ निकलता है। क्योंकि अर्द्धमास द्यौलोक को जाते हैं। अब कहता है, 'हे हवि वालो'। हविवाले पशु होते हैं। इस तरह पशुओं की प्राप्ति कराता है ॥६

अब वह कहता है 'घृताची'। विदेघ का राजा माथव अपने मुख में वैश्वानर अग्नि रखता था। उसका राहूगण गोतम पुरोहित था। पुरोहित ने पुकारा तो वह न बोला कि कहीं मेरे मुख से अग्नि निकल न पड़े ॥१०

तब उस पुरोहित ने उसका इस मन्त्र से आह्वान किया—

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥
[ऋग्वेद ५.२६.३]

हे बुद्धिमान्,बड़े प्रकाश वाले और हवन में प्रिय अग्नि! हम तुझको यज्ञ में बुलाते हैं, ॥११

राजा ने कुछ उत्तर नहीं दिया, तब उसने आगे पढ़ा—

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते। तव ज्योतींष्यर्चयः ॥
[ऋग्वेद ८.४४.१७]

हे अग्नि अपनी चमकीली, प्रकाशयुक्त ज्योतियों को ऊपर को फेंक ॥१२

वह तब भी न बोला। तब पुरोहित ने आगे पढ़ा—

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह ॥

यह मन्त्र पूरा पढ़ने भी न पाया 'घृत' शब्द तक ही आया था कि अग्नि वैश्वानर जल उठा। वह अपने मुख में न रख सका। अग्नि उसके मुँह से निकल कर पृथ्वी पर आ पड़ा ॥१३

विदेघ माथव उस समय सरस्वती के किनारे पर था। उस समय अग्नि जलते-जलते पूर्व की ओर बढ़ा। गोतम राहूगण और विदेघ माथव उस जलते हुए अग्नि के पीछे-पीछे चले। अग्नि ने इन सब नदियों को सुखा दिया। एक नदी सदानीरा उत्तरी पहाड़ से निकलती है। उसे वह न सुखा सका। ब्राह्मण लोग पहले इस नदीको पार नहीं करते थे यह सोचकर कि अग्नि वैश्वानर ने इसको नहीं जलाया ॥ १४

परन्तु आजकल बहुत से ब्राह्मण इस नदी के पूर्वकी ओर रहते हैं। उस समय सदानीरा के पूर्व की भूमि ऊसर पड़ी थी। उसमें दल-दल बहुत था। क्योंकि अग्नि वैश्वानर ने उसका आस्वादन नहीं किया था ॥ १५

अब तो यह बहुत उपजाऊ है क्योंकि ब्राह्मणों ने यज्ञ करके उसको अग्नि से चखा दिया है। गर्मी के अगले दिनों में भी (वह नदी) खूब बहती है। अग्नि वैश्वानर ने इसे दग्ध नहीं किया था। अतः यहाँ ठण्डक बहुत होती है ॥१६

बिदेघ माथव ने अग्नि से पूछा, मैं कहाँ रहूं ? इस नदी के पूर्व की ओर तेरा घर हो, ऐसा अग्नि ने उत्तर दिया। अब तक यह नदी कौसल और विदेह देशों के बीच की सीमा है। क्योंकि यह माथव की सन्तान हैं ॥ १७

अब गोतम राहूगण ने राजा से पूछा, मैंने तुमको बुलाया। तुम क्यों नहीं बोले ? उसने कहा, मेरे मुंह में अग्नि वैश्वानर था। कहीं वह गिर न पड़े इसलिए मैं नहीं बोला ॥ १८

गोतम ने पूछा, फिर क्या हुआ ? राजा ने उत्तर दिया, जब तुमने मन्त्र पढ़े और घी का नाम ही लिया कि अग्नि वैश्वानर जल उठा और मैं उसको मुख में न रख सका। वह पृथ्वी पर निकल पड़ा ॥१९

इसलिये सामिधेनियों में जो घृत शब्द हैं वह अग्नि जलाने के लिए बड़ा उपयुक्त है। इन्हीं सामिधेनियों को पढ़कर वह अग्नि को जलाता है और यजमान को शक्ति देता है ॥ २०

अब (शब्द) है 'घृताच्या' अर्थात् घी से भरे (चमचे) से। 'देवान् जिगाति सुम्नयुः'। शान्ति का इच्छुक वह देवों के पास आता है। यजमान सुम्नयुः (शान्ति का इच्छुक)है। वह देवों के पास आना चाहता है। इसीलिए कहा 'देवान् जिगाति सुम्नयुः'। यह आग्नेयी ऋचा अनिरुक्त (अनियत) होती है। अतः अनिरुक्त ऋचा पढ़कर

'सव' का सम्पादन करता है । २१

दूसरी सामिधेनी– अब कहता है—२.[४] अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥[ऋ० ६.१६.१० साम १]

[अग्नि, यज्ञ की वृद्धि के लिए आ । वृद्धि या फैलाव के लिए ।]

पहले लोक मिले हुए थे । हम आकाश को इस प्रकार (हाथ बढ़ाकर) छू सकते थे ॥२२

देवों ने चाहा, यह लोक दूर-दूर कैसे हों ? कैसे हमको अधिक अवकाश मिले । यह कहकर उन्होंने यह तीन अक्षरों का 'वीतये' शब्द उच्चारण किया । यह कहते ही लोक दूर-दूर हो गये । देवों को दूर-दूर जगह मिल गई । जो इस रहस्य को समझ कर 'वीतये' कहता है उसके लिए भी दूर-दूर अवकाश मिल जाता है ॥ २३

जब वह कहता है 'गृणानो हव्य दातये' (हव्य देने वाले के लिए) हव्य देने वाला यजमान है । यजमान के लिये ही यह कहा गया है । 'निहोता सत्सि बर्हिषि' । (होता आसन पर बैठता है) । होता अग्नि है । बर्हि से आच्छादित वेदि आसन है । यह जगत् बर्हि है । अग्नि को इस जगत् में स्थापित करता है । जगत् के कल्याण के लिए अग्नि यहाँ स्थापित की जाती है । जो इस रहस्य को समझता है और जिसके लिए यह सामिधेनी पढ़ी जाती है उसकी इस लोक में विजय होती है ॥ २४

तीसरी सामिधेनी— ३. [५] तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ [ऋ० ६.१३.११]

हे अंङ्गिरस, तेरे लिये समिधाओं से और घी से हम बढ़ाते हैं । अंगिरस अग्नि है, घृत अग्नि जलाने के लिए बहुत उपयुक्त शब्द है उसी अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, और यज्ञ को शक्ति देते हैं ॥२५

(तू सब से छोटा, बहुत चमकदार है ।) समिधा बहुत चमकती है । वह ही सबसे कम आयु का अग्नि है । इसलिए 'यविष्ठ्य' कहा । यह ऋचा उस लोक अर्थात् अन्तरिक्ष के लिए कही गई । अतः आग्नेयी होते हुए अनिरुक्त है । जो इस रहस्य को समझता है और जिसके लिए सामिधेनी पढ़ी जाती है उसको इस लोक में विजय प्राप्त होती है ॥२६

चौथी सामिधेनी— ४. [६] स नः पृथु श्रवाय्यम् अच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ [ऋ० ६.१६.१२ साम ६६२]

(वह तू हमारे लिए चौड़ा और प्रकाश युक्त अवकाश प्राप्त कर, मैं उस लोक को जाऊं ।) जिस में देवता रहते हैं ॥२७

वह बड़ा लोक है जिसमें देव रहते हैं। वह शक्तिशाली लोक है जिसमें देव निवास करते हैं। इसी लोक के अभिप्राय से यह कहा गया। जो इस रहस्य को समझता है और जिसके लिए सामिधेनी पढ़ी जाती है उसको इस लोक में विजय प्राप्त होती है ॥२८

पाँचवीं सामिधेनी—

५. [७] ईडेन्यो नमस्यस् तिरस्तमांसि दर्शतः।
समग्निरिध्यते वृषा॥ [ऋ० ३.२७.१३]

'स्तुति और नमस्कार के योग्य'। यह स्तुत्य भी है और नमस्य भी। 'अन्धकार में होकर चमकता है'। अग्नि जब जलता है तो अन्धकार में होकर चमकता है।

'बलवान् अग्नि प्रज्वलित होता हैं'। बलवान् अग्नि है यह प्रज्व-लित भी होता है।

छठी सामिधेनी—

६. [८] वृषो अग्निः समिध्यते अश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईडते॥ [ऋ० ३.२७.१४]

वह अग्नि अश्व के समान होकर देवों को हवि ले जाता है। यहाँ 'न' का अर्थ है ओ३म् (समान)। इसका अर्थ है कि वस्तुतः वह अश्व बनकर हवि को ले जाता है ॥३०

'उसको हवि-वालो पूजो'। मनुष्य हवि वाले हैं। वह अग्नि को पूजते हैं ॥३१

सातवीं सामिधेनी—

७. [९] वृषणं त्वा व ं वृषन् वृषणः समिधीमहि।
अग्ने दीद्यतम् बृहत्॥ [ऋ० ३-२७-१५]

(७–९ मन्त्र साम १५३८–१५४०, अथ० २०-१०२-१–३ में हैं)

हम शक्तिशाली तुझ शक्तिशाली को प्रज्वलित करते हैं। हे अग्ने, तू बहुत चमकने वाला है, क्योंकि जब वह प्रज्वलित किया जाता है, तब वह वस्तुतः बहुत चमकता है ॥३२

इस तृच् (तीन ऋचाओं के समूह) को पढ़ता है जिसमें 'वृषण्' (बलवान्) शब्द आया है। यह सब सामिधेनियाँ अग्नि देवता की होती हैं। परन्तु यज्ञ का देवता 'इन्द्र' है। और यह 'वृषण्' (बलवान्) है। अतः वृषण् शब्द आने से यह तृच् इन्द्र देवता की हो जाती है। इसलिये 'वृषण्' वाली तीन ऋचाओं को पढ़ता है ॥३३

आठवीं सामिधेनी—

८. [१०] अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतम् ॥ [ऋ० १-१२-१
(साम ३, ७९० अथर्व २०-१०१-१)

'हम अग्नि दूतका वरण करते हैं'। प्रजापति की सन्तान देव तथा असुर प्रभुत्व के लिए लड़ पड़े। गायत्री बीच में पड़गई। जो गायत्री थी वही यह पृथ्वी है। यही पृथ्वी उन देवों के बीच में थी। वे जानते थे कि जिधर को यह रहेगी; वही पक्ष जीत जायगा, और दूसरा पक्ष पराजित होगा। अतः उन दोनों दलों ने चुपके-चुपके उसको अपनी ओर मिल जाने के लिये निमन्त्रण दिया। देवों का दूत बनी अग्नि, और असुर राक्षसों का एक राक्षस, जिसका नाम था 'सहरक्ष'। वह गायत्री (या पृथ्वी) अग्नि के साथ चली गई। इसलिये कहते हैं 'हम अग्नि दूत वरण करते हैं' अग्नि ही दूत था। इसलिए कहा, अग्नि होता को जो सब कुछ जानने वाला है ॥३४

कुछ लोग मन्त्र में थोड़ा परिवर्तन करके ऐसा कहते हैं 'होता यो विश्ववेदसः'। अर्थात् होता जो सब कुछ जानने वाला है। इसका कारण यह है कि वह होतारं के दो टुकड़े कर देते हैं होता—अरम् अरम् का अर्थ अलम् (बस इतना ही) भी होता है। किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए। वेदमन्त्र में परिवर्तन कर देने से भाषा मानुषी हो जाती है। यज्ञ में मानुषी भाषा को अशुभ समझा जाता है अतः जैसा वेदमन्त्र में आया है वैसा ही बोलना चाहिए। अर्थात् होतारं विश्ववेदसम्।

अब आगे कहता है— 'इस यज्ञ को अच्छी प्रकार करने वाला' क्योंकि अग्नि यज्ञ का सुकृतुः है।

गायत्री ने देवों का साथ दिया था। वह जीत गये। असुर हार गये। जो इस रहस्य को समझता है और जिसके लिए यह ऋचा पढ़ी जाती है वह जीत जाता है और उसका शत्रु पराजित हो जाता है ॥३५

इसीलिए वह ८ वीं सामिधेनी को पढ़ता है। यह विशेष रीति से गायत्री है क्योंकि गायत्री में ८ अक्षर होते हैं। इसलिए वह ८ वीं सामिधेनी का पाठ करता है ॥३६

कुछ लोग आठवीं सामिधेनी से पहले दो 'धाय्य' पढ़ देते हैं। वे कहते हैं कि धाय्य अन्न हैं। हम अन्न को मुख में रख देते हैं परन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से ८वीं सामिधेनी का स्थान हट जाता है और ८वीं एवं नवमी सामिधेनी दसवीं एवं ग्यारहवीं हो जाती है। यह ८वीं सामिधेनी का ही उचित स्थान है। इसलिये दो धाय्यों को नवमी सामिधेनी के पीछे रखना चाहिए। ॥३७

नवमी सामिधेनी — ९ [११]

समिध्यमानो अध्वरे अग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस् तमीमहे ॥
(ऋ० ३.२७.४) । [बीच में पढ़ी जानेवाली२ धाय्या ऋचाएँ हैं]
अध्वर यज्ञ को कहते हैं। उसमें जो प्रज्वलित होता है वह अग्नि है। यह पवित्र भी है और स्तुत्य भी। 'चमकदार केशवाले तुझको हम बुलाते हैं'। इसके केश (ज्वालाएँ) चमकती हैं।

दशवीं सामिधेनी— १० [१२]

समिद्धो अग्न आहुतः देवान् यक्षि स्वध्वरः ।
त्वं हि हव्यवाडसि ॥ (ऋ ५.२८.५)

ऐसा कहने से पूर्व सब समिधाओंको अग्नि पर रख दे, सिवाय एक के। क्योंकि यहाँ होता अग्नि-प्रज्वालन का कार्य समाप्त करता है। अब जो एक समिधा बच रही, इसका नियम यह है कि जो यज्ञसे बच रहे वह शत्रु का होता है। इसलिए इस सामिधेनी से पहले-पहले एक बचाकर अन्य सब समिधायें रख देनी चाहिए ॥३८॥

अब वह कहता है'हे अच्छे अध्वर्यु, देवोंकी पूजा कर'। 'अध्वर'का अर्थ है यज्ञ। तात्पर्य यह है कि 'अच्छे अध्वर, देवोंकी पूजा कर'। तू हव्यका ले जानेवाला है। अब अन्तिम सामिधेनी पढ़ता है 'यज्ञ में अग्नि की पूजा करो। हव्य लेजाने वाले का वरण करो। अग्नि वस्तुतः हव्यवाट् है।' इसीलिए कहा—अग्नि तू हव्यवाट् है।

ग्यारहवीं सामिधेनी— ११[१३]

आ जुहोता दुवस्यत अग्निम् प्रयत्यध्वरे ॥
वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ऋ ५.२८.६

आहुति दो। अग्निकी पूजा करो, जब यज्ञ हो रहा हो हव्य को लेजाने वालेका वरण करो। इसका अर्थ यह है कि आहुति दो, पूजा करो अर्थात् जिस कामना के लिए यज्ञ रचा है उसकी पूर्ति करो। अग्नि हव्य का ले जाने वाला है ॥३९॥

'अध्वर' शब्द वाले तृच (तीन ऋचाओं के समूह) को पढ़ता है। जब देव यज्ञ कर रहे थे तो उनके शत्रु असुरों ने उस यज्ञ का विध्वंस करना चाहा। परन्तु विध्वंस की इच्छा करते हुए भी विध्वंस न कर सके। वे हार गए। इसीलिए यज्ञका नाम अध्वर हुआ। जो इस रहस्यको समझता है और अध्वर शब्द वाले तृच् को पढ़ता है उसके शत्रु उसका विध्वंस चाहते हुए भी उसका विध्वंस नहीं कर सकते, वे परास्त हो जाते हैं। वह सौम्य-अध्वर को करके विजय प्राप्त कर लेता है, जीत जाता है ॥४०॥

——❀——

अध्याय ४ ब्राह्मण २

देवों ने अग्नि को मुख्य पद पर नियुक्त किया कि होता बनकर तू हमारी इस हवि को ले जा, तथा बड़ाई करने लगे कि तू सचमुच ही वीर्यवान् है; इस कार्य के लिए पर्याप्त है—इसप्रकार उसे बल देने लगे जैसे आजकल जिसको जनोंमें मुख्य बनाया जाता है तो बड़ाई कीजाती है कि आप शक्तिशाली तथा इसके योग्य हैं, इस तरह उसको बल से सम्पन्न करते हैं; अतः जब वह कुछ कहता है तो वह उसकी स्तुति ही करता है और उस में शक्ति को ही धारण कराता है ॥१

स्तुति—अग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारत !

हे अग्नि ! तू महान् है। क्योंकि वह (बड़ा) है अतः ब्राह्मण कहा; क्योंकि वह देवों के लिए हव्य को रखता है और इन प्रजाओं को प्राण बनकर पोषण करता है इसलिए भारत कहा ॥२

अब वह अग्नि को आर्ष होता चुनाता है, इसको ऋषियों और देवों के लिए निवेदन करता है—यह महावीर्य है जो यज्ञ कराता है। इसीलिए इसको आर्ष होता के रूप में वरण करता है ॥३

पुराने से लेकर नये ऋषि तक का वरण करता है, क्योंकि पुराने से ही नई पीढ़ी पैदा होती है, अतः बड़े को नियुक्त करता है, क्योंकि पिता ही पूर्व, फिर पुत्र, फिर पौत्र, अतः पूर्व से पर को वरता है ॥४

व आर्ष होता बनाकर कहता है—देवेद्धो मन्विद्धः देवों ने इसे पहले दीप्त किया अतः कहा देवेद्ध., और मनु ने इसे पहले दीप्त किया अतः कहा मन्विद्धः ॥ ५

ऋषिष्टुतः—ऋषियों ने पहले स्तुति की अतः ऋषिष्टुतः कहा ॥६

विप्रानुमदितः—ये विप्र ऋषि ही थे जिन्होंने इसको प्रसन्न किया अतः कहा विप्रानुमदितः ॥७

कविशस्तः—ये कवि ऋषि ही थे जिन्होंने इसकी प्रशंसा की, अतः कहा कविशस्तः ॥८

ब्रह्मसंशितः—यह वेद में वर्णित है, घृताहवनः—घीसे आहुत है ॥९

प्राणीर्यज्ञानाम्—इसीसे पाक व अन्य यज्ञोंको प्राणित करते हैं ॥१०

रथीरध्वराणाम—यह रथ बनकर देवोंके लिए यज्ञ ले जाता है ॥११

अतूर्तो होता तूर्णिर्हव्यवाट्—इसे राक्षस नहीं रोक सकते, यह सब पापियों को हराता है, और हव्य को ले जाने वाला है ॥१२

आस्यात्र जुहूर्देवानाम्— देवों के खाने की थाली या मुख-पात्र यह अग्नि जो है वह देवों का पात्र है। इसलिए अग्नि में सब देवों के लिए हवि देते हैं, क्योंकि यह देवपात्र है। निश्चय करके जो यह बात जानता है वह उसका पात्र ले लेता है जिसका पात्र वह चाहता है ॥१३

चमसो देवपान:— देवों के पीने का चमचा। इसी चमचे अर्थात् अग्नि से देव भोजन करते हैं इसलिये इसको कहा— देवपान ॥१४

अराँऽइवाग्ने नेमिर्देवांस्त्वं परिभूरसि — हे अग्नि, जिस प्रकार पहिये की परिधि अरों के चारों ओर लगी रहती है उसी प्रकार तू देवों के चारों ओर है ॥१५

आवह देवान् यज्ञमानाय — देवों को यजमान के लिए बुला— यह इसलिए कहा कि अग्नि देवों को यज्ञ के लिए बुलाते।

अग्निमग्नऽआवह—हे अग्नि, अग्नि को बुला। यह इसलिये कहा कि अग्नि के लिए जो 'आयाज्य भाग' था उस तक अग्नि को लाया जाय।

सोममावह— सोम को ला, जिससे यह सोम के आयाज्य भाग को सोम तक लावे। अग्निमावह— अग्नि को ला। यह इसलिए कहा कि अग्नि के लिए जो दोनों समय (दर्श तथा पूर्णमास यज्ञों में) आवश्यक पुरोडाश है उस तक अग्नि को लावे ॥१६

इसी प्रकार और देवों के लिए भी। देवाँऽआज्यपाँऽआवह— 'आज्य के पीने वाले देवों को ला, यह इसलिए कहा कि प्रयाज और अनुयाज को ला सके। (पहली आहुति को प्रयाज तथा पिछली को अनुयाज कहते हैं)। क्योंकि प्रयाज तथा अनुयाज ही आज्य के पान करने वाले देव हैं।

अग्निं होत्रायावह—'अग्निको होत्र के लिए ला'। यह इसलिए कहा कि अग्नि को होत्र के लिए लावे। स्वं महिमानमावह— 'अपनी महिमा को ला'। यह इसलिए कहा कि अपनी महिमा को ला सके। वाणी ही इसकी अपनी महिमा है। इसके कहने का तात्पर्य हुआ 'अपनी वाणी को ला'। आ च वह जातवेदः सुयजा च यज— 'हे जातवेद अग्नि, (देवों को) ला और अच्छे प्रकार यज्ञ कर'। जिस-जिस देवता को लाने के लिए कहता है उस-उसको लाने के लिए आदेश करता है। 'सुयजा' कहने का तात्पर्य है यथाविधि यज्ञ करना ॥१७

अनुवाक्या खड़े-खड़े पढ़ता है क्योंकि वह(द्यौलोक)है जिसके लिए पढ़ता है। इसलिए खड़े-खड़े पढ़ता है अर्थात् दूर की चीज को खड़े होकर बुलाते हैं। द्यौ दूर है। उसके बुलाने के लिए खड़ा हो जाना चाहिए ॥१८

याज्य आहुति को बैठकर अर्पित करता है। यह(पृथ्वी) ही याज्य है। इसलिए याज्य को खड़े-खड़े न पढ़े। क्योंकि याज्य ही यह है इसलिए बैठकर ही याज्य को पढ़ता है ॥१९

अध्याय ४ ब्राह्मण ३

जो अग्नि सामिधेनियों से प्रदीप्त हुई वह अन्य से अधिक तपती है; उसे न कोई आक्रान्त कर सकता, न बुझा सकता है ।।१

जैसे वह वैसेही यह ब्राह्मण तपता, अनवधृश्य-अनवमृश्य होताहै ।।२

वह कहता है १– प्र व; प्राण प्र वाला है उसी को इससे दीप्त करताहै । २— अग्न आयाहि वीतये । अपान ऐसा है, उसे इससे दीप्त करता हैं । ३— बृहच्छोचा यविष्ठ्य । उदान ही बृहच्छोचा है । उसी को इस से प्रज्वलित करता है ।।३

४—स न: पृथु श्रवाय्यम् । कान ही पृथु श्रवाय्य है । कानसे ही दूर-निकट का सुनते हैं । कान को ही इससे प्रदीप्त करता है ।।४

५— ईडेन्यो नमस्य: । वाणी ईडेन्य है, वही इस सबको बताती है, वाणीसे ही इस सबकी स्तुति होती है, उसी को इससे दीप्त करता है ।।५

६— अश्वो न देववाहन: । मन ही देववाहन है क्योंकि यही मनस्वी को बड़ा विद्वान् बनाता है, अत: मन को ही इससे दीप्त करता हैं ।।६

७— अग्ने दीद्यतं बृहत् । आँख चमकती है, उसी को इससे चमकाता है ।।७

८— अग्नि दूतं वृणीमहे । जो ही यह मध्यम प्राण है उसीको इससे प्रदीप्त करता है । क्योंकि वह सामिधेनी प्राणों के अन्दर स्थित है अत: ऊपर के और नीचे के प्राण अन्दर स्थित होते हैं । जो इसको जानता है वे इसको मध्यम प्राण मानते हैं ।।८

९— शोचिष्केशस्तमीमहे । शिश्न ही शोचिष्केश हैं । क्योंकि यही शिश्नवाले को जलाता है, उसीको इससे प्रज्वलित करता है ।।९

१०— समिद्धो अग्न आहुत: । जो यह नीचे का प्राण है उसीको इस से प्रदीप्त करता है । ११— आ जुहोता दुवस्यत । इससे नखों से लेकर रोमों तक सब शरीर को प्रदीप्त करता है ।।१०

यदि कोई पहली सामिधेनी पर इससे बुरा कहे तो उससे कहे कि तू अपने प्राण अग्निमें डाल रहा है, इससे दु:ख होगा, ऐसा ही हो ।।११

यदि दूसरी पर बोले तो कहे कि तूने अपने अपानको अग्निमें डाल दिया । इससे तुझे पीड़ा होगी । ऐसा ही हो ।।१२

यदि तीसरी पर कोई बुरा बोले तो उससे कहे कि तू अपने उदान को अग्नि में डालता है, इससे पीड़ा होगी । ऐसा ही हो ।।१३

यदि चौथी के समय कोई कुछ बोले तो कहे कि तूने कान अग्नि में डाल दिया; तुझे कान में पीड़ा होगी । ऐसा ही हो ।।१४

यदि पाँचवीं सामिधेनी के पढ़ते समय कोई बुरा कहे तो उससे कहना चाहिए कि तूने अपनी वाणी को आग में डाल दिया। तुझे अपनी वाणी से पीड़ा होगी, तू गूंगा हो जायगा और ऐसा ही होगा ॥१५

यदि छठी सामिधेनी के समय कोई बुरा कहे तो उसके प्रति कहना चाहिए कि तूने अपने मन को अग्नि में डाल दिया। यह मन तुझे पीड़ा देगा। तू इस प्रकार घूमे फिरेगा मानो किसी ने तेरा मन चुरा लिया है या तेरा मन विक्षिप्त हो गया है। और ऐसा ही हो ॥१६

यदि सातवीं सामिधेनी के समय कोई बुरा कहे तो इससे कहना चाहिए कि तूने अपनी आँख आग में डाल दी। तुझे इस आँख से पीड़ा होगी, तू अन्धा हो जायगा। तथा ऐसा ही हो ॥१७

यदि आठवीं सामिधेनी पढ़ते समय कोई बुरा कहे तो उससे कहना चाहिए कि तूने अपने मध्य प्राण को आग में डाल दिया। तुझे इस समय प्राण से पीड़ा होगी। तू इससे मर जायगा और ऐसा ही हो ॥१८

यदि नवीं सामिधेनी को पढ़ते समय बुरा कहे तो उससे कहना चाहिए कि तूने अपने शिश्न को आग में डाल दिया। तुझे इससे पीड़ा होगी, तू नपुंसक हो जायगा। तथा ऐसा ही हो ॥१९

यदि दसवीं सामिधेनी को पढ़ते समय बुरा कहे तो उससे कहना चाहिए कि तूने अपने निचले प्राणको अग्निमें डालदिया। इस अपने निचले प्राण से तुझे पीड़ा होगी। तू कब्ज से मर जायगा तथा ऐसा ही हो ॥२०

यदि ग्यारहवीं सामिधेनी को पढ़ते समय बुरा कहे तो उसको कहना चाहिए कि तूने अपना शरीर आग में डाल दिया। तुझे इस अपने शरीर से पीड़ा होगी। इससे तू शीघ्र ही उस लोक को चला जायगा। तथा ऐसा ही हो ॥२१

जिस-जिस प्रकार सामिधेनियों से जलाई हुई अग्नि के पास जाकर जो कोई पीड़ा उठाता है उस-उस प्रकार की पीड़ा उस पुरुष को होती है जो सामिधेनियों को समझ कर पढ़नेवाले ब्राह्मण को बुरा कहता है ॥२२

—०—

अध्याय ४ ब्राह्मण ४

इस अग्नि को वे प्रदीप्त करते हैं कि उसमें देवोंके लिए आहुति दें, पहले वह २ आहुति मन–वाणी के लिए देता है। वे दोनों मिलकर देवों के लिए यज्ञ को ले जाते हैं ॥१

जो चुपचाप धीमे किया जाता है उस यज्ञ को मन देवों के लिए ले जाता है तथा जो वाणी से स्पष्ट कहा जाता है उसे वाणी देवों तक ले जाती है। ये २ कार्य किये जाते हैं। वह इन्हें तृप्त करता है कि वे तृप्त–प्रसन्न होकर यज्ञ को देवों तक ले जायँ ॥२

विधि ७८— जो मन के लिए आघार आहुति देता है वह स्रुवा से, क्योंकि मन तथा स्रुवा वृषा (सुख–घी की वर्षा करने वाले) हैं ॥३

जो वाणी के लिए आघाराहुति देता है वह स्रुक् से देता है, क्योंकि वे वाक् तथा स्रुक् दोनों योषा (स्त्री) हैं ॥४

मन के लिए आहुति मौन देता, स्वाहा भी नहीं बोलता, क्योंकि मन तथा मौन अनिरुक्त (अस्पष्ट) हैं ॥५

वाणी को आहुति मन्त्र पढ़कर देता है क्योंकि दोनों निरुक्त हैं ॥६

मन को आहुति बैठ कर, वाणी को खड़े होकर देता है, मन तथा वाणी जुड़कर देवों के लिए यज्ञ को ले जाते हैं। बैलों की जोड़ी में यदि एक छोटा हो तो उसके कन्धे पर उपवह (गद्दी) रख देते हैं। वाणी मन से नीची है। मन अपरिमित, वाणी परिमित है, अतः उसी के लिए यह उपवह करता है जिससे वे जुड़ कर देवों तक यज्ञ लेजायँ अतः खड़े होकर वाक् को आघारता है ॥७

देव यज्ञ का विस्तार करते हुए असुर-राक्षसों से डरे, वे इस वेदि के दक्षिण की ओर खड़े हो गये। क्योंकि बल खड़ा–सा होता है, अतः दक्षिण की ओर खड़े होकर आहुति देता है। दोनों ओर आहुति देकर वह मन–वाणी को समान कर देता है। इन दोनों आघारों में एक यज्ञ का सिर और दूसरा यज्ञ का मूल है ॥८

मूल की आहुति स्रुवा से, सिर की आहुति स्रुक् से देता है ॥९

मूल की आहुति मौन देता है, क्योंकि जड़ मौन–सी होती है ॥१०

जो आहुति यज्ञ का सिर है उसे मन्त्र पढ़कर देता है क्योंकि वाणी ही मन्त्र है और शिर से ही यह बोलती है ॥ ११

यज्ञ के मूल की आहुति बैठकर देता है क्योंकि वह (जड़) बैठी सी होती है, यज्ञ के शिर की आहुति खड़े होकर देता है क्योंकि यह शिर खड़ा–सा होता है ॥१२

विधि ७९— स्रुवा से पहली आहुति देकर कहता है— अग्निमग्नीत् समृड्ढि हे अग्नीन्, आगको समृद्ध कर। पूर्व आघार धुरेपर जुआ रखने के समान है, उसे रखकर ही बैल बाँधते हैं ॥१३

आग से राख झाड़ता है, मानो इसे बाँधता है कि बँधकर वह यज्ञक लेजाय, अतः ३ बार कुरेदकर राख झाड़तेहैं, क्योंकि यज्ञ त्रिवृत् है ॥१४

विधि ८०— कुरेदने में वह यह मन्त्र पढ़ता है—

अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं सम्मार्ज्मि। (य २.७)

हे वाज (अन्न) जीतनेवाली अग्नि, वाज तक जानेवाली, वाजजित् अर्थात् यज्ञ-वाहक यज्ञ-योग्य तुझे मैं कुरेदता हूं। मौन रहकर ३ बार कुरेदता है। जैसे बैल जोड़कर हाँकते है— चल रे चल, वैसे ही इसे भी हाँकते हैं— चल, देवों के लिए यज्ञको ले चल। अतः मौन होकर ३ बार कुरेदता है। जो यह अन्तर से कर्म किया जाता है इससे मन तथा वाणी समान होकर भी अलग होजाते हैं ॥१५॥ ब्रा० ६(४.४), प्र० ३, क. १२०

शतपथ अ, ४ ब्राह्मण ५

विधि ८१— वह (अध्वर्यु) स्रुच् से दूसरी आघार आहुति करते समय प्रथम दोनों स्रुकों को अंजलि करता है तथा निम्न मन्त्र पढ़ता है—

नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥ य० २.७

इससे देव-पितरों के लिए ऋत्विक् कर्म करता हुआ प्रसन्न कर कथन करता है कि दोनों स्रुक् मेरे लिए अच्छे नियममें रखने वाले हों, भरे रहें, मैं इन्हें भर सकूँ— कहकर उन्हें लेता और निम्न मन्त्र पढ़ता है—

अस्कन्नमद्य देवेभ्यः आज्यं सम्भ्रियासम्। य० २.८

(मैं आज देवों के लिए न फैलनेवाला घी अर्पण करूँ (यज्ञ करूँ) ॥१

अंघ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषम् वसुमतीमग्ने ते छायामुप स्थेषम्।

हे विष्णु, मैं पैर से तेरे साथ अत्याचार न करूं, यज्ञ निश्चय विष्णु है, इस से अर्थ निकला कि मैं यज्ञ के प्रति कोई अनाचार न करूं। हे अग्नि, मैं तेरी वसुमती (साध्वी-अच्छी) छाया में आ जाऊं ॥२

विष्णोः स्थानमसि। (यजु० २.८) [तू विष्णु का स्थान है।]

यज्ञ ही विष्णु है, वह उसके पास होता है, अतः विष्णुस्थान कहा।

इत इन्द्रो वीर्यमकृणोद् ऊर्ध्वो अध्वर आस्थात् ॥ [य २.८]

यहाँ इन्द्र ने वीरता की (दक्षिण से दुष्ट राक्षस हटा दिये), यज्ञ ऊंचा उठा ॥ ३

अब कहता है—'अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यम्' (यजु० २ . ९) ।

'हे अग्नि, होता का और दूत का काम जानो'। (वेः का अर्थ है-समझो)। अग्नि देवों का होता भी है और दूत भी। इसके कहने का तात्पर्य है कि 'हे अग्नि, तुम होता और दूत दोनों क काम समझ लो'।

'अवतां त्वां द्यावापृथिवी'। 'अव त्वं द्यावापृथिवी' (यजु०२।६)

'द्यौ और पृथिवी लोक तेरी रक्षा करें। तू द्यौ लोक और पृथिवी लोक की रक्षा कर'। यह स्पष्ट है

'स्विष्टकृद् देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भून् स्वाहा (यजु० २।९)।

'हे इन्द्र, घी हवि से देवों के लिए स्विष्टकृत् हो । स्वाहा'।

इन्द्र यज्ञ देवता है, अतः कहा—'इन्द्र आज्येन' इत्यादि यह आहुति वाणी के लिए देता है। इन्द्र नाम है वाणी का—यह कुछ लोगों की सम्मति है। इसीलिए कहा इन्द्र आज्येन' इति ॥४

अब लौट कर दोनों स्रुचों को बिना छुआये हुये ध्रुवा (के घी) से जुहू (का घी) मिलाता है। दूसरी आघार-आहुति यज्ञ का शिर है और ध्रुवा शरीर है इस कृत्य से यह तात्पर्य हुआ कि शरीर के ऊपर शिर रख देता है। दूसरी आघार-आहुति यज्ञ का शिर है शिर कहते हैं 'श्री' को। श्री ही शिर होती है इसीलिये जो कोई अर्द्ध (परिवार) का श्रेष्ठ होता है उसको कहते हैं कि यह अर्द्ध (परिवार) का शिर है ॥५

यजमान ध्रुवा के पीछे खड़ा होता है और जो उसके लिए शत्रुता करे वह उपभृत् के पीछे। इसीलिये अगर जुहू के घी को उपभृत् के घी से मिला देता तो उसको श्री देता जो यजमान का शत्रु है, परन्तु उसे यजमान को श्री देनी है। इसीलिये वह ध्रुवा के घी से मिलाता है ॥६

वह मिलाते समय यह मंत्रांश (यजु० २.६) पढ़ता है—'सं ज्योतिषा ज्योतिः' 'ज्योति से ज्योति (मिल गई)'। एक में जो आज्य है वह ज्योति है। दूसरी में जो आज्य है वह भी ज्योति है। इस प्रकार दोनों ज्योतियाँ मिल गयीं इसलिये इस प्रकार मिलाता है ॥७

एक बार मन और वाणी में झगड़ा हुआ बड़ाई के लिए। मन और वाणी दोनों कहने लगे कि 'मैं भद्र हूँ'। 'मैं भद्र हूँ' ॥८ ।

अब मन ने कहा, 'मैं तुमसे अच्छा हूँ'। मेरे बिना विचारे तू कुछ नहीं कहती'। तू मेरे किये का अनुकरण करती है। तू मेरा अनुसरण करती है। इसलिए मैं तुझसे बड़ा हूँ ॥९

अब वाणी बोली, मैं तुझसे अवश्य बड़ी हूँ क्योंकि जो तू जानता है उसे मैं प्रकाशित करती हूँ। उसे मैं फैलाती हूँ ॥१०

वे प्रजापति के पास निश्चय के लिए गये उस प्रजापतिने मन के पक्ष में

निश्चय किया कि मन ही तुझ से श्रेष्ठ है क्योंकि तू मन का ही अनुकरण करती और उसीके मार्गपर चलती है। निश्चय वह छोटा है जो बड़ोंका अनुकरण करता और उनके मार्ग पर चलता है ॥११

वह वाणी अपने विरुद्ध निश्चय को सुनकर खिन्न हो गई और उस का गर्भपात (कार्य बन्द) हो गया। उस वाणी ने प्रजापति से कहा—मैं कभी तेरे लिए हवि न ले जाऊँगी क्योंकि तूने मेरा विरोध किया, इसलिए यज्ञमें जो कुछ प्रजापतिके लिए किया जाताहै वह मौन होकर ही, क्योंकि वाणी प्रजापति के लिये हवि की वाहक नहीं होती ॥१२

तब देव उस रेत (बीज) को चमड़े में या अन्य किसी चीज में ले आये। उन्होंने पूछा अत्र ? (अरे क्या यह यहाँ है)। इस प्रकार अत्रि उत्पन्न हुआ ; (अत्र से अत्रि)। इसीलिए आत्रेयी स्त्री से सम्बन्ध करने से दोष लगता है क्योंकि देवी वाणी रूपी स्त्री से यह सब उत्पन्न हुये हैं। (आत्रेयी वह स्त्री जिसका अभी गर्भपात हो चुका हो अर्थात् शक्ति क्षीण हो गई हो) ॥१३

—※—

अध्याय ५ ब्राह्मण १

अब वह (अध्वर्यु) प्रवर के लिए बुलाता है। (होता के लिये जो वरण किया जाता है उसे प्रवर कहते हैं)। प्रवर के लिए बुलाने का कारण है कि बुलाना (आश्रावण) ही यज्ञ है। प्रवर के लिये इसलिये बुलाता है कि यज्ञ को कहकर अब मैं होता का वरण करूँ ॥१

वह समिधाओं के बन्धन को (वह रस्सी जिससे लकड़ी बंधी रहती है) लेकर ही बुलाता है। क्योंकि अध्वर्यु बिना यज्ञ की आरम्भ किये बुलाये तो काँप जाय या उस पर कोई विपत्ति आ पड़े ॥२

कुछ लोग वेदि में से बर्हि (कुश) लेकर या समिधा के टुकड़े को काट कर बुलाते हैं और समझते हैं कि यह यज्ञ की वस्तु है। इसलिये इस यज्ञ को लेकर बुलायेंगे। परन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि जिस वस्तु से समिधायें बाँधी जाती हैं या जिनसे अग्नि की राख हटाई जाती है वह भी तो यज्ञ का अंश है। क्योंकि वह यज्ञको लेकर ही बुलाता है। इसलिए समिधाओं के बन्धनको लेकर ही बुलावे ॥३

बुलाकर पहले उसका वरण करता है जो देवों का होता है अर्थात् अग्नि। इस तरह अग्नि तथा देव दोनों को प्रसन्न किया। अग्नि को प्रथम वरण करके तथा देवानां होता में पहले देवों का नाम लेकर ॥४

अब कहता है— अग्निर्देवो दैव्यो होता । यह इसलिए कहा कि अग्नि ही देव तथा देवों का होता है। इससे दोनों को प्रसन्न करता, पहले अग्नि कहने से अग्निको, फिर देवोंका होता कहकर देवोंको ।।५

देवान् यक्षद् विद्वांश्चिकित्वान् । अग्नि इन देवों को जानता है, वही विधिवत् यज्ञ करे — यही उसने कहा ।।६

मनुष्वद् भरतवद् । मनु ने प्रथम यज्ञ किया था, तदनुसार प्रजा ने यज्ञ किया । अतः पढ़ा— मनुष्य के समान। या मनु के यज्ञ के समान होने से मनुष्वद् पढ़ा ।।७

भरतवद् इसलिए पढ़ा क्योंकि देवों के लिए हवि ले जाता है तथा इन प्राणियों को प्राण बनकर पालता है अतः भरत के समान ।।८

अत्र अग्नि को आर्ष होता के रूप में वरण कर ऋषियों तथा देवों के लिए निवेदन करता है । यज्ञ तक पहुंचाने वाला महा वीर्यवान् — अतः इसे आर्षेय वरण करता है ।।९

पूर्व से लेकर पर को वरण करता है क्योंकि पूर्ववर्तीके पश्चात् परवर्ती मनुष्य उत्पन्न हुए । इस प्रकार बड़ों का आदर करता है। पूर्व पिता, फिर पुत्र, फिर पौत्र । इसीलिए पूर्वज से आरम्भ करके क्रमशः निचली श्रेणी तक ।। १०

आर्ष होता का वरण करने के पश्चात् पढ़ता है— ब्रह्मण्वत् । [ब्रह्म के समान] ब्रह्म ही अग्नि है इसलिए कहा—ब्रह्म के समान ;

अब पढ़ता है— आ च वक्षत् [यहाँ लावे] जिन-जिन देवताओं को बुलाना चाहता है उन-उन के लिए कहता है-- यहाँ लावे । [अर्थात् अग्नि अमुक अमुक देवताओं को लाये] ।।११

ब्राह्मण इस यज्ञ के संरक्षक हैं । वही ब्राह्मण यज्ञ के संरक्षक हैं जो वेद के विद्वान् हैं, क्योंकि वे यज्ञ को फैलाते हैं, वे इसको उत्पन्न करते हैं, इसीलिए बोलता है कि —ब्राह्मण इस यज्ञ के संरक्षक हों ।। १२

'यह मनुष्य है'। अब वह इस मनुष्य को होता के रूप में वरण करता है। पहले वह 'अहोता' था (अर्थात् होता नहीं था) अब 'होता' हो गया ॥१३

विधि ८२—वह वरण किया हुआ होता जप करता है, देवताओंके समीप दौड़ता है। देवताओं के पास दौड़ने का प्रयोजन यह है कि विधिपूर्वक देवों के लिए वषट्कार करे। विधिपूर्वक उनके लिए हवि ले जावे। अवहेलना न करे। इस प्रकार वह देवताओं के पास दौड जाता है ॥१४

वह यह जप करता है— 'एतत् त्वा देव सवितर्वृणते'। 'हे देव, सविता तुझको वरण करते हैं'। इस प्रकार वह सविता देवताओं का प्रेरक है। अब कहताहै —'अग्नि होत्राय' (अग्नि को होत्र के लिए)। इस प्रकार वह देवों को और अग्नि को दोनों को प्रसन्न करता है। जब पहले 'अग्नि' कहा तो अग्नि को प्रसन्न किया, और जब देवताओं क होता' कहा तो देवताओं को प्रसन्न किया ॥१५

अब कहता है—'सह पित्रा वैश्वानरेण'। 'वैश्वानर पिता के साथ'। संवत्सर ही पिता वैश्वानर तथा प्रजापति है। इस प्रकार वह संवत्सर अर्थात् प्रजापति को प्रसन्न करता है। अब कहता है —'अग्ने पूषन् बृहस्पते प्र च वद प्र च यज'। 'हे अग्नि! हे पूषा! हे बृहस्पति! बोल और यज्ञ कर'। इस प्रकार बोलने से ही यज्ञ होता है। इसलिए इन देवताओं को प्रसन्न करता है कि 'तुम बोलो, तुम यज्ञ करो' ॥१६

'वसुओं की कृपाके हम पात्र हों। रुद्रोंका वैभव हम में आवे। अदिति अर्थात् पूर्णता के लिए और स्वतंत्रता के लिये आदित्यों के प्रिय होवें' ये तीन देवता हैं वसु, रुद्र और आदित्य। इस कथन का प्रयोजन यह है कि 'हम इन देवताओं के संरक्षण में रहें' ॥१७

अब कहता है—'जुष्टामद्य देवेभ्यो वाचमुद्यासम्'। मैं आज देवताओं की प्रिय वाणी बोलूँ। इसका तात्पर्य यह है कि जो वाणी देवताओं को पसन्द हो वह बोलूँ। देवताओंके लिये प्रिय जो वाणी है उसका बोलना समृद्धि का हेतु है ॥१८

अब कहता है 'जुष्टां ब्रह्मभ्यः'। अर्थात् ऐसी वाणी बोलूँ जो ब्राह्मणों को प्रिय है। इसका तात्पर्य यह है कि देवताओं की प्रिय जो वाणी हो उसको बोलूँ। क्योंकि ब्राह्मणों के प्रति जो वाणी प्रसन्न हो उसका बोलना समृद्धि का कारण होता है ॥१९

अब कहता है— 'जुष्टां नराशंसाय'। अर्थात् ऐसी वाणी बोलूँ जो नराशंस के लिये प्रिय हो, प्रजा ही नर है, इसलिये वह यह समस्त प्रजा

के लिये कहता है। इससे समृद्धि होती है। चाहे समझे चाहे न समझे यहीं कहा जाता है, खूब कहा! खूब कहा! जो कुछ होता की टेढ़ी निगाह से छुट जाये उसको अग्नि वापिस लावे। क्योंकि अग्नि जातवेद [प्राणियों को जानने वाला] और विचर्षण [बुद्धिमान्] है। जो तीन अग्नियाँ पहले होता के लिये चुनी गई थीं वे चली गईं यह चौथी अग्नि जो चुनी गई है वह उस सब की पूर्ति करे जो छूट गया हो– ऐसा कहता है और इससे त्रुटि की पूर्ति हो जाती है ॥२०

विधि ८३— वह अध्वर्यु और अग्नीध्र को छूता है। अध्वर्यु मन है और होता वाणी हैं। इस प्रकार मन और वाणी में मेल कराता है ॥

अब जप कराता है— छः उर्वियाँ पाप से रक्षा करें। अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु; दिन और रात्रि। ऐसा कहने से तात्पर्य यह है कि देवता आर्त अर्थात् रोग से मेरी रक्षा करें। उस पुरुष की कभी अवहेलना नहीं होती जिसकी देवता रोग से रक्षा करते हैं ॥२२

विधि ८४– होता के आसन तक जाता है और होता के आसन से एक तृण निकाल कर फेंकता है और कहता है— निरस्तः परावसुः। परावसु भगा दिया गया। परावसु [पराया माल रखने वाला] असुरों का होता है वह उसको होता के आसन से निकाल कर फेंक देता है ॥२

विधि ८५– वह होता के आसन पर बैठता है। कहे– इदमहमर्वावसोः सदने सीदामि। अर्थात् मैं अर्वावसु के आसन पर बैठता हूं। अर्वावसु [धन न चाहने वाला] देवताओं का होता है। इसलिये वह उसी के आसन पर बैठता है ॥२४

अब वह जपता है— विश्वकर्म्मस्तनूपा असि मा मो दोषिष्टं मा हिंसिष्टम्, एष वां लोकः।

हे विश्वकर्मा, तू शरीर की रक्षा करनेवाला है। हे दोनों अग्नियो मुझे न जलाओ। मुझे न सताओ। यह तुम दोनों का लोक है। ऐसा कहकर वह कुछ उत्तर की ओर बढ़ जाता है। वह आहवनीय और गार्हपत्य अग्निके बीच में बैठता है, ऐसा करने से इन दोनों को प्रसन्न करता है। और कहता है मुझे न जलाओ, मुझे न सताओ, तो वे उसको नहीं सतातीं ॥२५

विधि ८६–अब आहवनीय अग्नि की ओर देखकर जप करता है–

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥ऋ.१०.५२

हे सब देवताओ, मुझे बताओ कि होता की हैसियत से मैं किस का ध्यान रक्खूँ? मेरे भागधेय अर्थात् कर्तव्य को कहो

कि किस मार्ग से आप तक हवि ले जाऊँ। जैसे जिनके लिए पकाया जाय उनसे कहे— बताइये, किस तरह आप तक लाऊँ और परसूँ। ऐसे ही वह देवों का शासन चाहता है कि मुझे बताइये कि मैं किस प्रकार आप तक वषट्कार पहुँचाऊँ या कैसे आप तक हव्य ले जाऊँ। इसीलिये ऐसा जपता है ॥२६

अध्याय ५ ब्राह्मण २

विधि–८७ — अब वह पढ़ता है—

१-२– 'अग्निर्होता वेत्वग्नेर्होत्रम्' "होता अग्नि अग्निके होत्रको जाने'। इसका तात्पर्य है कि 'होता अग्नि इसको जाने'। अग्नि का होत्र इसलिये कहा कि वह मोक्ष के इस साधन (प्रावित्र) को जाने। यज्ञ ही मोक्ष का साधन है। 'यज्ञ को जानने' का तात्पर्य है कि 'हे यजमान, देवता तेरे अनुकूल हों'। इसका तात्पर्य है कि 'हे यजमान, जो अग्नि देवता तेरा होता है, वह तेरे अनुकूल हो।

३– घृतवतीमध्वर्यो स्रुचमास्यस्व अर्थात् हे अध्वर्यु, तू घी से भरे चमसे को ले इस कथनसे अध्वर्यु को प्रेरणा करता है। ऐक ही स्रुक् अर्थात चमसा क्यों कहा? इसलिये कि— ॥१

जुहू के पीछे यजमान ही होता है, तथा जो उसका अनिष्ट चाहता है वह उपभृत् के पीछे। यदि दो चमचों का कथन करे तो यजमान के विरुद्ध द्वेषी शत्रु उद्यत हो जाय। जुहू के पीछे खानेवाला तथा उपभृत् के पीछे खाद्य। यदि दोनों का कथन करे तो खाने-वाले के विरुद्ध खाद्य हो जाय; अतः एक ही चमचे का वर्णन किया ॥२

४-५— देवयुवं विश्ववाराम् ॥ देवों के लिए अर्पित तथा समृद्धि से पूर्ण बताकर चमचे के गुणों का वर्णन करता है।

६-७–ईडामहे देवान् ईडेन्यान्। हम स्तुति-योग्य देवोंकी स्तुति करें,

८ — नमस्याम नमस्यान्। नमस्कार-योग्यों को नमस्कार करें।

९—यजाम यज्ञियान्; पूज्योंकी पूजा (सत्कार) तथा सङ्गति करें। मनुष्य स्तुति-योग्य, पितर नमस्य: तथा देव यज्ञिय (पूजायोग्य) हैं ॥३

जो प्रजा यज्ञ में भाग नहीं लेती, वह पराभूत (यज्ञ से दूर) है। वह अपराभूतों को यज्ञ में सम्मिलित करता है। मनुष्यों के अनुकूल पशु, देवों के अनुकूल पक्षी–ओषधियाँ–वनस्पतियाँ, और यह जो कुछ है सभी यज्ञ में सम्मिलित है ॥४

ये ९ व्याहृतियाँ हैं, ९ पुरुष में प्राण हैं, उन्हें इसमें धारण कराता है, अतः व्याहृतियाँ ९ हैं ॥५

यज्ञ देवों से दूर चला गया। उसको वे बुलाने लगे— आ, हमारी सुन, वापस लौट आ। वह तथाऽस्तु बोलकर लौट आया। लौटे हुए उससे देवोंने यज्ञ किया उससे यज्ञ करके ही वे देव हुए ॥६

जब अध्वर्यु अग्नीध्रको 'आ श्रावय' बोलकर बुलाता है तो मानो यज्ञ को बुलाता है— आ, सुन, वापस लौट आ। और जो प्रत्याश्रावण तथाऽस्तु बोलकर किया जाता है, मानो यज्ञ ही लौटता है। इस बीजभूत यज्ञसे ऋत्विज्, यजमान से परोक्ष, सम्प्रदाय चलाते हैं। जैसे लोग पूर्णपात्र को एक से दूसरे को देते हैं ऐसे ही ऋत्विज सम्प्रदाय चलाते हैं। वाणी ही यज्ञ तथा बीज है। इसीसे सम्प्रदाय चलाते हैं॥७

'अनुब्रूहि'—कहने पर अध्वर्यु होता से अपव्यवहार न करे, और होता अध्वर्यु से। अध्वर्यु बुलाता है, तब अग्नीध्र तक यज्ञ पहुंचता है॥८

वह अग्नीत् प्रत्याश्रावण तक अपव्यवहार न करे। अग्नीत् उत्तर कर फिर यज्ञ को अध्वर्यु तक पहुंचाता है॥९

'यज'(यज्ञ करो) कहने तक अन्य शब्द न कहे, यज कहकर वह यज्ञको होता तक पहुंचाता है॥१०

वषट् कहने तक होता अन्य शब्द न कहे, इससे वह यज्ञको सींचता है। अग्नि यज्ञकी योनि है,हविर्यज्ञ और सोमयज्ञमें यज्ञ अग्निसे उत्पन्न है॥११

सोमग्रह लेनेके पश्चात् उपाकरण तक अध्वर्यु कोई अन्य शब्द न कहे। 'उपावर्त्तध्वम्' (निकट आइए)—ऐसा कहकर अध्वर्यु उद्गाताओं के लिए यज्ञको देता है॥१२

उत्तम अर्थात् सबसे पिछली ऋचा बोलनेतक उद्गाता कोई अन्य शब्द न बोलें :'एषोत्तमा' (यह अन्तिम ऋचा है)– ऐसा कहकर उद्गाता लोग यज्ञको होता के लिए देते हैं॥१३

होता वषट् तक कोई अन्य शब्द न बोले। वषट्कार से अग्नि में उस प्रकार सिंचन किया जाता है जैसे योनि में वीर्य का। अग्नि यज्ञ की योनि है। क्योंकि वह वहीं से उत्पन्न होता है॥१४

यदि जिसके पास यज्ञ लौटता है वह अन्य शब्द कह दे तो वह उस प्रकार यज्ञ को बरबाद कर देता है. जैसे (जल से) पूरे भरे हुए पात्र को (नीचे फेंक देने से जल बरबाद जाता है)। जहां ऋत्विज लोग परस्पर एक दूसरेको समझते हुए यज्ञ करते हैं वहाँ सब काम ठीक होता है, कोई त्रुटि नहीं होती। इसी प्रकार भरण करना चाहिए॥१५

यह पाँच व्याहृतियाँ होती हैं–१. ओ! श्रावय,(सुनाओ या पुकारो) २. अस्तु श्रौषट्, (वह सुने) ३. यज (समिधा को प्रज्वलित करो) ४. ये यजामहे(हम यज्ञ करते हैं) ५. वौषट्,(ले जावे)। ५ प्रकार का पशु, वर्षकी ऋतुएँ होती हैं। यह यज्ञ की मात्रा; सम्पत् है॥१६

इनमें सत्रह अक्षर होते हैं। प्रजापति सत्रह प्रकार का है। प्रजापति ही यज्ञ है। यह यज्ञ की मात्रा है। यह यज्ञ की पूर्णता है ॥१७

'ओ श्रावय' से पूर्व की वायु को चलाते हैं। 'अस्तु श्रौषट्' से बादलों को लाते हैं। 'यज' से विजली को। 'ये यजामहे' से गर्ज को और वषट्कार से पानी को बरसाते हैं ॥१८

यदि उसकी वर्षा की इच्छा हो या विशेष यज्ञ करनेवाला हो या दर्शपूर्णमास यज्ञ का, इन सब में ऐसा बोले—'वृष्टिकामो वा अस्मि'। 'मैं वर्षा का इच्छुक हूँ'। वह अध्वर्यु से कहे— 'वायु और विजली का मन से ध्यान करो' आग्नीध्र से कहे— 'तू अपने मन में बादल का ध्यान कर'। होता से कहे कि गरज और वर्षा का मन से ध्यान करो। ब्रह्मा से कहे कि 'तुम सब का ध्यान मन से करो'। जहाँ जिस प्रकार ऋत्विज लोग एक दूसरे को समझ कर यज्ञ करते हैं वहाँ अवश्य वर्षा होती है ॥१९ ।,

'ओ श्रावय' कहकर दोनों ने विराट् अर्थात् गायको बुलाया। 'अस्तु श्रौषट्' कहकर बछड़े को खोला। 'यज' कहकर (बछड़े के सिर को माँ के थनों तक) उठाया। 'ये यजामहे' कहकर गायके पास बैठे। वषट्कार से उन्होंने उसको दुहा। यह (पृथ्वी) ही विराट् है। उसी का यह दुहना है। जो पुरुष इस विराट् के इस प्रकार दुहने को जानता है उसके लिए यह विराट सब इच्छाओं को पूर्ण कर देती है ॥२०

शतपथ अ, ५ ब्राह्मण ३

विधि ८८— ऋतुयें ही प्रयाज हैं वे इसलिए ५ हैं क्योंकि ऋतुएँ ५ हैं ॥१

देव और असुर, दोनों प्रजापति की सन्तान, इस यज्ञ में, जो प्रजापति अर्थात् पिता वर्ष है झगड़ने लगे कि यह हमारा होगा, यह हमारा होगा ॥२

तब देव पूजा और पुरुषार्थ करते हुए विचरने लगे। उन्होंने इन प्रजाओं को देखा और उनके द्वारा पूजा की। उनके द्वारा उन्होंने ऋतुओं अर्थात् वर्ष को प्राप्त किया। उन्होंने ऋतु अर्थात् वर्ष से अपने शत्रुओं को वंचित कर दिया। इसलिए 'प्रजा' का 'प्रजय' नाम हुआ। इसीलिए प्रयाज नाम हुआ। इसी प्रकार यह (यजमान) ऋतुओं अर्थात् संवत्सर को जीत लेता है और अपने शत्रुओं को ऋतुओं अर्थात् संवत्सर से वंचित कर देता है।' इसीलिए वह प्रयाज से यज्ञ करता है॥३

उनकी हवि घी से दी जाती है। घी ही वज्र है। इसी वज्र से देवों ने ऋतुओं और संवत्सर को जीता और शत्रुओं को संवत्सर से वंचित किया। इसी प्रकार यह (यजमान) भी इसी वज्ररूपी घीसे ऋतुओं अर्थात् संवत्सर को जीतता है और अपने शत्रुओंको ऋतुओं अर्थात् संवत्सर से वंचित करता है। इसीलिए आहुतियाँ घी की दी जाती हैं ॥४

यह जो घी है वह संवत्सर का अपना ही पय (पीने की वस्तु, शक्ति का साधन) है । इसीलिये देवों ने इस (संवत्सर) को उसी के पय से अपना लिया । और यह(यजमान) भी उसीके पय से संवत्सर को अपनाता है । इसीलिए कहा कि यह (प्रयाज) आहुतियाँ घीकी होती हैं ।।५

वह जहाँ खड़ा होकर प्रयाजोंके लिए बुला , वहाँसे हटे नहीं । संग्राम हो जाता है जब कोई 'प्रयाजों' से यज्ञ करता है । और लड़ने वालों में जो परास्त हो जाता है वही पीछे हट जाता है । और जो विजयी होता है वह निकट चला जाता है । इसीलिए (अध्वर्यु) भी निकट- निकट जा कर आहुति देने को उद्यत हो ।।६

परन्तु उसको ऐसा न करना चाहिए जहाँ खड़ा होकर प्रयाजों को बुलावे उस स्थान से हटे नहीं । जहाँ अधिक से अधिक अग्नि जलती हुई प्रतीत हो वहीं आहुति दे । क्योंकि आहुतियाँ उसी स्थान पर ठीक ही जलती हैं जहाँ अधिक आग जलती है ।।७

वह (अध्वर्यु) (अग्नीध्र को) बुलाकर (होता से) कहे– समिधो यज। समिधा आग में डालो । इस प्रकार वह वसन्त को प्रज्वलित करता है। प्रज्वलित हुआ वसन्त अन्य ऋतुओं को प्रज्वलित करता है। प्रज्वलित ऋतुयें प्रजा को उत्पन्न करती हैं, ओषधियों को पकाती हैं । इसी कथन से वह अन्य ऋतुओंको सम्मिलित करता है अन्य ऋतुओं के लिये वह केवल इतना कहता है — यज (अर्थात् आहुति दो) ।यदि वह कहे— तनूनपातं यज या इडो यज तो व्यर्थ का दुहराना होगा । इसीलिए अन्य आहुतियों के लिए केवल 'यज' कह देता है ।।८

१— वह समिधाओंसे यजन करता है। वसन्त ही समिधा है । वसन्त को ही देवों ने अपना लिया और वसन्त से ही शत्रुओं को वंचित कर दिया। अब यहाँ यजमान भी वसन्त को अपनाता है और उससे अपने शत्रुओं को वंचित करता है इसीलिए समिधाओं से यजन करता है ।।९

२—वह 'तनूनपात्' का यज्ञ करता है । ग्रीष्म ही तनूनपात् है ग्रीष्म ही इन प्रजाओं के शरीरों को तपाता है । देवों ने उस समय ग्रीष्म को अपनाया और ग्रीष्म से शत्रुओं को वंचित कर दिया । अब यह यजमान भी ग्रीष्म को अपनाता है और ग्रीष्म से शत्रुओं को वंचित करता है । इसीलिए वह तनूनपात् से यज्ञ करता है ।।१०

३—अब इड का यज्ञ करता है वर्षाऋतु इड है,ये जो छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े हैं और जो ग्रीष्म और हेमन्त में क्षीण हो जाते हैं वे मानो वर्षा की प्रशंसा करते हुए भोजन की तलाश में फिरते हैं, इसीलिये वर्षा इड हुई । वर्षा को ही देवों ने अपनाया । उसीसे शत्रुओं को हराया, ऐसे ही वह इसे अपनाता, इससे ही शत्रु दूर करता है; अतः इडका यज्ञ करे ।।११

४—अब बर्हि–यज्ञ करता है शरद् ही बर्हि है। जो ओषधियाँ ग्रीष्म और हेमन्त में क्षीण हो जाती हैं वह वर्षा के द्वारा बढ़ती हैं, और शरद् ऋतुमें बर्हिके रूपमें फैलती हैं, इसीलिये देवोंने शरद्‌को अपनाया, इससे शत्रुओंको वंचित किया। इसी प्रकार यजमान भी शरद् अपनाता तथा उससे शत्रुओंको वंचित करता है। अतः बर्हि-यज्ञ करता है ॥१२

५—अब स्वाहा–स्वाहा कहकर यज्ञ करता है। स्वाहाकार यज्ञ का अन्त है तथा हेमन्त ऋतुओं का। यह वसन्तसे बहुत दूर है। देवोंके समान वह अन्त से अन्त को अपनाता तथा शत्रुओंको वंचित करता है, अतः वह स्वाहा–यज्ञ करता है ॥१३

वह वसन्त ही हेमन्त के पश्चात् इससे ही पुनर्जीवित होता है, अतः जो इस को समझता है वह इस लोक में पुनर्जीवित होता है।-१४

वह क्रमशः व्यन्तु तथा वेतु बोलता है। यदि केवल एक ही बोले तो पुनरुक्ति दोष लगे। व्यन्तु स्त्रीवाची के तथा वेतु पुरुष के साथ है। जोड़ेसे ही प्रजनन होता है। अतः व्यन्तु-वेतु बोलकर यज्ञ करता है।।१५

चौथे प्रयाज अर्थात् बर्हि याग में वह (जुहू में घी) डालता है। बर्हि प्रजा है और घी वीर्य है। इसलिये इस प्रकार वीर्य प्रजाओं से सिंचित होना है और उसी से प्रजायें बार बार उत्पन्न होती हैं। इसीलिए चौथे बर्हि-याज में वह (जुहू में घी) छोड़ता है ॥१६

जो प्रयाजसे यज्ञ करताहै उसकेलिए मानो संग्राम-सा छिड़ जाताहै। और जो मित्र जिस दल में मिल जाता है उसी की जय होती है। इसी लिए मित्र उपभृत् से चलकर जुहू में आता है, और उसी से जय को प्राप्त होता है। यही कारण है कि वह बर्हि–यज्ञ में (घृत) छोड़ता है ॥१७

यजमान जुहू के पीछे ही (खड़ा होता है)। और जो उससे शत्रुता करता है वह उपभृत के पीछे। इस प्रकार वह अहितकारी शत्रु से यजमान के लिये बलि (भेंट) दिलवाता है। जो खाने वाला है वह जुहू के पीछे (खड़ा होता है) और जिसको खाया जाता है वह उपभृत् के पीछे। इस प्रकार वह खाने वाले के प्रति बलि दिलवाता है, यही कारण है कि वह चतुर्थ प्रयाज में अर्थात् बर्हि–यज्ञ में (घी) छोड़ता है ॥१८

वह बिना छुये ही (घी) छोड़ता है। यदि वह उसको छू ले तो मानो यजमान अहितकारी शत्रु से छू गया। या खाद्य–पदार्थ से खाने वाला छू गया। इसलिये बिना छुये ही [घी] डालता है ॥१९

अब वह जुहू को उपभृत्‌के ऊपर पकड़ता है इससे मानो वह यजमान को अहितकारी शत्रु के ऊपर उठाता है या खाने वाले को खाद्य के ऊपर उठाता है। इसीलिये वह [जुहू] को उपभृत्‌के ऊपर उठाता है ॥२०

देवों ने कहा था कि 'अब जीत हो गई इसलिये इसके पश्चात् सब यज्ञ की संस्थापना (दृढ़ता) कर दें जिससे यदि राक्षस लोग कष्ट भी दें तो भी यज्ञ दृढ़ रीति से संस्थापित हो जाय' ॥२१

अन्तिम प्रयाजमें वह देवता 'स्वाहाकार'से सम्पूर्ण यज्ञकी स्थापना करते हैं। 'स्वाहाग्निम्' से जो आज्यभाग था वह अग्निके लिए किया था। 'स्वाहा सोमम्' से जो आज्य-भाग था उसको सोम के लिये। फिर 'स्वाहाग्निम्' से वह भाग जो दोनों दर्श-पौर्णमास यज्ञों में प्रयुक्त होता है; अग्नि का पुरोडाश होता है, उसकी संस्थापना करता है॥२२

इसी प्रकार अन्य देवों के लिये भी। 'स्वाहा देवा आज्यपा' इससे प्रयाज और अनुयाजकी संस्थापना करते हैं। प्रयाज और अनुयाज ही 'आज्यपा देव हैं। 'जुषाणा अग्निराज्यास्य वेत्तु' इससे स्विष्टकृत् अग्नि की संस्थापना की, क्योंकि अग्नि ही स्विष्टकृत् है। और वह अग्नि आज तक उसी प्रकार संस्थापित चली आती है जैसी उस समय थी, जब देवों ने उस को पहले पहल स्थापित किया था। इसलिए पिछले प्रयाज में 'स्वाहा स्वाहा' से जितनी आहुतियाँ होती हैं वे सब दी जाती हैं। जीत के पश्चात् वह यज्ञ की दृढ़ता से संस्थापना करता है, इसलिए यदि वह विलोम अर्थात् उलटा क्रम करदे तो अवहेलना न हो, क्योंकि वह जानता है कि मेरा यज्ञ दृढ़ता से संस्थापित है। अब वषट्कार और स्वाहाकार से जो यज्ञ रह गया था वह हो जाता है॥२३

अब देवों ने चाहा कि हम इस यज्ञको कैसे प्राप्त करें और प्राप्त करके किस प्रकार करें, किस प्रकार उसका पालन करें॥२४

अब जुहूमें जो घी बच रहा था जिस से यज्ञकी संस्थापना की थी, उसी से पहले के समान हवियों को सींचता है। उसीसे इनको प्राप्त करता है, उसी से उसको पूर्ण करता है क्योंकि 'आज्य' (घी) पूर्ण होता है। इसलिए पिछले प्रयाजको करके पहले के समान हवियों को सींचता है। फिर उनको पूर्ण करता है। आज्य (घी) ही पूर्णता है। इसलिए जिस किसी की हवि को काटता है उसी को फिर सींचता है और स्विष्टकृत् आहुति के लिये पूर्ण करता है। परन्तु जब स्विष्टकृत के लिये काटता है तो फिर नहीं सींचता, क्योंकि इसके पश्चात् कोई आहुति अग्नि में नहीं दी जायगी॥२५

अध्याय ५ ब्राह्मण ४

१—अब वह समिधा-यजन करता है. प्राण ही समिधा है। इस प्रकार वह प्राणों को प्रज्वलित करता है. यह पुरुष प्राणों द्वारा ही प्रज्वलित

किया जाता है. इसी लिए यदि (यजमान को) ज्वर हो तो (अध्वर्यु) कहेगा 'अभिमृश' (छुओ), यदि गरम हो तो सन्तुष्ट होगा, क्योंकि वह प्रज्वलित हो जाता है, यदि ठण्डा हो तो चिन्ता होती है, वह इस प्रकार प्राणों को उसमें रखता है। इसीलिये समिधा-यजन करता है। ।१

२— अब तनूनपात्-यजन करता है। वीर्य (रेत) ही तनूपात् है। इस प्रकार रेत को सींचता है, इसीलिए तनूनपात् यज्ञ करता है ।।२

३—अब-यजन करता है। प्रजा ही इड है। जब सींचा हुआ वीर्य प्रजा के रूप में उत्पन्न होता है तब प्रशंसा करते हुए के समान अन्न की खोज में विचरता है। इसप्रकार वह यजमानसे सन्तानोत्पत्ति कराता है। इसलिये वह इड-यजन करता है ।।३

४— अब वह र्बाहि-यजन करता है। र्बाहि का अर्थ है बहुतायत। इस प्रकार वह बहुतायतको उत्पन्न करता है। इसीलिये र्बाहि-यजन करता है ।।४

५—अब स्वाहा-यजन करता है। ऋतुओंमें हेमन्त स्वाहाकार है, हेमन्त ही इन प्रजाओं को अपने वश में करता है। इसीलिए हेमन्त में ओषधियाँ सूख जाती हैं, वृक्षों के पत्ते झड़ जाते हैं, पक्षी नीचे उतर से आते हैं, पापी पुरुष के बाल झड़ जाते हैं। हेमन्त इन सब प्रजाओंको वश में कर लेता है। जो इस रहस्य को समझता है वह उस स्थानको जहाँ वह रहता है अपने वश में कर लेता है, और श्री तथा अन्न से अपने को युक्त कर लेता है ।।५

देव और असुर दोनों प्रजापतिकी सन्तान महत्व के लिए लड़ पड़े। वह डंडों और धनुष से एक दूसरे को नहीं जीत सके, तो न जीतने वाले होकर कहने लगे, 'अब हम ब्रह्म-वाणी से जीतेंगे। जो हमारी कही हुई वाणी को जोड़े में अर्थात् पुंलिग वा स्त्रीलिंग न समझ सकेगा वह पराजित हो जायगा तथा सब कुछ खो बैठेगा, और विपक्षी सब कुछ ले लेंगे। देवों ने कहा-अच्छा, देवों ने इन्द्र से कहा बोलो ।।६

इन्द्र बोला 'एको मम' (एक मेरा)। औरों ने कहा 'अस्माकं एका' (एक हमारी)। इस प्रकार जोड़े को प्राप्त किया। एक पुंलिग और स्त्रीलिङ्ग मिलकर जोड़ा होता है ।।७

इन्द्र ने कहा -'द्वौ मम'-(दो मेरे)। दूसरों ने कहा 'अस्माकं द्वे' (दो-हमारी)। इस प्रकार उन्होंने जोड़े को प्राप्त किया, क्योंकि 'द्वौ' और 'द्वे' मिल कर जोड़ा होता है ।।८

इन्द्रने कहा 'त्रयो मम' (मेरे तीन)। औरोंने कहा 'अस्माकं तिस्रः' (हमारी तीन)। इस प्रकार उन्होंने जोड़े को पा लिया, क्योंकि त्रयः और तिस्रः मिलकर एक जोड़ा हो जाता है ।।९

इन्द्र ने कहा 'चत्वारो मम' (मेरे चार)। औरों ने कहा 'अस्माकं

चतस्रः' (हमारी चार), इस प्रकार जोड़ेको प्राप्त किया क्योंकि पुलिंग 'चत्वारः और स्त्रीलिंग 'चतस्रः' मिलकर जोड़ा हो जाता है ।।१०

इन्द्र ने कहा 'पंच मम' पांच मेरे। अब औरों को जोड़ा न मिला। इससे आगे जोड़ा होता ही नहीं, दोनों लिगोंमें पंच ही होता है । इस प्रकार सब असुर पराजित हो गये, देवों ने असुरों का सब कुछ ले लिया, उन शत्रुओं से सब कुछ छीन लिया।।११

इसलिये पहले प्रयाजा में कहे [मेरा एक, एक उसकी जिससे हम द्वेष करें] । और यदि किसी से द्वेष न करे तो कहे जो हमारे साथ द्वेष कररता हैं और जिसको हम द्वेष करते हैं ।।१२

दूसरे प्रयाजा में कहे [दो मेरे, दो उसको जो हमसे द्वेष करता हैं या जिससे हम द्वेष करते हैं ।।१३

तीसरे प्रयाजमें कहे कि ३ मेरे,तीन उसकी जो हमसे द्वेष करे और हम जिसके साथ द्वेष करते हैं।।१४

चौथे प्रयाजा में कहे चार मेरे। चार उसकी जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं ।।१५

पाँचवे प्रयाजा में कहे (पांच मेरे) । उसके लिए कुछ भी नहीं जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं । पाँच-पाँच करके शत्रु पराजित होता है । जो इस रहस्य को समझता है उसको सब मिल जाता है । वह सब शत्रुओं को परास्त कर देता है ।।१६

ब्राह्मणम् ।।५।। [५.४.] अध्यायः ।।५।।

—❀—

अध्याय ६ ब्राह्मण १

ऋतुओं ने देवों से यज्ञ में भाग माँगा— हमको यज्ञ में भाग दो, यज्ञ से बाहर न निकालो, हमारा भी यज्ञ में भाग हो। १

देवों ने न माना, असुरों के पास चली गईं जो अप्रिय, तथा देव-द्वेषी, शत्रु थे । २

उन्होंने ऐसी उन्नति की कि सर्वत्र सुनी गई ; वे जोतते, बोते जाते थे, दूसरे साथी काटते, मड़ाई करते जाते थे, इनके लिए मानो विना जोते ही सब ओषधियाँ झट से पक जाती थीं । ३

यह देवों का अपराध था । छोटा द्वेषी बड़े के लिऐ हानि पहुंचाये कोई ऐसा उपाय होता कि ऐसी अवस्था न रहे । ४

वे बोले पहले ऋतुओं को बुलाये, इनको यज्ञ में भाग दें ।५

वह अग्नि बोला— तुम मुझे पहले आहुति देते हो, मैं कहाँ जाऊँ ; वे बोले— हम तुझे तेरे स्थान से नहीं हटायेंगे, उसे नहीं हटाया,

इसीलिए अग्नि अच्युत है। जो पुरुष समझता है कि अग्नि अच्युत है वह अपने स्थान से च्युत नहीं होता ।६

देवों ने अग्नि से कहा, जाओ और उन्हें यहाँ बुला लाओ। अग्नि उनके पास गया और बोला। हे ऋतुओं, मैंने तुम्हारे लिये यज्ञ में भाग प्राप्त कर लिया। उन्होंने पूछा, तुमने हमारा भाग हमारे लिये कैसे प्राप्त कर लिया ? अग्नि ने उत्तर दिया वे पहले तुम्हारे लिये आहुति देंगे।७

ऋतुओं ने अग्नि से कहा, हम तुमको अपने साथ यज्ञ में भाग देंगे क्योंकि तुमने हमारे लिए यज्ञ में देवों के साथ भाग दिलाया है तथा क्योंकि अग्नि को ऋतुओं के साथ-साथ आहुति मिली, इसीलिए कहते हैं 'समिधोऽग्ने, तनूनपादग्ने, इडोऽग्ने, बर्हिरग्ने, स्वाहाग्निम्'। जो इस रहस्य को समझता है उसका उस पुण्य कार्य में भाग होता है जो वह पुरुष करता है, जो अपने को उसके समान कहता है, क्योंकि वह अग्निवाला है। अग्निमान् ऋतुएँ ही ओषधियों तथा दूसरे पदार्थों को पकाती हैं।८

इस पर कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि जब यह पिछले प्रयाज हैं तो पहले ही आहुतियाँ क्यों दी जाती हैं ? इसका उत्तर यह है कि इन प्रयाजों की कल्पना ही सबसे पीछे की थी। इसलिये यह पिछले प्रयाज हैं। और क्योंकि कहा कि हम पहले आहुति देंगे इसलिये प्रयाज आहुति पहले देते हैं ।९

देवों ने चौथे प्रयाज से यज्ञ को प्राप्त किया तथा पाँचवें प्रयाज से उसकी स्थापना की। उसके बाद जो कुछ बिना स्थापित हुआ बच रहा उसके द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त किया।१०

वे स्वर्गलोक को जाने लगे तो असुर तथा राक्षसों से डरे। उन्होंने अग्नि को अगुवा बनाया। क्योंकि वह राक्षसों को मारने और भगाने वाला है। उन्होंने अग्नि को मध्य में रक्खा। क्योंकि अग्नि राक्षसों को मारने एवं भगाने वाला है। उन्होंने अग्नि को पीछे रक्खा। क्योंकि अग्नि राक्षसों को मारने भगाने वाला है। ११-१२

उसी प्रकार यह भी चौथे प्रयाज से यज्ञ को प्राप्त करता है, उसे ५वें से संस्थापित करता है, इसके बाद जो असंस्थित है उससे स्वर्गलोक को ही प्राप्त करता है ।।१३

विधि ८९— वह जब आग्नेय आज्य-भाग से यज्ञ करता है तो राक्षसों को मारने-भगाने वाले अग्नि को ही आगे रखता, आग्नेय पुरोडाश में मध्य में, तथा स्विष्टकृत् में पीछे रखता है।१४

राक्षसों को मारने-भगाने वाला अग्नि आगे; मध्व, तथा पीछे से असुर-राक्षसोंको हटा देता है। इस प्रकार अग्नियों से सब ओर सुरक्षित होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। १५

यदि कोई यज्ञ के आगे दुष्ट व्यवहार करे तो उससे कहे— तुझे मुख्य रोग लगेगा, या तू अन्धा या बहिरा हो जायगा, ये ही मुख्य रोग हैं, ऐसा ही हो। १६

यदि पीछे दुर्व्यवहार करे तो कहे—तू निस्सन्तान पशु-हीन होगा, क्योंकि प्रजा-पशु मध्य के हैं। ऐसा ही होगा।१७

यदि यज्ञ के पीछे बुरा बोले तो उससे कहे— तू अप्रतिष्ठित, दरिद्र होकर शीघ्र उस लोक को चला जायेगा। ऐसा ही होवे। किसी को इस लिये दुष्ट व्यवहार नहीं करना चाहिए, जो इस रहस्य को जानता है वही लाभ में रहता है ॥१८

प्रयाजों से संवत्सर को जीतता है। वही जीतता है जो उसके द्वारों कोजानता है;वे लोग घरोंसे क्या लाभ उठा सकते हैं जो भीतर घुसनेके द्वारों को नहीं जानते। जिस प्रकार यज्ञ के द्वारा प्रयाज हैं उसी प्रकार संवत्सर के द्वार वसन्त और हेमन्त हैं। इस संवत्सर में स्वर्ग लोक करके प्रविष्ट होता है, क्योंकि वस्तुतः संवत्सर 'सब' है। सब अक्षय है। इस प्रकार उसको अक्षय पुण्य और अक्षय लोककी प्राप्ति होती है ॥१९

यदि कोई पूछे कि आज्य आहुतियाँ किस देवके लिए हैं तो उत्तर देना चाहिए—— 'प्रजापति के लिये'। क्योंकि प्रजापति अनिरुक्त (अस्पष्ट) है और यह आहुतियाँ भी अनिरुक्त हैं। यजमान ही उनका देवता है। अपने यज्ञ में यजमान ही प्रजापति है, क्योंकि इसी के कहने से ऋत्विज लोग यज्ञ को फैलाते और उत्पन्न करते हैं ॥२०

हवि के ऊपर घी लगाकर उसमेंसे दो टुकड़े काटकर उन पर घी डालता है। इस प्रकार घी से मिश्रित आहुति दी जाती है। मानो यजमान से ही मिश्रित आहुति दी जाती है। चाहे वह दूर हो, या निकट यज्ञ इसी प्रकार किया जाता है मानो वह निकट ही है। जो इस रहस्य को समझता है; वह यज्ञ से बाहर नहीं होता, चाहे कितना पाप क्यों न करे ॥२१

———❀———

अध्याय ६ ब्राह्मण ४ (दर्शेष्टि)

जब इन्द्र ने वृत्र के लिए वज्र फेंका तो अपने को निर्बल समझकर और यह समझकर कि (वृत्र) अभी मरा नहीं, वह छिप गया, और बहुत दूर चला गया। अब देवों ने जान लिया कि वृत्र मारा गया और इन्द्र छिप गया ॥१

देवताओं में अग्नि, ऋषियों में हिरण्यस्तूप (सुनहरी कल्पना) और छन्दों में वृहती उसको खोजने लगे। अग्नि ने उसे पालिया, और उसके साथ अमावस को रहा। वह देवों में वसु और उन में वीर है ॥२

देवों ने कहा, अमा अर्थात हमारा वसु जो हमसे अलग चला गया था आज (अग्नि) के साथ रहता है। जैसे दो सम्बन्धियो या मित्रोंके या मेहमानों के लिए भात या अज (सात वर्ष पुराने चावल) पकाये, यह मनुष्यों की हवि है। ऐसे ही इन दो (इन्द्र और अग्नि) के लिए यह समान हवि है। इन्द्र और अग्निके लिये ११ कपालोंका पुरोडाश होता है अतः इन्द्र-अग्नि के लिये १२ कपालों वाला पुरोडाश बनाया ॥३

इन्द्रने कहा, 'जब मैंने वृत्रको वज्र मारा तो मै डर गया और दुबला हो गया। यह हवि मुझे काफी नहीं है, ऐसी तैयार करो जो काफी हो जाय। देवों ने कहा, 'अच्छा' ॥४

उन देवोंने कहा— इस सोम के सिवाय और कुछ नहीं होगा, अतः इसके लिये सोम ही दें। उसके लिये सोम को भरा। यह सोम राजा, जो देवों का अन्न है, चन्द्रमा ही है। जब वह इस (अमावास्या की) रात को न पूर्व में, न पश्चिम में दीखता है तो उस समय इस लोकमें आ जाता है तथा जल और ओषधियोंमें प्रविष्ट हो जाता है। वह देवों का वसु या अन्न है। और चूंकि इस रात को वह यहाँ साथ रहता है (अमा वसति) इसलिए इसका नाम अमावास्या है ॥५

उन्होंने इस (सोम)को गौओं द्वारा इकट्ठा करा करके तैयार किया। जो ओषधि खाई उस ओषधिसे, और जो जल पिया उस जल से। उसी को बना कर और तीव्र (तेज) करके उन्होंने (इन्द्र को) दिया ॥६

उस (इन्द्र) ने कहा, 'इससे मेरा पेट तो भर जाता है पर यह मुझे अच्छा नहीं लगता। ऐसा उपाय करो कि वह मुझे अच्छा लगने लगे। उन्होंने उसे औटे हुए दूध (और दही) के द्वारा रुचिकर बना दिया ॥७

यद्यपि यह एक चीज है, दूध ही है और इन्द्रका ही है फिर भी इस को नाना (अनेक) कहते हैं। चूंकि इन्द्रने कहा, 'धिनोति मे' (मेरा पेट भर जाता है) इस लिये इसका नाम हुआ 'दधि'। और चूंकि इस में 'शृत' अर्थात् औटाहुआ दूध मिलाया इसलिये इसे 'शृत' कहते हैं ॥८

जैसे सोम का डंठल तृप्तिकारक हो जाता है इसी प्रकार इन्द्र भी तृप्त हो गया और उसका रोग जाता रहा। अमावास्या यज्ञ का यही महत्त्व और जो कोई इस रहस्य को समझ कर (अमावास्याके यज्ञ में) दूध और दही मिलाता है वह प्रजा और पशुसे पूर्ण होता है। उसका दोष छूट जाता है, अतः उसको दूध-दही मिलाना चाहिए ॥९

इस पर कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि जो सोमयाजी न हो तो उसे दहीकी आहुति न देनी चाहिए; क्योंकि सान्नाय्य ही सोम आहुति है। जो सोमयाजी न हो उसको सोम आहुति देने का अधिकार नहीं। अतः जो सोमयाजी नहीं उसको सान्नाय्य आहुति नहीं देनी चाहिये॥१०

परन्तु उसे सान्नाय्य आहुति देनी चाहिए। हमने इसी सम्बन्ध में सुना है कि इन्द्रने कहा कि, 'इस समय मुझे सोम आहुति दे दो' फिर तुम मेरे लिये उस शक्ति देने वाली सान्नाय्य को तैयार करना। इससे मेरा पेट नहीं भरता, वह बनाओ जिससे मेरी सन्तुष्टि हो। उस शक्ति देने वाली वस्तु को उन्होने अवश्य ही तैयार किया और इसलिए जो सोमयाजी नहीं है वह भी सान्नाय्य [दही की] आहुति दे ॥११

पौर्णमास यज्ञ वृत्रघ्न अर्थात् इन्द्र के लिये है। क्योंकि इसीके द्वारा इन्द्र ने वृत्र को मारा। और अमावस्या यज्ञ भी वृत्रघ्न है। अतः उसमें शक्ति देने वाली वस्तु[दही] से इन्द्रको तृप्त करते हैं ॥१२

जो पौर्णमास यज्ञ है वह वृत्रघ्न अर्थात् इन्द्र के लिये है। यह जो चन्द्रमा है यही वृत्र है। जब वह उस रात को न पूर्व में दीखता है,न पश्चिम में, तो इस यज्ञ के द्वारा वह इन्द्र इस सब वृत्र को अदृश्य कर देता है, और कुछ भी अंश दृश्य नहीं रहने देता। जो इस रहस्य को जानता है वह सब पाप नष्ट कर देता है, कुछ भी नहीं छोड़ता ॥१३

कुछ लोग (चौदस को चन्द्र) देख कर ही उपवास करते हैं कि कल चन्द्र उदय न होगा। यह देवों का, निश्चय ही नष्ट न होने वाला भोजन है। उनके लिये हम इसमें से देंगे। वह पुरुष वस्तुतः समृद्ध है जिसके पास अभी पुराना अन्न होता है और नया आ जाता है. क्योंकि उसके पास बहुत अन्न होता है। यजमान इस समय सोमयाजी नहीं है, क्षीरयाजी है। अतः यहां [दूध-दही] सोम-राजा होता है ॥१४

यह (दूध) पूर्ववत् ही है क्योंकि (गायें) केवल ओषधि ही खाती हैं, केवल जल ही पीतीं हैं। इसीलिये यह केवल दूध ही होता है (सोम नहीं)। सोम तब होता जब अमावस्या के दिन चन्द्रमा वनस्पति और जलोंमें मिल जाता। यह जो सोम राजा देवोंका भोजन है वह चन्द्रमा ही है। यह जो (अमावास्याकी) रातको न पूर्वमें दीखता है, न पश्चिम में, उसका प्रभाव इस लोक में आ जाता है और जलों तथा ओषधियों

में मिल जाता है, अब ओषधियों व जल से इकट्ठा करके उस सोमको आहूतियों से पैदा करते हैं, फिर यह अगले दिन पश्चिममें दीखताहै॥१५

यह इस तरह है कि देवों का अक्षय अन्न ही मनुष्यों तक आता है, अतः जो इसे ऐसा जानता है वह इस लोक में अक्षय अन्न और परलोक में पुण्य को पाता है ॥१६

इस तरह इस रात अन्न देवों से चलता और इस लोक में आता है। देवों ने चाहा कि वह फिर कैसे वापस आये और दूर पर ही नष्ट न हो जाय। अतः वे जो सान्नाय्य करते हैं उनसे आशा करते हैं कि वे ही तय्यार कर के देंगे। जो यह जानता है उसपर अपने पराये सभी विश्वास करते हैं, क्योंकि जो महत्ता पा लेता, है इस पर सभी विश्वास करते हैं ॥१७

यह जो तपता है वही इन्द्र है और यही वृत्र है जो चन्द्र है, वह इसका शत्रु-सा है, अतः यद्यपि वह रात से पहले विशेष दूर उदय होता है फिर भी इस रात को उसकी ओर तैरता तथा उस सूर्यके प्रभावमें आ जाता है ॥१८

सूर्य चन्द्र को ग्रस कर उदय होता है। वह न पूर्वमें दीखता, न पश्चिम में। जो इसे समझता है वह अपने द्वेषी शत्रु को ग्रस लेता और लोग कहते हैं कि यही वह है जिसके शत्रु नहीं है॥१०

सूर्य चन्द्र को मानो चूस कर फेंक देता है। वह चूसा हुआ-सा पश्चिम में दीखता, फिर बढ़ता, इसी के भोजन के रूप में फिर बढ़ता है। इसे समझने वाले का द्वेषी शत्रु यदि व्यापार वा किसी प्रकार से बढ़ता है तो इसी का भोजन बनने के लिए बढ़ता है ॥२०

कुछ लोग महेन्द्राय स्वाहा—कहकर आहुति करते हैं, क्योंकि वह वृत्र के वध से पहले इन्द्र था, वृत्र को मारकर महेन्द्र हो गया, जैसे राजा विजय करके महाराजा हो जाता है। अतः महेन्द्राय कहते हैं। परन्तु ऐसा न करे। 'इन्द्राय' ही कहे। क्योंकि वह वृत्र-वध के पहले तथा पश्चात् भी इंद्र ही रहा। अतः 'इन्द्राय' ही कहकर आहुति दे ॥२१

इति ब्राह्मणम् ३, [६.४], अध्याय ६॥

—❀—

अ. ७ ब्राह्मण १, दर्शेष्टि विधि

अध्वर्यु पलाश-शाखाके द्वारा गौ-वत्सों को गायोंसे अलग करता है जहाँ गायत्री सोम लेकर उड़ी थी तो सोम लिये जाते हुये [उस गायत्री के] एक आक्रामक निशानेबाज ने तीर चलाया और एक पर्ण (पंख) काट लिया, या तो गायत्री का या सोम का। वह गिरकर पलाश होगया। अतः उसका नाम पर्ण हुआ अब वह सोचता है कि जैसे यहाँ सोम की प्रकृति वाला भाग था यह यहाँ भी होव। इसलिये पलाश (ढाक) की शाखा से बछड़ों को हाँकता है॥१

विधि१.शाखा यह मन्त्र पढ़कर काटता है; 'इषे त्वोर्जे त्वा'। य०१.१

इष (वृष्टि) के लिये तुझे, अन्न के लिये तुझे। जब वह कहता है-इष के लिये, तो उसका तात्पर्य होता है कि 'वृष्टि के लिये'। और जब कहता है-अन्नके लिये, तो तात्पर्य होता है उस भोजन से जो वृष्टि से उत्पन्न होता है॥२

विधि२-बछड़ोंको उनकी माताओंसे मिला देते हैं [अब वह शाखासे बछड़ों को] छूता अर्थात् हाँकता है यह पढ़कर-'वायव स्थ' [य० ११]

'तुम वायु हो'। यह जो चलता है [पवते], वही वायु है। यह [शाखा] भी गायों को लाती है इसलिये कहा 'तुय वायु हो'। कुछ लोग कहते हैं, 'उपायव स्थ'। तुम निकट हो, परन्तु ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इससे दूसरा [शत्रु] यजमान के पास आ जाता है॥३

गौओं में से एक को बछड़े से अलग करके उसको एक शाखा यह मन्त्र पढ़कर छूता है, 'देवो वः सविता प्रार्पयतु' [यजु० १.१]। सविता देवता तुझको प्रेरणा करे'। सविता देवों का प्रसविता [प्रेरक] है। सविता की प्रेरणासे प्रेरित होकर वे यज्ञ करें—ऐसा विचार कर वह कहता है, 'सविता देव तुझको प्रेरणा करे॥४

श्रेष्ठतम कर्म के लिये; यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। 'यज्ञ ही के लिये' का तात्पर्य 'श्रेष्ठतम कर्म के लिये' कहने से ॥५

'आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागम्' [यजु० १.१]। 'हे अघ्न्याः [अर्थात् गौओं], इन्द्र के भागके लिये फूलो फलो'। जिस प्रकार आदि में देवता के लिये हवि लेकर आदेश देता है उसी प्रकार [इस दूधकी आहुति] को देने में भी देवता का आदेश करता है जब कहता है कि 'हे गौओं, इन्द्र क भाग के लिये फूलो फलो ॥६

'प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्माः' [यजु० १.१]। 'प्रजावाली रोग-रहित और यक्ष्मा रहित'। यह तो स्पष्ट ही है।'मा व स्तेन ईशत माघशंस'

इससे यह तात्पर्य है कि तुमपर कोई दुष्ट राक्षस शासन न करे।

ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः। य० १.१

भाव यह है कि गौएँ इस यजमानसे दूर न जाकर बहुत-सी हों ॥७

विधि ३— अब वह आहवनीय या गार्हपत्य आगार के सामने शाखा को यह कहकर छिपाता है—

यजमानस्य पशून् पाहि ॥ य० १.१

इस प्रकार वह ब्रह्म के ही द्वारा यजमान की रक्षा के लिए पशुओं को देता है ॥८

विधि ४— यह मन्त्रांश पढ़कर उस शाखा में पवित्रा बाँधता है—

वसोः पवित्रमसि। य० १.२

यज्ञ ही वसु है, अतः कहा— तू वसु का पवित्र है ॥९

विधि ५— अब इस रात को यवागू (जौ के दलिया)से अग्निहोत्र करता है। दूध की हवि देवता के लिए आदिष्ट हो चुकी। यदि यह दूध से हवन करे तो अन्य देवता की हवि अन्य के लिए होजाय। अतः यवागूसे इस रात हवन करता है। हवन करते समय उखा(बटलोई या कड़ाही) तय्यार हो जाती है। अब गाय छोड़ने के लिए बोलो—यह कहने पर कहा कि छोड़ दी ॥१०

विधि ६—अब उखा लेकर यह मन्त्र पढ़ कर आग पर रखता है—

द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा असि।
परमेण धाम्ना दृंहस्व मा ह्वाः मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥ (य० १.२)

तू द्यौ है, पृथिवी है, मातरिश्वा की घर्म (पात्र) है, विश्व को धारण करने वाली है। परम धाम के द्वारा दृढ़ हो, मत हिल, तेरा यज्ञपति चंचल न हो— यह कहकर वह उखा की प्रशंसा तथा बड़ाई करता और यज्ञ ही बनाता, तथा प्रवर्ग्य-पात्र के समान रखता और निश्चल कर देता है। यजमान ही यज्ञपति है, अतः उसकी निश्चलता की कामना करता है॥११

विधि ७—अब पवित्रा को पूर्व की ओर रखता है, क्योंकि यह देवों की है, या उत्तर की ओर, क्योंकि यह मनुष्यों की दिशा है। जो यह पवित्र वायु चलती है यह इन लोकों में तिरछी चलती है अतः पवित्रा को उत्तर की ओर रक्खे ॥१२

जिस प्रकार वे सोम-राजा को पवित्रा से शुद्ध करते हैं उसी प्रकार यह दूध को शुद्ध करता है, सोम की पवित्रा उत्तर की ओर होती है अतः इसे भी उत्तर में रक्खे ॥ १३

वह इसे यह मन्त्र पढ़कर रखता है—

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। (य० १.३)

यज्ञ ही वसु है, इसलिये कहा– तू वसुका पवित्रा है। जब कहता है कि तू सौ धारावाला, हजार धारावाला है तो यह उसकी प्रशंसा और बड़ाई करता है।। १४

विधि ८—अब वह तीन गौओं को दुहने तक मौन रखता है। वाणी ही यज्ञ है। इसका आशय है कि वह यज्ञ निर्विघ्न करना चाहता है।।१५

उसको लाकर पवित्रा मे से छानता है तो यह मन्त्र पढ़ता है—

देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा (य. १.३)

देव सविता तुझको यज्ञ के सौ धार वाले और अच्छी तरह पवित्र करने वाले पवित्रा के द्वारा शुद्ध करे। जिस प्रकार सोम-राजा को छानते हैं उसी प्रकार दूध को छानते हैं।।१६

अब पूछता है– कामधुक्षः (यजु॰ १.३)। किसको तूने दुहा ?
वह उत्तर देता है (अमूम्) इसको।
सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधाया (यजु० १.४)
वह सब की आयु है। अब दूसरी (गाय) के विषय में पूछता है — किसको दुहा ? वह उत्तर देता है–इसको। वह विश्व को रचने वाली है।

अब तीसरी (गाय) के विषय में पूछता है —किसको दुहा ? यह उत्तर देता है–इसको। वह संसारको धारण करनेवाली है। यह जो पूछता तो मानो उनमें वीर्य (शक्ति) का संचार करता है। तीनों को दुहता हैं, तीन लोक हैं। इस प्रकार वह इनको लोकों के योग्य बनाता है। अब वह (मौन को तोड़कर) इच्छानुसार बोल सकता है।।१७

विधि ९— अन्तिम (गाय) को दुहकर जिस पात्र में गाय दुहाई थी उसी में एक बूंद जल डाल कर और हिलाकर ले आता है कि इसमें जो कुछ अंश बचा था वह भी इसीमें आ जाय। यह उस रस को पूर्ण करने के लिए करता है। जब वर्षा होती है तो वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं। वनस्पतियों को खाकर और जल को पीकर यह रस बनता है। इसलिए रस की पूर्णता के लिए (जल डालता है)। अब दूध को गाढ़ा करता है।१८

वह निम्न मन्त्रा से गाढ़ा करता है—

इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेनातनच्मि। (यजु॰ १.४)

जैसे पहले देवता के लिए हवि देते हुए कहा था ; इसी प्रकार इस देवता के लिए कहता है कि इन्द्र के तुझ भाग को सोम से गाढ़ा करता व जमाता हूं। वह इसको देवताओं के लिए स्वादिष्ट कर देता है।१९

अब वह उसको ऐसे पात्र से, जो ऊपर से खुला हो और जिसमें पानी हो, ढक देता है, कि ऊपर से दुष्ट कृमि न छू लें। जल वज्र है। इस प्रकार वह वज्र से दुष्ट कृमियों को उससे दूर करता है। इसलिए जलभरे हुए पात्र से उसे ढकता है।।२०

वह मन्त्र पढ़कर ढकता है—

विष्णो हव्यं रक्ष। (य० १.४)

हे विष्णु, हव्य की रक्षा कर। यज्ञ ही विष्णु है। इस प्रकार वह इस हविको रक्षाके लिये यज्ञके हवाले कर देता है। इसलिए कहा– हे, विष्णु हवि की रक्षा कर ॥२१

अध्याय ७ ब्राह्मण २

जो कोई मनुष्य है वह उत्पन्न होते ही देवताओं, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों का ऋणी हो जाता है ॥१.

उसको यज्ञ करना चाहिए। क्योंकि देवों का ऋणी होता है इसलिये ऐसा करता है,कि उनके लिए यज्ञ करता है,उनके लिए आहुति देता है॥२

२- अब उसको [वेद]पढ़ना चाहिए। क्योंकि ऋषियों का ऋणी होता है इसीलिए ऐसा करता है। उसको ऋषियों के कोष का रक्षक (ऋषीणाम् निधिगोप) कहते हैं॥३

३- अब उसको सन्तान की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि पितरों का ऋणी होता है, इसलिए ऐसा करता है। जिससे उनके वंश की परम्परा बराबर जारी रहे॥४

४-अब उसको(अतिथि का)सत्कार करना चाहिए। क्योंकि मनुष्योंका ऋणी होता है, इसलिये ऐसा करता है कि उनको बसाता है, उनको खाना देता है, वह उनके लिए सब कुछ करता है। इससे वह अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है। उसको जब कुछ मिल जाता है, वह विजयी हो जाता है॥४

क्योंकि वह देवताओं का ऋणी होता है इसलिए उनको प्रसन्न करता है, यज्ञ करता है, अग्निमें आहुति देता है, इससे उनको प्रसन्न करता है। इसलिये जो कुछ अग्निमें आहुति दी जाती है उसे अवदान कहते हैं॥६

इस यज्ञ के ४ भाग होते हैं; एक. अनुवाक्या, दो. याज्या, तीसरा वषट

[खड़े होकर आहुति 'वषट्' कहकर दी जाती है—सम्पादक]

चौथा वह देवता जिसके लिए हवि दी जाती है। इस प्रकार अवदान के आधीन देवता या अवदान देवता के आधीन हैं। जो पाँचवां भाग बताते हैं वह व्यर्थ है क्योंकि वह किसके लिये है? ॥७

परन्तु पाँच भाग भी होते हैं। यज्ञ पाँच भाग वाला होता है, ५ भाग वाला पशु, वर्ष की ५ ऋतुएँ। जो विद्वान् पाँच भाग करता है उसके सन्तान और पशु बहुत होते हैं। परन्तु कुरु और पांचालों में चार ही भाग होते हैं। अतः चार भाग ही होते हैं॥८

उनको मात्राके अनुकूल ही करना चाहिए। यदि मात्रासे अधिक करेगा तो यज्ञ को मानुषी कर देगा। यह ऋद्धि-मत्य हो जायगा। इसलिये

मात्रा के अनुकूल ही करना चाहिए ।।६

घी की एक तह नीचे रखकर हवि के दो भागकर उसपर घी डालता है। दो आहुतियाँ होती हैं। एक सोम की दूसरी घी की। जो सोम की आहुति है वह तो है ही। और जो आज्य आहुति है वह हवि है। इसलिए दोनों ओर घी होता है। घी देवों को प्रिय है। इसलिए घी को दोनों ओर लगाते हैं ।।१०

वह (द्यौ) अनुवाक्या है, यह पृथ्वी याज्या है। दोनों स्त्रीलिंग हैं। उनमें से प्रत्येक का जोड़ा वषट्कार है। अब वषट्कार वहीं सूर्य है जो तपता है। जब वह निकलता है तो उसका द्यौ से सम्पर्क होता है जब अस्त होता तो इस (पृथ्वी) से। इसलिए जो कुछ ये दोनों द्यौ-पृथ्वी उत्पन्न करते हैं, सूर्य की सहायता से उत्पन्न करते हैं ।।११

अनुवाक्या को बोलकर और याज्या करके वषट्कार को करता है। पीछे से ही घूम कर नर मादा के पास जाता है। इसलिए उन दोनों को पहले से ही रख कर पुल्लिङ्ग वषट्कार से पीछे से उनको मिलाता है। ईसलिए या तो वषट् के साथ आहुति दे या वषट् के पीछे ।।१२

वषट्कार देवताओं का पात्र है। जैसे भोजन पात्र में निकाल कर देते हैं उसी प्रकार यहाँ भी। यदि वषट् के पहले ही आहुति दे तो वह ऐसा हो जाय जैसे नीचे भूमि पर गिरकर ही जाता है। इसलिए या तो वषट् के साथ आहुति दे या वषट् के पीछे ।। १३

जिस तरह योनिमें वीर्य-सिंचन होता है, उसी तरह यहाँ भी। वषट से पूर्व आहुति योनि से अलग सींचे वीर्य के समान व्यर्थ है। अतः वषट् के साथ या पीछे आहुति दे ।।१४

द्यौ अनुवाक्या और पृथ्वी याज्या है, वह गायत्री यह त्रिष्टुप्; अतः गायत्री-अनुवचन करते हुए वह द्यौ का अनुवचन करता है ।।१५

अथ त्रिष्टुप् से यज्ञ करते हुए वषट् करता है, इन दोनोंको मिला कर संयुक्त करता है जिस से वे सहभोजीहोते और तब ये सब प्रजाएँ भोजन पाती हैं ।।१६

अनुवाक्या को रुक-रुक कर बोले, यह बृहत्-साम है, और इसक रूप बृहती का है। याज्या को जल्दी जल्दी बोले, यह रथन्तर-रूपा है, अनुवाक्या से बुलाता है, जिसमें हुवे-हवामहे-आगच्छ-इदं बर्हिः सीद —ये शब्द अधिक आते हैं, और याज्या से देता है, जिसमें वीहि है हविः-जुषस्वहविः-आ वृषायस्व-अद्धि -पिब-प्र। इसी से वह प्र (दूर) को देता है ।। १७

जिस के चिह्न सन्मुख हों, वह अनुवाक्या, जैसे द्यौ, इसके चिह्न नीचे की ओर है जैसे चन्द्र-नक्षत्र-सूर्य ।। १८

शतपथ ब्राह्मण

अध्याय ७ ब्राह्मण २

याज्या को उपरिष्टाल्लक्षण (ऊपर लक्षण वाला) होना चाहिए। याज्या यही (पृथ्वी) है और इसके ऊपर के लक्षण हैं-ओषधि, वनस्पति जल, अग्नि और यह प्रजा ॥१९

वही अनुवाक्या श्रेष्ठ होती है जिसके पहले पद में देवता का नाम आता है। याज्या वही श्रेष्ठ होती है जिसके अन्तिम पद में देवता के लिये वषट् किया जाता है। देवता ऋक् ही वीर्य है मानों दोनों ओर से बल से पकड़ कर हवि को उस देवता के अर्पण करता है जिसके लिये वह हवि होती है ॥२०

अब कहता है वौ। वाणी ही वषट्कार है। वाणी ही वीर्य है। इस प्रकार वह वीर्य-सिंचन करता है। फिर कहता है षट्, क्योंकि छः ऋतुयें होती हैं। इस प्रकार वह ऋतुओं में ही वीर्य-सिंचन करता है। ऋतुओं से सींचा हुआ यह वीर्य इन प्रजाओं को उत्पन्न करता है, इसलिए वषट् करता है ॥२१

अब प्रजापति की दोनों सन्तान देव और असुर अपने पिता के दायभाग अर्थात् अर्द्धमासों [पक्षों] को प्राप्त हुए, जो बढ़ता है उसको देव और जो घटता है उसको असुर ॥२२

देवों ने चाहा कि किसी प्रकार उस भाग को ले लें जिसको असुर लिये हुए हैं। वह पूजा और परिश्रम करते रहे। उन्होंने इन हविर्यज्ञ अर्थात् दर्शपूर्णमास यज्ञ को देखा और उनको किया, और इनको करके उन्होंने उस— एक को ले लिया— ॥२३

जो असुरों का था। जब वे दोनों चलते हैं तो महीना होता है। महीने से वर्ष होता है। संवत्सर का अर्थ है 'सब'। इसलिए इस प्रकार देवों ने असुरों का सब लेकर मानों अपने शत्रु असुरों का सर्वस्व ले लिया। इस प्रकार वह भी जो इस रहस्य को समझता है अपने शत्रुओं का सब कुछ ले लेता है, अपने शत्रुओं को सब से वंचित कर देता है ॥२४

जो देवों का अर्द्धमास था उसे यवा कहते हैं क्योंकि देव उससे युक्त थे। जो असुरों का था उसे अयवा कहते हैं क्योंकि असुर उससे युक्त न रह सके ॥२५

परन्तु अन्यथा भी कहते हैं— जो देवों का था उसे 'अयवा' कहते हैं क्योंकि असुर उसको न ले सके और जो असुरों का था उसे 'यवा' कहते हैं क्योंकि देवों ने उसे ले लिया। दिन को 'सब्द' कहते

हैं, रात्रि को सगरा, महीनों को यव्य तथा वर्ष को सुमेक। स्वेक ही सुमेक है। यवा तथा जिसको अयवा, यवा भी कहते हैं, इनसे ही होता सम्बन्धित होता है अत: उसको याविहोत्र कहते हैं ॥२६

इति ब्राह्मणम् ५ [७.२] प्रपाठक ५, कण्डिका १२१ समाप्त।

अध्याय ७ ब्राह्मण ३

यज्ञ से ही देवों ने द्यौलोक को प्राप्त किया। जो देव पशुओं का अधिष्ठाता था वह यहीं रह गया। इसलिए उसको वास्तव्य कहा। क्योंकि वह यहां वास्तु अर्थात् वेदि में रह गया ॥१

जिस यज्ञ के द्वारा देव द्यौलोक को चढ़े थे उसी यज्ञ से वे पूजा और परिश्रम करते रहे। अब जो पशुओं का अधिष्ठाता देव था और जो यहीं रह गया था— ॥२

उसने देखा, अरे! मैं यहाँ रह गया, वे मुझे यज्ञ से निकाले दे रहे हैं। वह उनके पीछे-पीछे चढ़ा और अपने [शस्त्र को] उठा कर उत्तरकी ओर ले चला। यह स्विष्टकृत् आहुति का समय था ॥३

वे देव बोले, [शस्त्र] मत मार। उसने कहा– मुझे यज्ञ से वहिष्कृत न करो। मेरे लिए आहुति दो, देवों ने कहा– अच्छा। उसने शस्त्र हटा लिया, न मारा न किसी को सताया ॥४

देव बोले, जितनी हवियाँ हमारे लिए ली गई वे सब दी जा चुकीं अब सोचो जिससे इसके लिए एक आहुति दे सकें ॥५

विधि ९०– स्विष्टकृत् आहुति—उन्होंने अध्वर्यु से कहा– पूर्वकी भांति हवियों के ऊपर घी छोड़ो। एक अवदान (भाग) के लिए फिर पूरा करो और फिर एक-एक भाग अलग-अलग कर दो ॥६

अध्वर्यु ने पूर्व के समान हवियों पर घी छोड़ा, एक भाग के लिए फिर पूरा किया और तैयार करके एक एक भाग को अलग किया। इसलिये उस रुद्र को 'वास्तव्य' कहा। क्योंकि यज्ञ में दी हुई आहुतियों की हवि में से जो कुछ बच रहता है उसको 'वास्तु' कहते हैं। इसलिए जिस किसी देवता के लिए हवि दी जाती है सब जगह स्विष्टकृत् (अग्नि) को पीछे से आहुति देते हैं क्योंकि सर्वत्र ही देवों ने अग्नि को पीछे से भाग दिया ॥७

वह अग्नि के लिए ही दी जाती है। अग्नि ही वह देव है। उसके ये नाम हैं— पूर्व के लोग 'शर्व' और वाहीक लोग 'भव' कहते हैं। पशुओं का पति, रुद्र, अग्नि। उसके अन्य नाम अशान्त हैं। केवल एक अग्नि ही नाम शान्त है। इसलिए यह आहुति अग्नि (स्विष्टकृत्) के लिये दी जाती है ॥८

उन्होंने कहा— जो आहुति हमने तुझ दूर ठहरे हुए को दी उसे तू हमारे लिये स्विष्ट बना दे। उसने उनके लिये उस आहुति को शुभ कर दिया। इसलिए उसका नाम स्विष्टकृत् हुआ ॥६

वह (होता) अनुवाक्या को बोलकर देखता है कि किसने अग्नि स्विष्टकृत् को लिया—

अयाड् अग्निः अग्नेः प्रिया धामानि, अयाट् सोमस्य प्रिया धामानि। अयाड् अग्नेः प्रिया धामानि ॥ [यजुर्वेद २१.४७]

'अग्नि अग्नि के प्रियधामों को दे'— इससे अग्नि के आज्य भाग का तात्पर्य है। 'सोम के प्रिय धामों को दे'— इससे सोम आज्य का तात्पर्य है। 'अग्नि के प्रिय धामों को दे'— इससे जो अग्नि का पुरोडाश है उससे तात्पर्य है ॥१०

अयाड् देवानामाज्यानां प्रियाधामानि। यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि।

अब देवताओं के लिए। 'वह आज्य पीनेवाले देवों के लिए प्रिय धामों को देवे'। इससे प्रयाज और अनुयाज से तात्पर्य है। क्योंकि प्रयाज और अनुयाज ही आज्य पान करनेवाले देव हैं। 'वह होता अग्नि के प्रिय धामों का यज्ञ करें'। यहाँ अग्नि का होता के रूप में तात्पर्य है। क्योंकि जब देवों ने उसके लिए अलग आहुति विचार ली, उन्होंने उसको इसके द्वारा शान्त किया, और उसको उसके प्रियधाम (पदार्थ) के लिए बुलाया। इसी प्रयोजन से वह इस प्रकार सोचता है ॥११

कुछ लोग अयाट्कार से पहले देवताओं का नाम लेते हैं जैसे—अग्नेः अयाट्। सोमस्य अयाट्। परन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि जो अयाट् से पहले देवता का नाम लेते हैं वह यज्ञ का क्रम बिगाड़ देते हैं। क्योंकि अयाट् पहले कहकर ही यज्ञ में जो पहले कहना चाहिए वह कहा जाता है, इसलिये पहले अयाट् ही कहना चाहिए ॥१२

अब होता अग्नि को सम्बोधन करके कहता है—यजत् स्वं महिमानम्। 'अपनी महिमा के लिए यज्ञ करे'। जहाँ इस प्रकार अग्निके द्वारा देवताओं का आवाहन करता है वह भी निज महिमा का आवाहन करता है। इस से पहले उसकी निज महिमा के लिये कुछ नहीं किया गया। इस प्रकार उसको प्रसन्न करता है। इस तरह उसके कार्य अमोघ होते हैं और वह उनके लिये सावधान रहता है। इसलिये कहा कि अपनी महिमा के लिये यज्ञ करे ॥१३

अब कहता है— आ यजतामेज्या इषः। 'यज्ञ के योग्य अन्न का यज्ञ किया जाय'। इष (अन्न) का अर्थ यहाँ पूजा से है। इस तरह पूजाओं को यज्ञ करने के प्रति उत्साही बनाता है। यह पूजा के लोग यज्ञ, पूजा तथा श्रम करते रहते हैं ॥१४

अब कहता है— सो अध्वरा जातवेदा जुषतां हविः।

'हानि न पहुँचाने वाले तथा उत्पन्न हुए सब पदार्थों को जानने वाले (देव) पवित्र हवि ले लें' इस तरह वह यज्ञ की समृद्धि को चाहता है। क्योंकि यदि देवों ने हवि ले ली तो मानों उसकी बड़ी सफलता हो गई। इसलिए कहता कि हवि को ले लें। १५ [य० २१.४७]

यहाँ याज्या और अनुवाक्यां बहुत कुछ एक सी हो जाती हैं। स्विष्टकृत् तृतीय सवन (सायंकाल.का यज्ञ) है। तृतीय सवन विश्वेदेवों का होता है। 'पिप्रीहि देवां उशतो यविष्ठ'। 'हे सब से युवा! तुम इच्छुक देवों को प्रसन्न करो'— यह अनुवाक्या का अंश विश्वेदेवों के लिए है। 'अग्ने यदद्य विशोऽअध्वरस्य होतः। हे यज्ञ के होता अग्नि, जो तुम आज लोगों के पास (आओ)— याज्या का यह भाग विश्वेदेवों के लिए है।

क्योंकि इन दोनों का ऐसा रूप है इसलिए यह तृतीय सवन का रूप है। इसीलिए इस स्थान पर याज्या और अनुवाक्या बहुत कुछ एक सी हो जाती हैं। १६[तै०सं० ४.३.१३]

ये दोनों त्रिष्टुप् होते हैं। यज्ञमें जो स्विष्टकृत् है वह वास्तु के समान है। वास्तु वीर्यहीन अर्थात् निर्बल होती है। त्रिष्टुप् वीर्यवान् है। इस प्रकार स्विष्टकृत्में वीर्य धारण कराता है। इसीसे ये दोनों त्रिष्टुप् हैं। १७

या वे दोनों अनुष्टुप् होते हैं। अनुष्टुप् वास्तु है, स्विष्टकृत् वास्तु है। इस प्रकार वास्तु में वास्तु रखता है। उसका घर फूलता-फलता है, उसकी सन्तान और पशु फूलते-फलते हैं, जो इस रहस्य को समझता है और जिसकी अनुवाक्या तथा याज्या अनुष्टुप् में होती हैं।१८

माल्लवेय ने अनुवाक्या को अनुष्टुप् में किया और याज्या को त्रिष्टुप् में जिससे दोनों का फल मिल जाय। वह रथ से गिर गया और बाहु टूट गये। उसने सोचा–कोई काम मुझसे ऐसा हुआ है जिसके कारण यह गति हुई। इस पर उसने समझा कि मैंने यज्ञ के क्रम को उल्टा कर दिया। इसलिये यज्ञ के क्रम को उल्टा नहीं करना चाहिए। दोनों एक ही छन्द में होना चाहिए चाहे अनुष्टुप् में या त्रिष्टुप् में। १९

यह स्विष्टकृत् के लिए हवि को उत्तरी भाग से काटता है, और उत्तरी भाग में आहुति देता है। इस देव की यही दिशा है। इसीलिए उत्तरी भाग में से काटता है तथा उत्तरी भाग में आहुति देता है। इसीदिशा में वह उत्पन्न हुआ तथा इसी दिशामें वह शान्त किया गया इसीलिए उत्तरी दिशा से काट कर उत्तरी भाग में आहुति देता है। २०

वह इन आहुतियों को इसी ओर सामने ही देता है। अन्य आहुतियों के पश्चात् ही पशु होते हैं। स्विष्टकृत् रुद्र की शक्ति (रुद्रियः) है। यदि वह इसे अन्य आहुतियों से मिला दे तो मानो वह पशु पर रुद्र शक्ति लाये।

और उसके घर तथा पशु नष्ट हो जायें। इसलिए स्विष्टकृत् को अन्य आहुतियों के इधर ही देता है।२१

यह वही यज्ञ था जिससे देव द्यौलोक को चढ़ गए, अर्थात् यह आहवनीय अग्नि, तथा जो पीछे यहाँ रह गई वह गार्हपत्य अग्नि है। इसलिये वे इसको गार्हपत्य अग्निसे लेते हैं जिससे वह उसके पूर्वकी ओर रहे।२२

उस आहवनीयको गार्हपत्य से ८ पगकी दूरीपर रक्खे। ८ अक्षर की गायत्री होती है। इसप्रकार वह गायत्रीद्वारा द्यो लोकको चढ़ता है।२३

या वह ११ पगपर रक्खे। ११ अक्षरका त्रिष्टुप् होता है। इसप्रकार वह त्रिष्टुप् के द्वारा द्यौ लोक को चढ़ता है॥२४

या १२ पगोंकी दूरी पर रक्खे। १२ अक्षर की जगती होती है, जगती के द्वारा ही द्यौ लोक को चढ़ता है। यहाँ कोई मात्रा निश्चित नहीं है। जहाँ मन चाहे वहीं रख दे, थोड़ा ही पूर्व की ओर भी रक्खे तो उससे भी द्यौ लोक को चढ सकता है॥२५

कुछ लोग कहते हैं कि आहवनीय पर ही हवियों को पकावें, क्योंकि इसी से देव द्यौ लोक को चढ़े थे, और इसी से वे पूजा एवं श्रम करते रहे। उसी में हम हवियों को पकावें, उसी में यज्ञ करें. यदि गार्हपत्य पर पकावेंगे तो यह अनुचित होगा, यह आहवनीय यज्ञ है। इस प्रकार यज्ञ में यज्ञ को करते हैं॥२६

परन्तु गार्हपत्य पर भी पकाते हैं(उनकी युक्ति यह है कि)– यह तो आहवनीय है, यह इस कामकेलिए तो है नहीं कि उसपर बिना पकायाहुआ पकाया जाय। यह तो इसलिए हैं कि उसपर पकाए हुए की आहुति हो दी जाय. इसलिए(हमारी सम्मतिमें) जहाँ इच्छा हो वहाँ पकावे॥२७

यज्ञ ने कहा– मुझे नंगेपन से डर लगता है। (उससे पूछा गया कि) तेरे लिए अ-नंगापन क्या है? उसने उत्तर दिया— मेरे चारों ओर कुशा दो। इसलिए यज्ञ के चारों ओर कुशा बिछाते हैं। यज्ञ ने कहा—मुझे प्यास से डर लगता है; उन्होंने पूछा— तेरी तृप्ति कैसे होती है? उसने उत्तर दिया— ब्राह्मण की तृप्ति से मेरी तृप्ति होती है। इसलिए यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् ब्राह्मण की तृप्ति करने के लिए बोलना चाहिए, क्योंकि इससे यज्ञ की तृप्ति होती है॥२८

शतपथ ब्राह्मण अ. ७ ब्राह्मण ४

प्रजापति (यज्ञ, सूर्य) के हृदय में अपनी पुत्री के प्रति ध्यान उत्पन्न हुआ कि मैं इसके साथ सम्बन्ध करूँ। वह पुत्री चाहे द्यौ समझ लो या उषा। अतः उसने उसके साथ सम्बन्ध किया॥१

यह देवों की दृष्टि में बड़ा अपराध हुआ, वे बोले कि—देखो, यह हमारी बहन और अपनी पुत्री से इस प्रकार व्यवहार करता है॥२

वे देव इस देव से जो पशुओं का स्वामी है बोले कि–यह(प्रजापति) बड़ा अत्याचार करता है कि जो अपनी पुत्री और हमारी बहिन के साथ इस तरह व्यवहार करता है, इस पर प्रहार कर। तब रुद्र ने आक्रमण करके प्रहार किया। इससे उसका वीर्य अधूरे में बाहर हो गया। अत: यह बात इस प्रकार हुई ॥३

इसकी व्याख्या (नाभानेदिष्ठ मानव नामक) ऋषि ने (ऋग्वेद मण्डल दशम, अग्निमारुत सूक्त ६१ मन्त्र ७) में की है—

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन् क्ष्मया रेत: सञ्जग्मानो निषिञ्चत्।

जब पिता (सूर्य) पृथ्वी से संगत होकर वीर्य-आधान करता है तो वह अपनी पुत्री उषा को ही पुत्रवत् प्राप्त करता है।

यह अग्नि-मारुत उक्थ (गीत) हो गया। इसी सम्बन्ध में आख्यायिका है कि किस प्रकार देवों ने इस वीर्य को उपयोगी बनाया। जब देवों का क्रोध कम हुआ तो उन्होंने प्रजापति की चिकित्सा की। और उस(रुद्र) का शल्य निकाला, क्योंकि यज्ञ ही प्रजापति है ॥४

उन्होंने कहा– कोई ऐसा उपाय सचना चाहिए कि यह(यज्ञ)नष्ट न हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो यह आहुतिके लिए हीनताकी बात है।५

वे बोले— दक्षिण की ओर बैठे हुए भग के पास ले जाओ। भग इसको खा लेगा, तब आहुति दिये हुए के समान हो जायगा। बस वे उसको दक्षिण की ओर बैठे हुए भग के पास ले गये। भग ने उसकी ओर देखा तो उसने भग की आँखें जला दीं। ऐसा ही हुआ। इसीलिए कहते हैं कि भग अन्धा है ॥६

वे बोले— यह अभी शान्त नहीं हुआ, इसको पूषा के पास ले जायँगे। वह पूषा के पास ले गये। पूषा ने उसे चक्खा। उसने पूषा का दाँत तोड़ दिया। यह ऐसा ही हुआ। इसीलिए कहते हैं कि पूषा बिना दाँत वाला है। इसलिए पूषा के लिए जो चरु बनाते हैं वह पिसे हुए अन्न का बनाते हैं जैसे बिना दाँतोंवाले के लिए बनाया जाता है।७

वे बोले— वह अभी शान्त नहीं हुआ। बृहस्पति के पास इसे ले जाओ। वह बृहस्पति के पास ले गये। बृहस्पति ने सविता के पास प्रसव(प्रेरणा)के लिए भेज दिया। सविता ही देवों का प्रेरक(प्रसविता) है। उसने कहा— इसकी मुझे प्रेरणा करो। प्रेरक सविता ने उसकी उसके लिए प्रेरणा की। क्योंकि वह सविता से प्रेरित हुआ था, इसलिए उसने हानि नहीं पहुँचाई। इसलिए अब वह शान्त हो गया। निदान में यह वही है जो प्राशित्र (पहला भाग) है ॥८

विधि संख्या ९१— प्राशित्र [पुरोडाश] का अवदान—

जब प्राशित्र को काटता है तो मानो यज्ञ का वह भाग काटता है जो

बिधा हुआ था वह रुद्र का भाग था। अब वह जलों को छूता है। जल शान्ति है। इस प्रकार जलों द्वारा शान्त करता है। अब इडा को (जो पशु का प्रतिनिधि) है, काटता है। ९

उसको बहुत थोड़ा भाग काटना चाहिए। इससे शल्य निकल आता है। इसलिये थोड़ा सा ही काटना चाहिए। अब एक ओर घी रक्खे, चाहे नीचे, चाहे ऊपर। इस प्रकार जो कठोर है वह नरम हो जाता है और निकलने लगता है। इसलिए एक ओर घी रक्खे चाहे नीचे चाहे ऊपर। १०

घी से चुपड़ कर हवि से दो टुकड़े काट कर ऊपर घी लगाता है। क्योंकि ऐसा करनेसे ही वह यज्ञके अवदानके समान होता है। ११

उसको (आहवनीय अग्नि के) पूर्व में न ले जाय। कुछ लोग पूर्व में ले जाते हैं— क्योंकि पूर्व में पशु यजमान की ओर मुंह करके खड़े होते हैं। किन्तु पूर्व को ले जायगा तो पशुओं में रुद्र की शक्ति दे देगा, और उसके घर वाले पशु नष्ट हो जायेंगे। इसलिए उसको इस तरह मुड़-कर ले जाना चाहिए। इससे पशुओं में रुद्र की शक्ति न देगा और इस (शल्य) को मुड़कर निकाल देगा। १२

उसको वह इस मन्त्र से ग्रहण करता है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो
हस्ताभ्याम् प्रतिगृह्णामि। [यजु॰ २-११]

तुझको सविता देव के उत्पन्न किये संसारमें अश्विओंकी भुजाओंसे, पूषा के हाथों से ग्रहण करता हूं।१३

अब जैसे बृहस्पति पहिले प्रेरणा के लिए सविता के पास गया, क्योंकि देवताओं का प्रेरक सविता है, और उससे कहा— प्रेरणा कर, उसने प्रेरणा की और सविता से प्रेरित होकर उसने हानि नहीं पहुंचाई। इसी तरह अध्वर्यु भी सविता के पास प्रेरणा के लिये जाता है; और कहता है— मुझे प्रेरणा कर। क्योंकि सविता देवों का प्रेरक है वह उसको प्रेरणा करता है और प्रेरित होकर वह उसको हानि नहीं पहुँचाता। १४

विधि ६२— उस प्राशित्र को यह मन्त्र पढ़कर खाता है—

अग्नेष्ट्वाऽऽस्येन प्राश्नामि। [य॰ २-११]

मैं तुझे अग्नि के मुंह से खाता हूं।

अग्नि को कोई हानि नहीं पहुँचाता। इसी भाँति इस अध्वर्यु को भी कोई हानि नहीं पहुँचाता। १५

इसको दांतों से न चबाये। कहीं यह रुद्र का भाग तेरे दाँतों को हानि न पहुँचाये। अतः वह इसको दाँतों से न चबाये। १६

अब जल से आचमन करता है। जल शान्ति है, अतः पात्रों को धोकर जल रूपी शान्ति से शान्त करता है। १७

विधि ६३—वे उसके पास ब्रह्मा के भाग को लाते हैं। वस्तुतः ब्रह्मा यज्ञ के दक्षिण भाग में संरक्षक होकर बैठता है। वह इस भाग को जानता हुआ बैठता है। जो प्राशित्र था वे उसके पास ले आये और उसने खा लिया। अब जो ब्रह्मा का भाग है वह उसके पास लाते हैं वह अपने भागके रूपमें लेता है। अब यज्ञका जो भाग अधूरा रहता है वह उसकी रक्षा करता है,अतः वह उसके लिए ब्रह्मा का भाग लाते हैं।१८

अब वह (ब्रह्मा) चुपचाप रहे जब तक (अध्वर्यु) न कहे कि— हे ब्रह्मन्! मैं आगे चलूं? जो (ऋत्विज्) यज्ञ के बीच में पाकयज्ञिया इडा करते हैं वे यज्ञ को नष्ट कर देते हैं। ब्रह्मा ही ऋत्विजों में समाधान करनेवाला है। अतः वह समाधान कर देता है। परन्तु यदि वह बात करता रहे तो समाधान न कर पायेगा। अतः वह चुप रहे। १९

यदि वह पहले मानुषी भाषा को बोल दे तो विष्णु-सम्बन्धी ऋग्वेद की ऋचा या यजुः जपना चाहिए। यज्ञ ही विष्णु है। इस प्रकार वह यज्ञ को फिर आरम्भ करता है। (बात करनेका)यह प्रायश्चित्त है। २०

विधि १४— जब (अध्वर्यु) कहे— ब्रह्मन् प्रस्थास्यामि।

हे ब्रह्मा! मैं आगे (अनुयाज के लिए) बढ़ूँ। तब ब्रह्मा कहे—

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुः बृहस्पतये ब्रह्मणे।
तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिन्तेन मामव ॥ (य० २.१२)

(हे देव सविता! इन्होंने तेरे इस यज्ञ की घोषणा की)।

वह सविता के पास प्रेरणा के लिए जाता है, क्योंकि वह देवों का प्रेरक है। इसीलिए कहता है—'बृहस्पति ब्रह्मा के लिये'। बृहस्पति ही देवोंका ब्रह्मा है। इसलिए वह इस यज्ञकी उसके लिये घोषणा करता है, जो देवों का ब्रह्मा है। इसलिए कहा— 'बृहस्पति ब्रह्मा के लिए' अब कहता है— उससे यज्ञ की, यज्ञपति की और मेरी रक्षा कर। यहाँ कुछ छिपा हुआ गूढ़ नहीं है। २१

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्ताम् ओ३म् प्रतिष्ठ ॥ [य० २.१३]

'मनका वाहन प्रेमकी धारामें प्रसन्नहो'। मनसे ही सब व्याप्त है। अतः मनसे ही इस सबको प्राप्त होता है। 'बृहस्पति इस यज्ञ को करे। वह इस यज्ञ को पूर्ण विघ्नरहित करे'। इस प्रकार वह अनुचित को ठीक कर देता है। 'सब देव यहाँ प्रसन्न हों'। सबसे ही वह इसे ठीक करता है। यदि वह चाहे तो 'ओं प्रतिष्ठ' कहे न चाहे तो न कहे ॥२२

इति ब्राह्मणम् ॥२॥ [७.४] अध्याय ७ समाप्त।

शतपथब्राह्मण अ. ८ ब्राह्मण १

❀ मनु का आख्यान ❀

मनुके लिए प्रातःकाल धोने के लिए पानी लाये जैसे हाथ धोनेके लिए लाया करते हैं। जब वह धो रहा था तो उसके हाथमें मछली आ गई ॥१

वह उससे बोली– मुझे पाल ! मैं तेरी रक्षा करूँगी। उसने पूछा— तू मेरी किससे रक्षा करेगी ? उसने उत्तर दिया,तूफानमें यह सब प्रजा बह जायेगी। मैं उससे तेरी रक्षा करूंगी। मनुने पूछा मैं तुझे कैसे पालूं ॥२

वह बोली– जब तक मैं छोटी हूं हमारे ऊपर बड़ी आपत्ति है, क्योंकि मछली को मछली खाती है। मुझे पहले घड़े में पाल । जब मैं उसमें बढ़ जाऊँ तो गड्ढ़े को खोद कर मुझे उसमें रखना। जब मैं उसमें भी बढ जाऊँ तो मुझे समुद्र में ले जाना। तब मैं बड़ी हो जाऊंगी और मुझे कोई आपत्ति न रहेगी ॥३

वह तुरन्त झष मछली हो गई, क्योंकि झष (सब मछलियों से अधिक) बढ़ती है। अब उसने कहा– अमुक वर्ष में तूफान आयेगा, तब तू मेरे कहने के अनुसार नाव बनाना और जब तूफान उठे तो तू नाव में बैठ जाना, मैं तुझे उससे बचाऊँगी ॥४

जब वह उसको इस भांति पाल चुका तो उसे समुद्र में ले गया, और जिस वर्ष के लिए उसने कहा था उसी वर्ष उसके कहने के अनुसार नाव बनाई, और जब तूफान उठा तो वह नाव में बैठ गया, तब मछली उस तक तैर आई, और उसके सींग से उसने नाव की रस्सी को बाँध दिया। इससे वह उत्तरी पहाड़ तक जल्दी से पहुंच गया ॥५

उसने कहा– मैंने तुझे बचा लिया, वृक्ष में नाव बाँध दे, परन्तु जब तू पहाड़ पर है उस समय ऐसा न होने देना कि जल तुझे काट दे। जब जल कम हो जाय तो नीचे उतर आना। वह धीरे-धीरे उतरा। इसलिए उत्तरी पहाड़ के उस भाग को मनोरवसर्प्पणम अर्थात् मनु का उतार कहते हैं। तूफान ने उस सब प्रजा को नष्ट कर दिया केवल मनु ही बच रहा ॥६

उसने सन्तान की इच्छा से पूजा और श्रम किया। उस समय पाकयज्ञ भी किया। और घी, दही, मट्ठा भी जलों में चढ़ाया। तब एक वर्ष में एक स्त्री उत्पन्न हुई। वह मोटी सी होकर निकली। उसके पैर में घी था। मित्र और वरुण उससे मिले ॥७

उन्होंने उससे पूछा– तू कौन है ? उसने कहा– मनु की पुत्री। उन्होंने कहा– कह कि तू हम दोनों की है। उसने कहा– नहीं, मैं

उसी की हूं जिसने मुझे उत्पन्न किया है। उन्होंने उससे भाग माँगा। उसने माना या न माना। वह वहाँ से मनु के पास चली आयी ॥८

मनुने उससे पूछा, कौन है? वह बोली तेरी पुत्री। उसने पूछा, भगवति तू मेरी पुत्री कैसे? उसने उत्तर दिया, तूने जलोंमें घी, दही, मट्ठा अर्पण किया, उसी से तूने मुझे उत्पन्न किया। मैं आशी हूं। तू मेरा प्रयोग कर। यदि तू यज्ञ में मेरा प्रयोग करेगा तो बहुत सी सन्तानों और पशुओं वाला होगा। जो कुछ वस्तु तू मेरे द्वारा माँगेगा वह सब तुझको मिलेगी। अब उसने उसका यज्ञके मध्यभाग में प्रयोग किया। क्योंकि अनुयाज के बीचमें जो कुछ है वही यज्ञ का मध्यभाग है ॥९

वह प्रजाकी कामना से उसी के द्वारा पूजा और श्रम करता रहा। उसके द्वारा इस प्रजा को उत्पन्न किया। जो यह मनु की सन्तान है। जो वस्तु उसने उसके द्वारा माँगी वह सब उसको मिल गई ॥१०

निदान में यही इडा है। जो कोई इस रहस्य को समझकर इडा का प्रयोग करता है वह इस प्रजा को, जिसे मनु ने उत्पन्न किया, बढ़ाता है। और जो कुछ उसके द्वारा माँगता है वही उसे मिल जाता है ॥११

❁ विधि ९५– इडा (अन्न तथा पुरोडाश) का अवदान और प्राशन ❁

इस इडा के ५ भाग होते हैं। पशु ही इडा है। पशुओं के भी ५ भाग होते हैं। इसलिए इडा के ५ भाग होते हैं ॥१२

इडा के बराबर बराबर टुकड़े करके और पुरोडाश के पूर्वार्ध को काट कर वह ध्रुवा [स्रुक] के सामने रखता है और उसे होता को देकर दक्षिण की ओर आता है ॥१३

वह होता के इस जगह (पहली अँगुली के बीच में) घी लगाता है। होता उस घी को यह मन्त्र पढ़कर अपने होठों से लगाता है—

मनसस्पतिना ते हुतस्याश्नामीषे प्राणाय।

[मन के पति द्वारा आहुति दियेगये तुझे इष (अन्न–ज्ञान) और प्राण के लिए खाता हूं ॥१४

अब वह होता के इस जगह (अँगुली पर) घी लगाता है। होता उसे अपने होठों से यह मन्त्र पढ़कर लगाता है—

वाचस्पतिना ते हुतस्याऽश्नाम्यूर्ज्जेऽउदानाय। [तै० सं० २.६.८]

[वाणी के पति द्वारा आहुति दिये गये तुझको बल और उदान के लिये खाता हूं ॥१५

इस पर मनु डरा। यह जो पाक-यज्ञिया इडा है, वह मेरे यज्ञ का सबसे कमजोर भाग है। कहीं ऐसा न हो कि राक्षस (डाकू और कृमि) मेरे यज्ञ को इस स्थान पर विध्वंस कर दें अतः (इडा को) राक्षसों के आने से पहले ही वह (होठों से लगाकर) सुरक्षित कर देता

है। इसी प्रकार होता भी राक्षसों के आने से पहले ही सुरक्षित कर देता है। यद्यपि वह खाना नहीं कि बिना आहुति दिए कैसे खा लूं, परन्तु वह होठों से लगाकर सुरक्षित कर देता है ॥१६

अब होता के हाथ में इडा के टुकड़े-टुकड़े करता है। इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े की गई इडा को वह प्रत्यक्ष रूप से होता के आश्रित कर देता है। उसके आश्रित हुई इडा से वह यजमान के लिए आशीर्वाद चाहता है अतः वह होता के हाथ में रखता है ॥१७

अब (इडा को) चुपके-चुपके बुलाता है। उस समय सचमुच मनु यह सोचकर डरा कि यह पाक-यज्ञिया इडा मेरे यज्ञ का सबसे कमजोर भाग है; कहीं राक्षस इसको हानि न पहुंचायें। अतः वह चुपके-चुपके कहता है— राक्षसों से पहले, राक्षसों से पहले। इसी प्रकार यह होता भी चुपके-चुपके कहता है—राक्षसों से पहले, राक्षसों से पहले ॥१८

वह इस प्रकार धीरे से कहता है—

(ये और आगे के वाक्य तै० ब्रा० ३.५.१३ के हैं —सम्पादक)

उपहूतं रथन्तरं सह पृथिव्योप मां रथन्तरं सह पृथिव्या ह्वयतामुपहूतं वामदेव्यं सहान्तरिक्षेणोप मां वामदेव्यं सहान्तरिक्षेण ह्वयतामुपहूतं बृहत्सह दिवोप मां बृहत्सह दिवा ह्वयताम् ।

[पृथ्वी के साथ रथन्तर बुलाया गया, पृथ्वी के साथ रथन्तर मुझे बुलाये। अन्तरिक्ष के साथ वामदेव्य बुलाया गया, अन्तरिक्ष के साथ वामदेव्य मुझे बुलाये। द्यौ के साथ बृहत् बुलाया गया, द्यौ के साथ बृहत् मुझे बुलाये। वह इस प्रकार बोलकर तीनों लोकों और तीनों सामों को बुलाता है ॥१९

अब कहता है— उपहूता गावः सहर्षभा।

[गायें बैल के साथ बुलाई गयीं]; पशु ही इडा हैं। उन्हीं को परोक्ष रीति से बुलाता है। बैल के साथसे तात्पर्य उसके जोड़े से है।२०

अब कहता है— उपहूता सप्तहोत्रा।

[सात होताओं से की गई इडा बुलाई गई। इस प्रकार वह सात होताओं द्वारा किये गये सोमयज्ञ के नाम से उसे बुलाता है।२१

अब कहता है— उपहूतेडा ततुरिः।

[विजय पाने वाली ततुरि इडा बुलाई गई]। इस प्रकार उसको प्रत्यक्ष रूप से बुलाता है। यह सब पापोंसे पार कर देती है। इसलिए इसको ततुरिः कहा गया॥ २२

अब कहता है — उपहूतः सखा भक्षः उपहूतं हेक्।

[भक्ष-मित्र बुलाया गया]। प्राण ही सखा भक्ष है। इससे प्राण को बुलाता है। 'हेक् बुलाया गया'। इससे वह शरीर को बुलाता है इस

प्रकार वह सब को बुलाता है ॥२३

अब वह जोर से कहता है—

इडा उपहूता, उपहूता इडा, उपऽस्मांईडा ह्वयताम्, इडा उपहूता।

[इडा बुलाई गई। बुलाई गई इडा हमको अपनी ओर बुलाये]। इडा 'यहाँ बुलाई गई से तात्पर्य यह है कि जो पहले वास्तविक रूप में बुलाई जाचुकी है उसे अब प्रत्यक्ष रूपसे बुलाता है। इडा गौ चार पैर वाली होती है। इसलिए उसको ४ वार बुलाया ॥२४

चार बार बुलाता हुआ कई प्रकार से बुलाता है जिससे दुहराने का दोष न लगे। यदि वह इडा उपहूता, इडा उपहूता ही कई वार कहे या उपहूता इडा, उपहूता इडा ही कई वार कहे तो दुहराने का दोषी हो। इसलिए इडा उपहूता कह कर वह उसे इधर बुलाता है। और उपहूता इडा कहकर वह उसे उधर बुलाता है। इडा हमको बुलाये— यह कर वह अपने को अलग नहीं करता और कहने की शैली भी बदल जाती है। इडा उपहूता कहकर उसे फिर बुलाता है। इस प्रकार वह उसको इधर भी बुलाता है और उधर भी बुलाता है ॥२५

अब कहता है— मानवी घृतपदी।

[मनु की पुत्री, घी के पैरों वाली]। मनु ने ही पहले उसे पैदा किया था। इसीलिए कहा— मानवी। घृतपदी इसलिए कहा कि उसके पदचिह्न में घृत रहता है। अतः घृतपदी नाम हुआ ॥२६

अब कहता है, उत मैत्रावरुणी ब्रह्मा देवकृतोपहूता। दैव्या अध्वर्यव उपहूता मनुष्याः [मित्र औरवरुणवाली]। क्योंकि उसका मित्र और वरुण से मेल हुआ, इसलिए उसकी मैत्रा-वरुण की प्रकृति हुई। वह देवकृत ब्रह्मा हुई क्योंकि वह देवकृत ब्रह्मा कहकर बुलाई गई। दैव्य अध्वर्यु और मनुष्य बुलाये गये, ऐसा कहकर वह दैव्य अध्वर्यु और मनुष्य अध्वर्यु दोनों को बुलाता है। दैव्य अध्वर्यु वत्स या बछड़े हैं। और जो दूसरे हैं वह मनुष्य अध्वर्यु हैं ॥२७

अब कहताहै— ये इमं यज्ञमवान् ये च यज्ञपतिं वर्धान्।

[जो इस यज्ञको बढ़ावें, जो इस यज्ञपति को बढ़ावें]। जिन ब्राह्मणों ने वेदों को पढ़ा और पढ़ाया है वे इस यज्ञ की रक्षा करते हैं, क्योंकि वे इसको फैलाते और करते हैं, अतः इनको इस प्रकार सन्तुष्ट करता है। और बछड़े यज्ञपति को बढ़ाते हैं। क्योंकि जिस यज्ञपति के बछड़े बहुत होंगे वह बढ़ेगा। इसीलिए कहा वे जो इस यज्ञपतिको बढ़ायें ॥२८

अब कहता है— उपहूते द्यावापृथिवी पूर्वजेऽऋतावरी देवी देवपुत्रे।

(बुलाई गई द्यावा-पृथ्वी जो दोनों पूर्वज ऋतावरी देवी, देवपुत्रा अर्थात् देवता पुत्र वाली हैं)। इस प्रकार वह द्यावा पृथिवी को बुलाता

है। जिसमें सब संसार आ जाता है।

अब कहता है— उपहूतोऽयं यजमानः।

[यजमान बुलाया गया]। इससे यजमान को बुलाता है। यहाँ नाम नहीं लेता। इससे परोक्ष रूप से इडा के लिए आशीर्वाद है। यदि नाम ले तो मानुषी-भाषा हो जाय, जो यज्ञ में अशुभ है। यज्ञ में अशुभ नहीं करना चाहिए, अतः नाम नहीं लेता।२९

अब कहता है—उत्तरस्यां देवयज्यायामुपहूतः।

[उसे आगे होने वाली देवपूजा के लिए बुलाया गया]। इस प्रकार उसके लिए परोक्ष रीति से जीविका के लिए आशीर्वाद देता है। जैसे उसने जीवन भर यज्ञ किया है, आगे भी करेगा।३०

वह उसके लिए परोक्ष-रीति से सन्तान का भी आशीर्वाद देता है। क्योंकि जिसके सन्तान होती है, जब वह मर जाता है, तो उसकी सन्तान इस लोक में यज्ञ करती है। इसलिए 'उत्तरा देवयज्या' का अर्थ है सन्तान। ३१

इस प्रकार वह परोक्ष-रीति से पशुओं के लिए भी आशीर्वाद देता है। क्योंकि जिसके पशु हैं वही, जैसे उसने पहले यज्ञ किया, उसी प्रकार फिर भी यज्ञ करेगा। ३२

अब कहता है—भूयसि हविष्करण उपहूतः।

[वह बहुत अधिक हवि देने के लिए बुलाया गया]। इस प्रकार वह उसकी जीविका के लिए परोक्ष-रीति से आशीर्वाद देता है। क्योंकि जैसे उसने पहले यज्ञ किया वैसे ही इस प्रकार जीता रहेगा तो आगे भी और यज्ञ करेगा। ३३

इससे वह परोक्ष-रूपसे सन्तान के लिए आशीर्वाद देता है। क्योंकि जिसके सन्तान होती है वह चाहे अकेला ही हो सन्तान द्वारा दश गुनी हवि देता है। अतः कहा कि बहुत हवि का अर्थ सन्तान देना है।३४

इस प्रकार वह परोक्ष-रीति से पशुओं के लिए भी आशीर्वाद देता है। जिसके पशु होते हैं वह पहले जैसे यज्ञ करता था फिर भी अधिक यज्ञ करता है। ३५

लोक में आशीर्वाद यह है—जीवेयं, प्रजा मे स्यात्, श्रियं गच्छेयम्।

[मैं जियूँ, मेरी प्रजा हो, मेरी सम्पत्ति हो]। पशुओं के लिये आशीर्वाद से तात्पर्य है सम्पत्ति से, क्योंकि पशु ही सम्पति है। इन ३ आशीर्वादोंमें सब आ गया अतः यहाँ ३ आशीर्वाद कियेजाते हैं।३६

अब कहता है— देवा मे इदं हविर्जुषन्तामिति तस्मिन्नुपहूतः।

[देव मेरी इस हवि को स्वीकार करें]। इसी यज्ञ में बुलाया। यह जो देव हवि को स्वीकार करते हैं, मानो यज्ञ की समृद्धि के लिए

ही आशीर्वाद देते हैं। इससे बड़ी जय होती है। इसलिए कहा—देव मेरी हवि को स्वीकार करें। ३७

उस (इडा) को खाते ही हैं, अग्नि में नहीं छोड़ते। इडा का अर्थ है पशु। अतः अग्नि में नहीं छोड़ते कि कहीं पशुओं को अग्नि में न छोड़ दें। ३८

प्राणों में ही आहुति दी जाती है, कुछ होता में, कुछ यजमान में, कुछ अध्वर्यु में। अब पुरोडाश का पूर्वार्द्ध काट कर ध्रुवा में रखता है। ध्रुवा यजमान है। इसलिए यजमान इसको खाता है। यदि वह प्रत्यक्ष में उसे नहीं भी खाता कि क्या यज्ञ की समाप्ति के पहले खा लूं; तो भी वह खाई हुई समझ ली जाती है। सब खाते हैं। तात्पर्य है कि सब में ये मेरे लिए हुत होवें। ५ इसमें से खाते हैं। इडा का अर्थ है पशु। पशु ५ प्रकार के होते हैं। अतः ५ इसमें से खाते हैं।

❀ पुरोडाश के चार भाग ❀

जब होता जोर से बोलता है तब वह (अध्वर्यु) पुरोडाश के ४ भाग करके कुशों पर रखता है। वह यहाँ पितरों के स्थान पर रखता है। अवान्तर दिशायें ४ होती हैं। अवान्तर दिशा ही पितर हैं। इसलिए पुरोडाश के ४ भाग करके उनको कुशों पर रखता है। ४०

अब वह कहता है— उपहूते द्यावापृथिवी। [द्यावा-पृथिवी बुलाये गये] तो उसको अग्नीध्र को दे देता है। अग्नीध्र (उनमें से दो टुकड़ों को) यह मन्त्र पढ़कर खाता है—

उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा॥ [य० २.१०]

उपहूता द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा॥ [य० २.११]

पृथिवी माता बुलाई गई, पृथ्वी माता मुझे बुलावे। आग्नीध्र होने के कारण मैं अग्नि हूं। द्यौ पिता बुलाया गया, द्यौ पिता मुझे बुलावे। आग्नीध्र होने के कारण मैं अग्नि हूं। यह जो आग्नीध्र है वह मानो द्यावा-पृथ्वी है। इसलिए वह इसे इस प्रकार खाता है। ४१

जब होता आशीर्वाद देता है तब इस मन्त्रका जप करता है—

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
अस्माकं सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषः॥ [य० २.१०]

इन्द्र मुझमें इन्द्र की शक्ति दे। हमको बहुत सा धन प्राप्त हो। आशिष हमारे लिये हों। सच्ची आशिषें हमारे लिये हों।

यह आशिष का परिग्रह (लेना) है। यहाँ ऋत्विज् जो आशिष यजमान के लिये देता है वह उनको ग्रहण करके अपना लेता है। ४२

विधि ९६— अब दोनों पवित्रों का मार्जन करते हैं। क्योंकि अब उन्होंने इडा को पाक-यज्ञिया दे दिया। और वह अब दोनों पवित्रों से इसलिए मार्जन करते हैं कि अब जो यज्ञ का भाग बच रहा है उसको हम पवित्रों का मार्जन करके पूरा करेंगे। ४३

वह (अध्वर्यु) दोनों पवित्रों को प्रस्तर पर छोड़ देता है। यजमान ही प्रस्तर है। प्राण और अपान पवित्रे हैं। इस प्रकार वह यजमान में प्राण और अपान को धारण कराता है। इसलिए उन पवित्रों को प्रस्तर पर छोड़ता है॥४४

अध्याय ८ ब्राह्मण २

❀ विधि ९७— अनुयाज ❀

अब वे (आहवनीय अग्नि में से) दो जलती हुई समिधायें निकालते हैं। यह अग्नि अनुयाजों के लिए व्यर्थ-सी हो जाती है। क्योंकि देवों के लिए यज्ञ को ले जाती हैं। (वे सोचते हैं) कि ऐसी आग में अनुयाज करें जो यातयामा (बुझी या व्यर्थ सी) न हो। इसलिये दो जलती हुई समिधाओं को निकालते हैं। १

वे फिर उनको पास लाते हैं। इस प्रकार वे आग को फिर बढ़ा देते हैं। (वे सोचते हैं) कि जो कुछ यज्ञमें शेष रह गया है उसको ऐसी अग्नि में करें जो यातयामा न हो। अतः उनको फिर पास लाते हैं। २

अब अग्नीध्र [अनुयाजके लिए बचाई हुई] समिधा रखता है, इससे अग्नि दीप्त करताहै कि यज्ञकी शेष-क्रिया करूँ, अतः समिधा रखताहै ।३

होता यह मन्त्र बोलकर इसका अनुमन्त्रण (पवित्रीकरण) करताहै—

एषा ते अग्ने समित्तया वर्द्धस्व चा च प्यायस्व ।
वर्धिषीमहि वयम् आ च प्यासिषीमहि ॥ यजु २.१४

'हे अग्नि, यह तेरी समिधा है, इससे बढ़ और तृप्त हो, हम भी बढ़ें और तृप्त हों'। जैसे पहले समिधा देते समय कहा था वैसेही अब कहता है। यह होतृ-कर्म है, यदि समझे कि वह नहीं जानता तो स्वयंही करे ॥४

अब सम्मार्जन करता है, इसे युक्त करता है कि यह अग्नि युक्त होकर शेष यज्ञ को आगे बढ़ाये; अतः एक-एक का सम्मार्जन करता है, जैसा पहले देवों के लिए ३-३ बार समिधा का मार्जन किया था, वैसा न हो, क्योंकि इससे दुहराने का दोष लगेगा। अतः १-१ बार करे ॥५

वह इस मन्त्र से सम्मार्जन करता है—

अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवांसं वाजजितं सम्मार्ज्मि ॥ य. २.१४

हे अन्न को जीतने वाले अग्नि ! अन्न लिये हुए तुझ वाजजित को सम्मार्जित करता हूं। पहले (२.७ में) सरिष्यन्तम् (लेते हुए) क ा था

क्योंकि तब कर्म जारी था; अब ससूवांसं कहा,क्योंकि कर्म पूरा हुआ॥६

अब अनुयाजों से यज्ञ करता है। जिन देवों का यज्ञ कर चुका इन्हीं इष्ट देवों के लिए फिर पश्चात् यज्ञ करने से अनुयाज नाम है॥७

अनुयाजों को इसलिए करता है कि वे छन्द हैं, देवों के पशु हैं। जैसे वे जुड़कर मनुष्योंको ले जाते हैं वैसे ही छन्द भी देवोंके लिए यज्ञको ले जाते हैं। पहले छन्दों ने देवों को और देवों ने छन्दों को तृप्त किया, अब भे युक्तछन्दों केलिए यज्ञ को ले जाते और तृप्त करते हैं॥८

यह भी कारण है कि अनुयाज करके वह इनको तृप्त करता है। जिस वाहनसे यात्रा करे उन्हें छोड़कर कहे, इन्हें अन्न-जल दो,यही तृप्ति है॥९

१— वह पहले बर्हि–यज्ञ करता है। सबसे छोटे छन्द गायत्री को युक्त करता है और यह शक्ति (वीर्य) के कारण है। क्योंकि यह श्येन होकर सोम को देवों तक ले गया था। अब इसको यथार्थ नहीं समझते कि छोटे से गायत्री छन्दको छन्दोंमें सबसे पहले क्यों जोतें। इसलिए अनुयाजों में देवों के छन्दों को ठीक-ठीक कर दिया जिससे भूल न हो जाय। १०,

१—अब सबसे पहले बर्हि–यज्ञ करता है। यह लोक ही बर्हि है। ओषधि बर्हि है। इस प्रकार इस लोक में ओषधियों को रखता है। वे ओषधियाँ इस लोक में स्थापित होती हैं। इस छन्द में सब जगत् प्रतिष्ठित है, इसलिये इसको जगती कहा। इसलिए उन्होंने जगती छन्द को पहले कहा॥११

२— अब नराशंस–यज्ञ करता है। अन्तरिक्ष ही नरशंस है। प्रजा को नर कहते हैं। यह नर (मनुष्य) अन्तरिक्ष में बोलते हुए विचरते हैं। जब मनुष्य बोलता है तो कहते हैं– शंसति। इसलिये अन्तरिक्ष को नराशंस कहा। अन्तरिक्ष ही त्रिष्टुप् है। इसलिए त्रिष्टुप् छन्द को दूसरा किया॥१२

३— अब अग्नि अन्तिम है गायत्री ही अग्नि है। इसलिए गायत्री को अन्तिम दर्जा दिया इस प्रकार उन्होने छन्दों को यथार्थ स्थिति में प्रतिष्ठित कर दिया,जिससे भूल न हो। १३

अध्वर्यु कहता है– देवों के लिये यज्ञ करो। और होता इस प्रकार आरम्भ करता है– देवं, देवम्। क्योंकि छन्द देवो के देव है, ये पशु हैं। पशु ही इनके घर हैं, घर ही प्रतिष्ठा हैं, अनुयाज ही छन्द है। इसीलिये अध्वर्यु कहता है कि– देवों के लिए यज्ञ करो। और प्रत्येक बार होता इस प्रकार आरम्भ करता है– देवं देवम्। १४

अब कहता है- वसुवने वसुधेयस्य ।

'वसुधा की अधिक प्राप्ति के लिए' । वषट्कार देवता के लिए होता है । देवता के लिये ही आहुति दी जाती है । परन्तु यहाँ अनुयाजों में कोई देवता नहीं है । जब वह कहता है- देवं बर्हिः, तब न अग्नि है, न इन्द्र, न सोम । और जब कहता है- देवो नराशंसः, तब भी कोई नहीं । और जो अग्नि हैं वह निदान में गायत्री है ॥ १५

अब वसुवने वसुधेयस्य कहने का प्रयोजन यह है कि अग्नि ही वसुवनि (धन को लेने वाला) और इन्द्र ही वसुधेय (धन का धारण करने वाला) है। छन्दों के देवता हैं इन्द्र–अग्नि । इस प्रकार देवता के लिये ही वषट्कार बोला जाता है और देवताके लिये ही आहुति दी जाती है ॥१६

अन्तिम अनुयाज में सब घो लाकर छोड़ देता है । क्योंकि यही प्रयाज और अनुयाज है । इसलिए वहाँ अनुयाजों में भी वह हानिकारक शत्रु से यजमान के लिए बलि दिलवाता है । जो बाध्य है उससे बलि दिलवाता है । अनुयाजों में बलि दिलवाता है ॥ १७

ब्राह्मण ॥४॥ [८.२] षष्ठः प्रपाठकः कण्डिका संख्या ॥१११

शतपथ अध्याय ८ ब्राह्मण ३

विधि ९८— अब वह दोनों स्रुचों (जुहू और उपभृत्) को इस मन्त्र से अलग करता है—

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । य० २.१५

अग्नि और सोम की जीत से मैं विजयी होऊँ । अन्न की प्रेरणा से मैं आगे बढ़ता हूं । जुहू को पूर्व से सीधे हाथ से पूर्व की ओर हटाता है इस मन्त्र से—

अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो
वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि । [य० २.१५]

अग्नि और सोम उसको हटा दें, जो हमसे द्वेष करता है या हम जिससे द्वेष करते हैं । अन्न की इस प्रेरणा से मैं आगे बढ़ता हूं । उपभृत् को बायें हाथ से पश्चिम की ओर हटाता है । यदि यजमान स्वयं हटावे तो इस प्रकार से ॥ १

और यदि अध्वर्यु (हटावे तो वह कहेगा)—

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जयत्वयं यजमानो वाजस्यैनं प्रसवेन प्रोहाम्यग्नीषोमौ तमपनुदतां यमयं यजमानो द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥ [य० २.१५]

अग्नि और सोम की जीत से ये यजमान विजयी होवें, अन्न की प्रेरणा से मैं आगे बढ़ता हूं, अग्नि और सोम उसको हटा दें जो इस यजमान से द्वेष करता है या जिससे यह यजमान द्वेष करता है, इस अन्न की प्रेरणा से मैं आगे बढ़ता हूं, यह पौर्णमास यज्ञ में ऐसा करता है, क्योंकि पौर्णमास यज्ञ अग्नि-सोम का है ॥ २

अमावस्या में वह यह कहता है—

इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्यमा प्रसवेनप्रोहामीन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥य० २.१५.

इन्द्र और अग्नि की जीत से मैं विजयी होऊं, अन्न की प्रेरणा से मैं आगे बढ़ता हूं, इन्द्र और अग्नि उसको हटा दें, जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं, अन्न की इस प्रेरणा से मैं आगे बढ़ता हूं, यह उस समय कहना चाहिए जब यजमान स्वयं कहे ॥३

और अध्वर्यु कहे तो इस प्रकार—

इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जयत्वयं यजमानो वाजस्यैनं प्रसवेन प्रोहामीन्द्राग्नी तमपनुदतां यमयं यजमानो द्वेष्टि यश्चैनं द्वेष्टि वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥

इन्द्र और अग्नि की जीत से यजमान की विजय होवें, अन्न की प्रेरणा से मैं आगे बढ़ता हूं, इन्द्र और अग्नि उसको हटा दें जिससे यह यजमान द्वेष या जो इस यजमान से द्वेष करता है। अन्न की प्रेरणा से मैं आगे बढ़ता हूं।

यह अमावस्या-यज्ञमें ऐसा होता है। इन्द्र और अग्नि ही अमावस्या के देवता हैं। इस प्रकार वह चमचों को भिन्न-भिन्न देवताओं लिए अलग करता है। यही कारण है कि वह उनको अलग करता है ॥४

जो जुहू के पीछे यजमान होता है और उपभृत् के पीछे वह जो उससे शत्रुता करता है तो इस प्रकार यजमान को पूर्व में लाता है, और जो उसका शत्रु है उसको वह पीछे हटा देता है। जुहू के पीछे अत्ता (खाने वाला) होता है और उपभृत् के पीछे आद्य (खाद्य पदार्थ) होता है। इस प्रकार वह खाने वाले को सामने लाता है तथा खाद्य को पीछे हटा देता है ॥५

इस प्रकार एक ही कर्म से वियोग हो जाता है। इसलिए एक ही पुरुष से अत्ता तथा आद्य उत्पन्न होते हैं। इसीलिए लोग हँसी में कहते हैं कि चौथे या तीसरे पुरुष में हम मिल जाते हैं। इसके अनुसार चमचे भी अलग होते हैं ॥ ६

विधि ९९— परिधियों का अभ्यञ्जन

अब परिधि समिधाओं को जुहू से (घी लेकर) चुपड़ता है। जिससे

देवों के लिये आहुति दी, जिससे यज्ञ को समाप्त किया, उसी से परिधियों को प्रसन्न करता है; इसीलिये जुहू से चुपड़ता है। ७

वह इस मन्त्र को पढ़कर घी लगाता है—

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा । (य० २.१६)

वसुओं के लिये तुझे, रुद्रों के लिए तुझे, आदित्यों के लिए तुझे।

यही ३ देव हैं वसु, रुद्र तथा आदित्य। 'इनकेलिए तुझे' ऐसा कहने का यही तात्पर्य है। ८

।वधि १००—सूक्तवाक—

अब परिधि को उठाकर आश्रावण करता है। परिधियों के लिये इसको सुनवाता है। यज्ञ ही आश्रावण है। स्पष्ट बात यह है कि यज्ञसे ही परिधियों को प्रसन्न कराता है। इसलिए परिधियों को उठवाकर आश्रावण करता है। ९

आश्रावण के पश्चात् कहता है—इषिता दैव्या होतारः ।

दिव्य होता बुलाये गये।

यह जो परिधियाँ हैं वे ही दिव्य होता हैं क्योंकि ये अग्नि हैं। जब वह कहता है कि इषिता दैव्या होतारः तो यहाँ तात्पर्य है 'इष्टा दैव्या होतारः' से, (इषित) इष्ट के अर्थ में लिया गया है(बुलाये गये अर्थात् चाहे गये)

अब कहता है— भद्रवाच्याय।

(शुभ वाणी के लिए)। देव स्वयं ही तैयार होते हैं कि इसके लिए अच्छी बात कहें, अच्छी बात करें। अतः कहा शुभ वाणी के लिये।

अब कहता है— प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय।

(सूक्तवाक- प्रशंसा के लिए मनुष्य बुलाया गया)। इस प्रकार मनुष्य होता को सूक्तवाक के लिये बुलाता है। १०

अब प्रस्तर को लेता है। यजमान ही प्रस्तर है। इसलिए जहाँ कहीं उसका यज्ञ जाय वहीं यजमान का स्वागत करता है। क्योंकि उसका यज्ञ देवलोक में गया, अतः इस प्रकार यजमानको भी ले जाता है। ११

यदि वृष्टि की इच्छा हो तो प्रस्तर को यह मन्त्र पढ़कर उठावें—

सञ्जानाथां द्यावा पृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्टयावताम्। य. २.१६

द्यौ और पृथिवी साथ चलें। क्योंकि जब द्यौ और पृथ्वी साथ साथ चलते हैं तभी वर्षा होती है। अतः कहा द्यावापृथ्वी साथ चलें। मित्र और वरुण तेरी वृष्टि द्वारा रक्षा करें। इसको कहने का तात्पर्य यह है कि जो वर्षा का अध्यक्ष है वह तेरी वृष्टि द्वारा रक्षा करे। वही वर्षाका अध्यक्ष है जो यह बहता है अर्थात् वायु, यह एक ही के समान बहता है। परन्तु वही पुरुष के भीतर जाकर आगे-पीछे होकर दो हो

जाते हैं। उनका नाम प्राण और उदान है। प्राण तथा उदान हीं मित्र और वरुण है। इसलिए यह कहता है वह जो वर्षा का अध्यक्ष है तेरी वृष्टि द्वारा रक्षा करे। इसे वह इसे इस मन्त्र द्वारा ले तो वृष्टि उसके अनुकूल सदा रहेगी। वह (प्रस्तर पर) घी लगाता है मानो यजमान को भी आहुति का रूप देता है जिससे वह आहुति होकर देवलोक को चला जाय॥ १२

वह प्रस्तर के अगले भाग को जुहू में चुपड़ता है, बीच को उपभृत् में से; जड़ को ध्रुवा में से। क्योंकि जुहू अग्रभाग के समान है उपभृत् मध्यभाग तथा ध्रुव मूल के समान है॥ १३

वह इस मन्त्र से घी लगाता है—

व्यन्तु वयोक्तं रिहाणा। (य० २.१६)

जावें देव लोग चुपड़े हुए पक्षी को चाटते हुए।

इस प्रकार वह यजमान को पक्षी का रूप देता है तथा इस मनुष्य लोक से देवलोक को भेजता है। अब वह उसको दो बार नीचे लाता है। नीचे इसलिए लाता है कि प्रस्तर यजमानका रूप है। इस प्रकार वह उसको प्रतिष्ठा से नहीं हटाता तथा अपने स्थान पर वर्षा को लाता है॥ १४

वह नीचे लाने में यह मन्त्र पढ़ता है—

मरुतां पृषतीर्गच्छ। [य० २.१६]

मरुतों की चितकबरी (घोड़ियों) के पास जाओ।

जब वह कहता है मरुतों की चितकबरियों के पास जाओ ऐसा कहने का तात्पर्य है, देवलोक को जाओ। अब कहता है—

वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। य० २.१६

(पृथ्वी) वशा पृश्नि; (चितकबरी) गाय है। जिसमें मूल वाले एवं बिना मूल वाले अन्न आदि खाद्य पदार्थ पैदा होते हैं। ऐसा कहने से तात्पर्य है कि पृथ्वी बन कर द्यौ लोक को जा और वहाँ से वर्षा ला। वर्षा से शक्ति, रस और सम्पत्ति होती है। इसीलिए वह कहता है वहाँ से यहाँ वर्षा ला॥ १५

अब उसमें एक तृण उठा लेता है। प्रस्तर यजमान है। इसलिए यदि कहीं समस्त प्रस्तर को आग में डाल दे तो यजमान तुरन्त ही परलोक को चला जाय। परन्तु इस प्रकार यजमान बहुत जीता है। और जितनी इस संसार में मनुष्य की आयु हो सकती है उसी के लिए उस प्रस्तर को लेता है॥ १६

उसको थोड़ी देर पकड़े रखकर आग में फेंक देता है। और जहाँ उसका इतना भाग गया वहाँ उसको भी भेज देता है। यदि वह उसको

आगमें न फेंके तो वह उसका परलोकसे सम्बन्ध तोड़ देता है। लेकिन ऐसा करने से वह यजमान को परलोक से अलग नहीं करता ॥१७

उसको पूर्वकी ओर सिरा करके फेंकता है। पूर्वही देवोंकी दिशा है, या उत्तर की ओर यतः उत्तर मनुष्यों की दिशा है। उसको अँगुलियों से चिकना करे, लकड़ी या काठ से नहीं। काष्ठ या लकड़ी से लाश को छेड़ते हैं। ऐसा न हो कि इसके साथ लाश के जैसा व्यवहार करें इसलिये उसे अँगुलियों से ही चिकना करते हैं, लकड़ी से नहीं। जब होता सूक्तवाक को कहता है-- ॥१८

अग्नीध्र कहता है- अनुप्रहर अर्थात् प्रस्तर के पीछे फेंक दो। इससे तात्पर्य यह है कि जहाँ उसका दूसरा भाग गया वहाँ इसे भी जाने दो। अध्वर्यु उसे चुपके से फेंककर इस मन्त्रसे अपने शरीरको छूता है,

चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि। यजु० २.१६

हे अग्नि, तू आँख का रक्षा करने वाला है- मेरी आंख की रक्षा कर। इस प्रकार वह अपने आप को आग में नही फेंकता ॥१९

विधि १०१-- अब अग्नीत् अध्वर्यु से कहता है-- संवदस्व। देवताओं के साथ संवाद कर। अब पूछता है- हे अग्नीत्! क्या वह देवलोक चला गया? वह उत्तर देता है हाँ चला गया। अब अध्वर्यु कहता है- श्रावय अर्थात् सुना। इससे तात्पर्य यह है कि यजमान की बात को देव सुनें और देव जानें। अब कहता है- श्रौषट् अर्थात् उसको सुनें। अग्नीत् का ऐसा कहने का तात्पर्य है कि देवों ने उसे जान लिया, पहचान लिया। इस प्रकार अध्वर्यु और अग्नीत् यजमान को देवलोक को ले जाते हैं॥ २०

विधि १०२— शंयुवाक- अब अध्वर्यु कहता है- स्वगा दैव्या होतृभ्यः अर्थात् 'देवताओं के होता लोग विदा हों।' ये जो परिधियाँ हैं यही देवताओं के होता हैं क्योंकि परिधियाँ ही अग्नि हैं। उन्हीं को विदा करता है इसलिये ऐसा कहता है। अब कहता है- स्वस्ति मानुषेभ्यः अर्थात् मनुष्य सम्बन्धियों के लिए कल्याण हो।' इसके द्वारा वह आशीष देता है कि मनुष्य होता कभी असफल न हो ॥ २१

विधि १०३- परिधि-होम-- अब वह परिधियों को आग में डालता है। पहले मध्य परिधि को यह मन्त्र पढ़कर डालता है --

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः।
तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत् त्वदपचेतयाता॥ य० २.१७

हे अग्नि देव! जिस परिधि को तूने अपने चारों ओर रक्खा, जब तू पणियों से छिपा हुआ था, मैं उस तुझ को तेरी प्रसन्नता के लिए भरता हूं। यह तेरे प्रतिकूल न हो।

शेष दोनों परिधियों को इस मन्त्रांश से डालता है—

अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम्। य० २-१७

तुम दोनों अग्निके प्रिय स्थान को प्राप्त हो ॥ २२

विधि १०४— सस्रव भागाहुति— अब वह जुहू और उपभृत् को ग्रहण करता है। पहले जो वह प्रस्तर को चुपड़ता है तो मानो वह आहुति देता है कि वह आहुति बनकर देवलोक को जा सके। अतः वह जुहू और उपभृत को साथ साथ पकड़ता है ॥ २३

वह सब देवों के लिए उनको ग्रहण करता है। क्योंकि जब कोई हवि ऐसी दी जाती है जिसमें किसी देवता के लिए निर्देश न हो तो उसमें सभी देवता समझते हैं कि हमारा भाग है। जब वह आज्य को लेता है तो किसी देवता का निर्देश न करके ती हविको नहीं लेता इसलिए वह सब देवों के लिए लेता है। अतः वह उस हविर्यज्ञ में आज्य को 'वैश्वदेवं' अर्थात् सब देवताओं का बना देता है ॥ २४

वह उनको इस मन्त्र से ग्रहण करता है—

संस्रवभागा स्थेषा वृहन्तः प्रस्तेरष्ठाः परिधेयाश्च देवाः।

इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तः आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वं

स्वाहा वाट्॥ (यजु० २.१८)

इष् (शक्ति) के द्वारा बड़े आप बचे हुए भागको लेनेवाले होओ। हे प्रस्तर पर बैठे हुए और परिधिवाले देवो, प्रस्तर और परिधियाँ तो आग में फेंकी जा चुकी। इस वाणी को आप सब ग्रहण करते हुए इस आसन पर बैठो और स्वाहा वाट् से लाभ उठाओ।

जैसे वषट्कृत हवि होता है वैसे ही यह भी है ॥ २५

विधि १०५– धुरी अथवा स्फ्य पर स्रुचों का रखना— जिस गाड़ी से हवि लेते हैं उसकी धुरी में स्रुवों को अलग करते हैं, कि जहाँ हम जोड़ें वहीं अलग करें। क्योंकि जहाँ जोड़ा करते हैं वहीं अलग करते हैं। परन्तु पात्र से जिसकी हवि ली जाय उसके लिए स्रुचों को स्फ्या पर रखकर अलग करें, कि जहाँ जोड़ें वहीं अलग करें अतः जहाँ जोड़ते हैं वहीं अलग करते हैं ॥ २६

यह जो स्रुच् हैं यही यज्ञ के दो बैल हैं। जब वह यज्ञ आरम्भ करता है तब उनको जोतता है, अब यदि वह इनको रखकर ही अलग करदे जैसे बैल को बिना खोले ही बिठा दें तो वह गिर पड़ेगा। स्विष्टकृत् में दोनों चमचों का विमोचन होता है, वह इनको अनुयाजों में फिर जोतता है। अनुयाजों को करने के पश्चात् फिर इनका विमोचन करता है। जब वह इनका संप्रग्रहण करता है तो फिर जोतता है। जिस गति से उनको जोतता है उसी गति से पार करने

पर विमोचन करता है। यज्ञ के पीछे ही प्रजा होती है। इसलिए यह पहले जोतता है, फिर खोलता है, फिर जोतता है, और जिस गतिके लिए उसने जोता था वह गति हो जानेके पश्चात् उसको छोड़ देता है। वह इस मन्त्र को पढ़कर रखता है—

घृताचीं स्थो धुर्यौ पातं सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्। य० २.१९

आप घी के प्रेमी हैं, धुरियों की रक्षा करो। आप भद्र हैं, मेरे लिए भद्र कीजिए। इससे तात्पर्य है आप साधु हैं मुझे साधुत्व दीजिए ॥२७

यह वीरेन्द्र मुनि शास्त्री कृत शतपथ ब्राह्मण का हिन्दी अनुवाद इति ब्राह्मणम् ॥१॥ [८.३] अध्याय ॥८॥ समाप्त हुआ।

शतपथ अध्याय ९ ब्राह्मण १

❀ विधि १०६– सूक्तवाक् ❀

अब अध्वर्यु कहता है—

ईषिता दैव्या होतारो भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय।

देवों के होता लोग बुलाये गये; कल्याण को कहने के लिये और होता सूक्तवाक के लिए, और जब होता उस पर सूक्त कहता है तो वह यजमान के लिए आशीष देता है। वह यज्ञ के पश्चात् ही आशीष देता है। दो कारण हैं कि वह यज्ञ के पश्चात् आशीष देता है– ॥१

१–जो यज्ञ करता है वह यज्ञको उत्पन्न करता है। इसी की प्रार्थना से ऋत्विज यज्ञ का विस्तार करते हैं। अब होता आशीष देता है। यह यज्ञ उस आशीष को उसी के लिए मानता है जिसके लिए आशीष दी जाती है, क्योंकि यज्ञ समझता है कि मुझे इसने उत्पन्न किया। अतः यज्ञ के अनन्तर ही आशीष दी जाती है ॥ २

२–जो यज्ञ करता है वह देवोंको अवश्य ही प्रसन्न करता है। इस यज्ञ से देवों को ऋचाओं, यजुओं तथा आहुतियों द्वारा प्रसन्न करके वह देवों का हिस्सेदार हो जाता है। और जब हिस्सेदार हो गया तो होता उसके लिए आशीष देता है। उसकी दी हुई इस आशीषको देवता लोग यजमान के लिए मानते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उसने हमें प्रसन्न किया है। अतः वह भी यज्ञके पश्चात् आशीष देता है ॥३

अब वह जपता है–१. इदं द्यावापृथिवी भद्रमभूत्।

[यह और अगले ३१ वाक्य तै० ब्रा०३.५.१०-११ के हैं]

हे द्यौ और पृथ्वी! यह भद्र हो गया।' जिसने यज्ञ समाप्त कर लिये उसका अवश्ही कल्याण होगया। २. आर्ध्म सूक्तवाकमुत नमोवाकम्। 'हमने सूक्तवाक और नमोवाक कह दिया' क्योंकि यह सूक्तवाक और नमोवाक यज्ञही हैं। हमने यज्ञको पूरा करलिया और प्राप्त करलिया।

३. अब कहता है—अग्ने त्वं सूक्तवागस्युपश्रुती दिवस्पृथिव्योः।
'हे अग्नि! तू सूक्तवाक है और द्यौ तथा पृथिवी उसको सुनते हैं।'
४.अब कहता है-ओमन्वती तेऽस्मिन् यज्ञेयजमान द्यावापृथिवी स्ताम्।
हे यजमान, इस यज्ञ में द्यौ और पृथ्वी तेरे लिए कल्याणकारी होवें।
हे यजमान, इस यज्ञमें द्यौ और पृथ्वी तेरे लिए अन्न देनेवाली हों ॥४

५. अब कहता है- शंगवी जीवदानू। 'पशुओं के लिए वे दोनों हितकारी और जीवन को बढ़ाने वाले हैं'। ६. अब कहता है—

अत्रस्नूऽअप्रवेदे ।'न डरने वाले और समझ में न आनेवाले'। तू किसी से न डरे और धन को तुझ से कोई न ले ॥ ५

७. अब कहा—उरुगव्यूतीऽअभयड.कृतौ। वे विशाल घर वाले और अभय पानेवाले हों। ८. अब कहा-वृष्टिद्यावा रीत्यापा। यह इसलिए कहा कि वे दोनों वर्षावाले हों ॥६

९. अब कहा—शम्भुवौ मयोभुवौ। यह इसलिए कहा कि वे दोनों कल्याण करनेवाले और दान देनेवाले हों। १०.अब कहा— ऊर्ज्जस्वती पयस्वती च। इस के कहने का तात्पर्य यह है कि वे दोनों रसवाले और जीविका देने वाले हों ॥ ७

११— सूपचरणा च स्वधिचरणा च। सूपचरणा इसलिए कहा कि द्यौ जिसको तू नीचे से देखता है तुझे वह सुगमतासे प्राप्त हो जाय। स्वधिचरणा इस लिए कहा कि यह पृथ्वी जिस पर तू रहता है तुझे स्थान दे। १२— तयोराविदी। उन दोनों की अनुमति में (मैं रहूं) ॥८

१३— अग्निरिदं हविरजुषतावीवृधत महो ज्यायोऽकृत।
अग्नि ने इस हवि को ले लिया, वह बढ़ गया, वह बड़ा होगया।

१४- सोम इदं हविरजुषतावीवृधत महो ज्योऽकृत।
इससे सोम के आज्य की ओर संकेत है। १५—अग्निरिदं हविरजुषतावीवृधत महो ज्यायोऽकृत। अग्नि ने यह हवि ले ली, वह बढ़ गया, वह बड़ा हो गया। इससे अग्नि के पुरोडाश से तात्पर्य है जो दर्श एवं पूर्णमास दोनों यज्ञों में अवश्य ही दिया जाता है ॥९

इसी प्रकार अन्य देवों के लिए। १६— देवा आज्यपा आज्यमजुषन्तावीवृधन्त महो ज्यायोऽकृत। आज्य या घी के पीने वाले देवों ने आज्य को ले लिया, वह बढ़ गये, वह बड़े हो गये। यहाँ प्रयाज और अनुयाजों से तात्पर्य है क्योंकि प्रयाज और अनुयाज ही आज्य पान करनेवाले देव हैं। १७—अग्निर्होत्रेणेदं हविरजुषतावीवृधत महो ज्यायोऽकृत। होत्र से अग्नि ने इस हवि को लिया, वह बढ़ गया वह बड़ा हो गया। यहाँ होत्र अग्निके लिए कहा। जुषता अर्थात् स्वीकार कर लिया। ऐसा कहकर वह जो देवता इष्ट होते हैं उनको गिनाता है कि इस देव ने हवि स्वीकार की। इस प्रकार यज्ञ की समृद्धि को

चाहता है क्योंकि जो कुछ हवि देवता स्वीकार करते हैं उसी से उस को बड़ी वस्तुओं की प्राप्ति होती है। इसलिये कहा कि स्वीकार किया। बढ़ गये इसलिए कहा कि जब देव हवि स्वीकार करते हैं तो पहाड़ के समान बढ़ जाते हैं। अतः कहता है बढ़ गये ॥१०

बड़े हो गये इसलिए कहा कि यज्ञ ही देवों का बड़ापन है। इसी को वे बड़ा करते हैं। अतः कहा बड़े हो गये। ११

१८--अस्यामृधेद्धोत्रायां देवङ्गमायाम्। देवों के पास जानेवाले इस होत्र में वृद्धि को प्राप्त हो। इसके कहने से तात्पर्य यह है कि इस देवों के पास जाने वाले होत्र में फूले-फले।

१६-- आशास्तेऽय यजमानोऽसौ। यह यजमान प्रार्थना करता है। यहाँ असौ के स्थान में यजमान का नाम लेता है। इस भांति प्रत्यक्ष रूप से उसके लिए आशीर्वाद का सम्पादन करता है। १२

[१] दीर्घायुत्वमाशास्ते। बड़े जीवन के लिए प्रार्थना करता है। जिसको पहले इडामें देवयज्या कहा उसीको यहाँ दीर्घायु कहता है।१३

[२] सुप्रजास्त्वमाशास्ते। अच्छी सन्तान के लिये प्रार्थना करता है, जहाँ पहले भूयो हविष्करणं कहा, यहाँ उसी को सुप्रजास्त्वं कहा; जो इस प्रकार करेगा उसे शासन प्राप्त होगा, उसको कहना चाहिए देव यज्यामाशास्ते; देव याज्या के लिये प्रार्थना करते हैं, इससे दीर्घायु, प्रजा और पशु की प्राप्ति होगी। १४

[३] भूयो हविष्करणमाशास्ते। बहुत हविष्करणकी प्रार्थना करता है। इससे उसी की प्रार्थना करता है। [४] सजातवनस्यामाशास्ते। अपने साथियों के लिए प्रार्थना करता है। प्राणही सजाता हैं क्योंकि यह साथ उत्पन्न होते हैं। अतः प्राणों के लिए प्रार्थना करता है।१५

[५] दिव्यं धामाशास्ते। दिव्य धाम की प्रार्थना करता है। जो यज्ञ करता है वह इसलिए करता है कि देवलोक में भी मेरे लिए धाम मिले। इस प्रकार वह देवलोक में भी हिस्सेदार करता है।

अब कहता है — यदनेन हविषाशास्ते तदश्यात् तदृध्यात्।

हवि से जो प्रार्थना करे वह सब प्राप्त हो जाय। १६

ये पांच आशीषें देता है। तीन इडा में हुईं, इस प्रकार आठ हुईं। गायत्री में आठ अक्षर होते हैं, गायत्री वीर्य है इसलिये वीर्य का सम्पादन करता है। १७

इनसे अधिक आशीष न दे, यदि इनसे अधिक दे तो सीमा से बाहर जाय। और यज्ञ में जो सीमा से बाहर जाता है वह दुष्टशत्रु के लिए होता है, इसलिए सीमा से बाहर न जाय। १८

इनसे कमकर सकता है जैसे सात। २०. तदस्मै देवा रासन्ताम्। ऐसा

कहने से तात्पर्य यह है कि देव उसके लिये इस पदार्थ को दें।

२१— तदग्निर्देवो देवेभ्यो वनुतां वयमग्नेः परिमानुषा।

इसका अर्थ यह है कि अग्नि देवों से ले और हम सब इस यजमान के लिये इसे ले लें। १९

२२— इष्टं च वित्तं च। चाहा और प्राप्त किया। उन्होंने यज्ञ को चाहा और प्राप्त किया। इसलिये ऐसा कहा। २३— उभे चैनं द्यावापृथिवीऽअंहसस्पाताम्। द्यौ और पृथ्वी दोनों इसे पाप से बचायें। २०

कुछ लोग कहते हैं 'उभे च मा' दोनों मुझको भी। अर्थात् होता आशीष में अपने को भी शामिल करले, किन्तु ऐसा न कहना चाहिए क्योंकि यज्ञ में आशीष यजमान के लिये ही है। यज्ञ में ऋत्विज लोग जो कुछ आशीष देते हैं वह सब यजमान के लिये ही है। इसके अतिरिक्त जो कोई कहे 'मुझ को भी' वह आशीर्वाद को कहीं भी स्थापित नहीं करता, अतः कहना चाहिए कि दोनों 'इसको' बचावें। २१

२४— इह गतिर्वामस्य। यह वाम (इष्टपदार्थ) की गति है। यज्ञमें जो कुछ अच्छा है उसको वह इस प्रकार यजमान के लिए दे देता है इसलिये कहा यह वाम की गति है। २२

२५— इदं च नमो देवेभ्यः। यह देवोंके लिए नमस्कार हो। यज्ञ में समाप्त होने पर देवोंको नमस्कार करता है इसलिये कहता है यह देवों के लिये नमस्कार हो। २३

ॐ विधि १०७—शंयुवाक ॐ

२६— शंयोः। कल्याण हो। बृहस्पति के पुत्र शंयु ने यज्ञकी संस्था को पहले जाना। वह देवलोक को भाग लेने चला गया, उस पर वह ज्ञान मनुष्यों से लोप हो गया। २४

अब ऋषियों को पता लगा कि बृहस्पति का पुत्र शंयु यज्ञकी संस्था को जानकर देवलोक में भाग लेने चला। शंयोः का उच्चारण करके उन (ऋषियों) ने भी यज्ञ की उस संस्था को जान लिया जिसे बृहस्पति के पुत्र शंयु ने जाना था। यह (होता) भी शंयोः के उच्चारण से यज्ञ की उस संस्था को समझ लेता है जिसे बृहस्पति के पुत्र शंयु ने जाना था। अतः वह कहता है शंयोः। २५

२७— अब जपता है— तच्छंयोरावृणीमहे। उस शंयोः को हम धारण करें। अर्थात् हम उस संस्था को धारण करें जो बृहस्पति के पुत्र शंयु ने धारण की थी। २६

२८— गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये। यज्ञ के लिये जय; यज्ञपति के लिये जय। जो यज्ञ की संस्था को चाहता है वह यज्ञ के लिये और यज्ञपति के लिये जय चाहता है।

२६-- देवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः। दिव्य कल्याण हमारे लिये और मनुष्यों के लिये। इसका तात्पर्य है कि देवोंमें हमको स्वस्ति हो और मनुष्य में हमको स्वस्ति हो। ३०-- ऊर्ध्वं जिगातु भेषजम्। भेषज या मुक्ति का साधन हमें ऊपर ले जावे। इससे तात्पर्य है कि हमारा यज्ञ देवलोक को जीते। २७

३१--शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे। हमारे दुपायों और चौपायों के लिये कल्याण हो। यह दुपाये और चौपाये ही सब संसार हैं। यज्ञ को समाप्त करके वह यजमान के लिये कल्याण माँगता है, इसलिए कहता है कि हमारे दुपायों और चौपायों के लिये कल्याण हो। २८

विधि १०८— अब कनिष्ठा अँगुली से पृथ्वीको छूता है। जब उसका ऋत्विज के कर्म के लिये वरण होता है तो वह अमानुष हो जाता है। यह पृथ्वी ही प्रतिष्ठा है, इसलिये यहीं अच्छी तरह खड़ा होता है, और वह फिर मनुष्य हो जाता है। इसीलिये इस अँगुली से पृथ्वी को छूता है॥ २९

अध्याय ९ ब्राह्मण २

❀ विधि १०९ पत्नी-संयाज ❀

वे ऋत्विज पत्नी-संयाज करने के लिये आहवनीय से गार्हपत्य अग्नि के पास लौटते हैं। अध्वर्यु जुहू और स्रुवा को, होता वेद (कुशों के गुच्छे)को और अग्नीत् आज्य-विलापनी (घी पिघलाने की कटोरी) को लेता है। १

यहाँ कुछ लोगों के मतानुसार अध्वर्यु आहवनीय के पूर्व की ओर से आता है। परन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि यदि वह वहाँ जायगा तो यज्ञ के बाहर हो जायगा। २

कुछ के मत में अध्वर्यु यजमान की पत्नी के पीछे-पीछे चलता है। उसको ऐसा भी न करना चाहिये। क्योंकि अध्वर्यु यज्ञ का पूर्वार्द्ध है और पत्नी यज्ञ का पिछला आधा। यदि ऐसा करेगा तो मानो वह नितम्ब से सिर को जोड़ ले और यज्ञ से बहिष्कृत हो जाये। ३

कुछ के मत में अध्वर्यु पत्नी और गार्हपत्य के बीच में चलता है, परन्तु उसको ऐसा भी न करना चाहिये क्योंकि यदि वह ऐसा करेगा तो यज्ञ से पत्नी को अलग कर देगा। अतः गार्हपत्य के पूर्व से होकर आहवनीय के बीच में जाता है। इस प्रकार वह यज्ञके बाहर नहीं होता क्योंकि पहले आहवनीय तक जाते हुए वह भीतर की ओर होकर गया था वैसा ही अब भी करना चाहिये। ४

अब पत्नी-संयाज करते हैं। यज्ञ से निश्चय ही सन्तान पैदा होती है, और यज्ञ के पश्चात् जोड़े से उत्पन्न होती है। जोड़े से उत्पन्न होती हुई वह यज्ञ के अन्त में उत्पन्न होती है। इसलिये यज्ञकी समाप्ति पर जोड़े से प्रजा उत्पन्न होती है, अतः पत्नी–संयाज किया जाता है।५.

४ देवताओं के लिये यज्ञ करता है। ४ जोड़ा है, २ का जोड़ा होता है, दो-दो मिलकर चार होते हैं। इससे उत्पन्न करनेवाला जोड़ा हो गया। अतः ४ देवताओं के लिये यज्ञ करता है।६

वह हवियाँ घी की होती हैं, घी ही वीर्य है। इस प्रकार वीर्य सींचता है, अतः घी की आहुति देता है। ७

इसको धीमी आवाजसे करते हैं। और जो धीमी आवाजसे किया जाय वह भी छिपकर करने के बराबर है, इसलिए इसको धीमे-धीमे करते हैं।८

१. पहले सोम को आहुति देता है। सोम वीर्य है; इस कारण से सोम को आहुति देता है। ९

२. अब त्वष्टा को आहुति देता है। त्वष्टा ही सींचे हुए वीर्य को विकृत करता है। इसलिए त्वष्टा के लिए आहुति देता है। १०

३. अब देवोंकी पत्नियोंको आहुति देता है। पत्नियों की योनियों में वीर्य स्थापित होता है; उसी से सन्तान होती है। इस कृत्य द्वारा मानों वह पत्नियों की योनि में वीर्य स्थापित करता है और वहाँ से उत्पत्ति होती है। अतः देव-पत्नियों के लिए आहुति देता।११

जब वह देव-पत्नियों के लिए आहुति देता है तो 'अग्नि' को पूर्व की ओर छिपा लेता है। क्योंकि देव उस समय तक ठहरे रहते हैं जब तक समिष्टयजु की आहुतियाँ पूरी न हो जायँ, क्योंकि वे समझते हैं कि हमारे लिए आहुतियाँ दी जायेंगी। उन्हीं से इसको छिपा लेता है। इसीलिए याज्ञवल्क्य की सम्मति है कि स्त्रियाँ जब खाती हैं तो पुरुषों से अलग खाती हैं। १२

४. अब अग्नि के लिए जो गृहपति है, आहुति देता है। अग्नि ही यह लोक है, इसी लोक के लिए सन्तान उत्पन्न होती है। इसीलिए गृहपति रूपी अग्नि के लिए आहुति देता है। १३

अन्त में इडा होती है। न तो यहाँ परिधियाँ रहती हैं न प्रस्तर। जैसे पहले प्रस्तर की आहुति से यजमान को विदा किया था; इसी के समान उसकी पत्नी भी विदा हुई क्योंकि पत्नी पति के पीछे चलती है यदि प्रस्तर का रूप (स्थानापन्न) कुछ और करे तो पत्नी के लिए आलस्य का दोष लगे। इसलिये अन्त में इडा होती है, परन्तु प्रस्तर का स्थानापन्न भी होता है॥ १४

शतपथ अध्याय ६ ब्राह्मण २

यदि वह प्रस्तर का रूप या स्थानापन्न करे तो जैसे पहले प्रस्तर द्वारा यजमान को विदाई दी इसी प्रकार उसकी पत्नी को भी विदाई देता है ॥ १५

यदि वह प्रस्तर पर स्थानापन्न चुने तो वेद (कुशों का गुच्छा) का एक तृण लेकर अगला भाग जुहू में डुबोता है, बीच का स्रुवा में, अन्त का थाली में ॥१६

अब आग्नीध्र् कहता है– अनुप्रहर 'इसे पीछे फेंक दो'। अध्वर्यु उसे चुपके से फेंककर इस मन्त्र को पढ़कर अपने को छूता है—

चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि। [य० २.१६]

हे अग्ने! तू आँखों की रक्षा करनेवाला है। मेरी आँखों की रक्षा कर। इस प्रकार वह अपने को आग में फेंकने से बचाता है ॥१७

अब अग्नीध् अध्वर्यु से कहता है— संवदस्व। संवाद कर। अध्वर्यु– हे अग्नीत् वह गया? अग्नीत्– हाँ गया। अध्वर्यु– श्रावय 'देवों' को सुना। अग्नी–त् श्रौषट्, वे सुनें। अध्वर्यु– देवताओं के होताओं के लिए विदाई हो। मनुष्य–होताओं के लिए स्वस्ति। अग्नीत्— शंयोः कहो ॥१८

अब जुहू और स्रुवा को साथ उठाता है। पहले प्रस्तर को सिंचन करके यजमान के लिये आहुति दी थी कि वह आहुति बनकर देवलोक को जावे। अतः वह जुहू और स्रुवा को लेता है ॥१९

वह उनको अग्नि के लिए उठाता है। यह मन्त्र पढ़कर—

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम। [य० २.२०] हे शक्तिवाले और दूर जाने वाले अग्नि। क्योंकि अग्नि अमर है इसलिए कहा अदब्धायो। अग्नि बहुत दूर पहुँचता है (अशिष्ट है) इसलिए अशीतम कहा। अब कहा–

पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्टचै पाहि दुरद्मन्या।

बचा मुझको वज्र से, बचा मुझको बन्धन से, बचा मुझे दूषित यज्ञ से, और बचा मुझे बुरे अन्न से। इसका तात्पर्य यह है कि तू हर प्रकार की बुराइयों से बचा। अब कहता है—

अविषम् नः पितुं कृणु। [य० २.२०] हमारे अन्न को विषरहित कर। (पितु अन्न का नाम है) इससे तात्पर्य है कि हमारे अन्न को सर्वथा विष रहित कर। अब कहता है–सुषदा योनौ [य० २.२०]। सुख देनेवाली गोद में। इसका तात्पर्य है तुझ में। फिर कहा—

स्वाहा वाट् । [य० २.२०] क्योंकि वषट्कार किया, इसलिए ऐसा ही होगया ॥२०

विधि ११६- योक्त्र विमोक— अब पत्नी वेद (कुश के गुच्छे) को खोलती है। वेदि स्त्री है, वेद पुरुष है। वेद जोड़े के लिए बनाया जाता है और इसीलिए जब यज्ञ में वह वेदि को (वेद से) छूता है तो सन्तान उत्पन्न करनेवाली सन्धि हो जाती है ॥ २१

पत्नी वेद को इसलिये खोलती है कि पत्नी स्त्री है. वेद पुरुष है। इस प्रकार सन्तान उत्पन्न करने वाली सन्धि हो जाती है। इसलिए पत्नी वेद को खोलती है ॥२२

यदि वह यजु का मन्त्र पढ़कर खोलना चाहे तो इस यजुको पढ़कर खोले- वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः [य० २.२१] तू वेद है, हे देव वेद, तू देवों के लिए वेद हो गया। मेरे लिए वेद हो ॥२३

होता उसको वेदि तक फैलाता है। क्योंकि वेदि स्त्री है और वेद पुरुष है। पुरुष स्त्री के पास पीछे से जाता है। इसलिए यह पीछे से अर्थात् पश्चिम से पुरुष-वेद को स्त्री-वेदि तक ले जाता है। इसलिये वह वेदि तक फैलाता है ॥२४

विधि ११७-- अब समिष्ट-यजु की आहुति देता है, जिससे मेरा यज्ञ पूर्व में समाप्त हो जाय। यदि वह समिष्ट-यजु पहले करता और पत्नीसंयाज पीछे तो उसका यज्ञ पश्चिम में समाप्त होता। इसलिये वह समिष्ट-यजु की आहुतियाँ इस समय देता है कि मेरा यज्ञ पूर्व में समाप्त हो ॥२५

अब इसका समिष्ट-यजुः नाम क्यों पड़ा? जो देवता इस यज्ञ में बुलाये जाते हैं और जिन देवों के लिए यह यज्ञ किया जाता है, वह सब समिष्ट होते हैं। (सम्-इष्ट चाहे हुए या बुलाये हुये)। उन सब समिष्टों में जो आहुति दी जाती है उसका नाम समिष्ट-यजुः है। (यजुः का अर्थ आहुति है) ॥२६

अब समिष्ठ-यजुः क्यों किया जाता है? जिन देवताओं को वह इस यज्ञ द्वारा बुलाता है और जिन देवताओं के लिए यह यज्ञ किया जाता है, वे देवता ठहरे रहते हैं, जब तक समिष्ठ-यजुः न हो जाय, यह सोचते हुए कि हमारे लिए यह आहुतियाँ देगा। उन्हीं देवताओं को वह यथाविधि विसर्जन कर देता है, और जिस विधि के अनुसार उसने यज्ञको उत्पन्न किया और फैलाया उसीको उत्पन्न करके उसको प्रतिष्ठा में स्थापित करता है। इसलिए वह समिष्ट-यजुः की आहुति देता है ॥ २७

वह यह मन्त्रांश पढ़कर आहुति देता है—

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। [य० २.२१]

'मार्ग को पाने वाले देवो'। वस्तुतः देव मार्ग को पानेवाले हैं। मार्ग को पाकर इसका तात्पर्य है यज्ञ को पाकर। 'मार्ग पर चलो'। इससे वह यथाविधि देवों का विसर्जन करता है। अब कहता है—

मनसस्पतऽइमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः। (यजु० २.२१)

हे मन के पतिदेव! इस यज्ञ को वायु में रख। स्वाहा- यह यज्ञ ही है जो बहता है अर्थात् पवन। इस प्रकार इस यज्ञ को तैयार करके उस यज्ञ (दर्शपूर्णमास) में स्थापित करता है। यज्ञ को यज्ञ से मिलाता है। इसलिये कहता है स्वाहा वाते धाः ॥२८

विधि ११८— अब बर्हि-यज्ञ करता है। यह लोक ही बर्हि है, ओषधियाँ बर्हि हैं। इस विधि से वह इस लोक में ओषधियाँ धारण करता है और यह ओषधियां इस लोक में प्रतिष्ठित हैं इसलिये वह बर्हि-यज्ञ करता है ॥२९

यह एक अतिरिक्त आहुति है। समिष्ट-यजु यज्ञ का अन्त है। जो समिष्ट यजुः से ऊपर है वह अतिरिक्त आहुति है। जब समिष्ट यजुः करता है तो इन देवताओं के लिये करता है इसी से यह अनन्त और असीमित ओषधियाँ होती हैं ॥३०

यह आहुति इस मन्त्र से दी जाती है—

सं बर्हिरङ्क्तां हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः।
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा॥ य० २.२२

बर्हि हवि और घी से युक्त हो। इन्द्र आदित्यों, वसुओं, रुद्रों और विश्वदेवों से संयुक्त हो। जो स्वाहा अर्थात् आहुति दी गई है वह दिव्य आकाश को जाये ॥३१

अब दक्षिण की ओर जाकर प्रणीता-पात्र के जल को डालता है, वा जब यज्ञको करता है तो उसको युक्त करता है। यदि प्रणीता के जल को न डालेगा तो न खोला हुआ यज्ञ पीछे को हटकर यजमान को हानि पहुंचावेगा। इस प्रकार यज्ञ यजमान को हानि नहीं पहुंचाता, इसलिए प्रणीता का जल दक्षिण की ओर जाकर डालता है ॥३२

वह इस मन्त्र को पढ़कर डालता है—

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति
तस्मै त्वा विमुञ्चति पोषाय। [य० २.२३]

कौन तुझे खोलता है? वह तुझे खोलता है। किसके लिए तुझको खोलता है? उसके लिए तुझको खोलता है, पुष्टि के लिए। इससे वह उत्तम पुष्टि को यजमान के लिए मांगता है। जिस पात्र के द्वारा जल

लिया था उसी के द्वारा डालता है। क्योंकि जिस से वह (घोड़ों को या बैलों को) जोतते हैं उसी से खोलते हैं। योक्त्र अर्थात् जुए की रस्सी से जोतते हैं और उसी से खोलते हैं। फलीकरण अर्थात् चावलों का कूड़ा कपाल के द्वारा कृष्णाजिन (हिरन के चमड़े) के नीचे फेंक देता है, यह कहकर— रक्षसां भागोऽसि। (य० २.२३)

तू राक्षसों का भाग है ॥२३

देव और असुर दोनों प्रजापति की सन्तान इस यज्ञ, प्रजापति, पिता अर्थात् संवत्सर के लिए झगड़ा करते थे कि 'यह हमारा होगा। यह हमारा होगा'॥२४

अब देवों ने सब यज्ञ पर स्वत्व कर लिया। जो यज्ञ का बुरा भाग था वह उन असुरों को दे दिया जैसे (यज्ञ के) पशु का मल और हविर्यज्ञ के चावल की भूसी। उन्होंने कहा– इनको यज्ञका कोई भाग न मिले। क्योंकि जिसको यज्ञ का बुरा भाग मिलता है वह न मिलने के ही बराबर है, और जिसको कुछ नहीं मिलता उसे कुछ मिलने की आशा होती है और कहता है– तूने मुझको कौन सा भाग दिया है ? इसलिए जो भाग देवों ने असुरों के लिए रक्खा था वही भाग उन असुरों को देता है। अर्थात् इस भूसी को हिरन के चमड़े के नीचे फेंक देता है। इस प्रकार वह इसे अन्धकार में डालता है, जहाँ आग नहीं है। इसी प्रकार पशु का मल अन्धकार में डालता है। यह कह कर कि तू राक्षसों का भाग है। इसलिए (यज्ञ में) प्रयुक्त नहीं करते क्योंकि यह राक्षसों का भाग है ॥२५

अध्याय ९ ब्राह्मण ३

विधि ११९— प्रणीता और पूर्णपात्र का निनयन तथा दक्षिणा

यज्ञ की समाप्ति पर अध्वर्यु दक्षिण की ओर घूम कर पूर्णपात्र के जल को गिरा देता है। इस प्रकार (संकेत से बताता है) उत्तरकी ओर गिराया जाता है। इसलिए दक्षिणकी ओर घूम कर पूर्णपात्र का जल गिराता है। जो यज्ञ करता है वह इस कामना से करता है कि देवलोक में स्थान मिले। उसका यह यज्ञ भी देवलोक को चला जाता है, इसके पीछे दक्षिणा चलती है, जिसे वह पुरोहित को देता है, दक्षिणा को लेकर यजमान पीछे-पीछे आता है ॥१

मार्ग या तो देवयान होता है या पितृयान। दोनों ओर दो अग्नि-शिखायें जलती रहती हैं। जो झुरसाने के योग्य होता है उसे झुरसाती हैं और जो निकल जाने योग्य होता है उसे निकल जाने देती हैं। जल शान्ति है इसलिए इसके द्वारा वह मार्ग को शान्त करता है ॥२

पूर्णपात्र को वह उँडेलता है। पूर्ण का अर्थ है सब। इस प्रकार वह सब से मार्ग को शान्त करता है। वह निरन्तर बिना धारको तोड़े हुए उँडेलता रहता है। इस प्रकार वह मार्ग को निरन्तर लगातार शान्त करता है ॥३

वह पूर्णपात्र को इसलिए उँडेलता है। यज्ञ में जो भूल हो जाती है वहाँ काट या फाड़ देते हैं। जल शान्ति हैं इसलिये जल रूपी शान्ति से शान्त करता है अर्थात् जलों से ठीक करता है ॥४

पूर्णपात्र को उँडेलता है, पूर्ण का अर्थ है सब। सब के द्वारा इसको ठीक करता है। यह लगातार बिना धार तोड़े हुए उँडेलता है, इस प्रकार निरन्तर ठीक करता है ॥५

उसको अञ्जलि से लेता है यह मन्त्र पढ़कर—

सं वर्च्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा संशिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम्। य० २.२४

तेज, शक्ति, शरीरों और कल्याणकारी मन से हम मिल गये। दानी त्वष्टा हम को धन दे, और जो कुछ हमारे शरीर में कमी हो उसे ठीक कर दे। ऐसा कहकर जो व्रण था उसे ठीक कर देता है ॥६

अब मुख का स्पर्श करता है। मुख स्पर्श करने के दो कारण हैं। एक तो जल अमृत है। अमृत से ही स्पर्श करना है। दूसरे यह कि इस प्रकार वह इस कर्म को अपना (निजी) कर लेता है। इस लिए मुख का स्पर्श करता है ॥७

अब वह विष्णु के पगों को चलता है। जो यज्ञ करता है वह देवों को प्रसन्न करता है। इस यज्ञ द्वारा ऋचाओं से, यजुओं से या आहुतियों से देवों को प्रसन्न करके वह उनका हिस्सेदार होकर उन तक पहुंच जाता है ॥८

विष्णु के पगों को इसलिए चलता है कि विष्णु यज्ञ है। उस यज्ञ ने देवों के लिए इस विक्रान्ति (शक्ति) को प्राप्त कर लिया जो इस समय उसके पास है। पहले पद से इस (पृथ्वी) को, दूसरे से अन्तरिक्ष को; तीसरे से द्यौ को। यह विष्णु-यज्ञ यजमान के लिए इस शक्ति को प्राप्त करा देता है। इसलिए विष्णु के पगों को चलता है। अब इसी (पृथ्वी) से बहुत से (ऊपर को) चलते हैं ॥९

वह इस मन्त्र से—

पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः; दिवि विष्णुर्व्य-

क्रंस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।। [य० २.२५]

पृथ्वी में विष्णु गायत्री छन्द से चला। जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं, वह यहाँ से बहिष्कृत है। अन्तरिक्ष में विष्णु त्रिष्टुप् छन्द से चला। जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं, वह यहाँ से बहिष्कृत है! द्यौ लोक में विष्णु जगती छन्द से चला। जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं, वह यहाँसे बहिष्कृत है'। इस भाँति इन लोकोंको प्राप्त हो गया तो यही गति है, यही प्रतिष्ठा है। जो यह तपता है अर्थात् सूर्य, उसकी ये किरणें सुकृत हैं। यह जो परम-प्रकाश है वह प्रजापति या स्वर्ग-लोक है। इस प्रकार जो इन लोकों को प्राप्त होता है वह इस गति और प्रतिष्ठा को पाता है। जो अनुशासन या उपदेश देना चाहे वह ऊपर से नीचे आता है। दो कारण हैं कि वह ऊपर से नीचे आता है—॥१०

शत्रु के भागने पर पहले विजयी देवों ने द्यौ को जीता, फिर अन्तरिक्ष को; फिर उन शत्रुओं को इस पृथ्वी से भी निकाला जहाँ से भाग जाना कठिन था। उसी प्रकार यह होता भी शत्रुओं के भगाने पर पहले द्यौ लोक को जीतता है, फिर अन्तरिक्ष को, फिर उनको इस पृथ्वी से निकालता है जहाँ से भाग जाना नहीं बन सकता। यह पृथ्वी की प्रतिष्ठा है इसलिए वह इस प्रतिष्ठा में ही प्रतिष्ठित होता है ॥११

और इस प्रकार भी—

दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां। विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्त योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नाद्यस्यै प्रतिष्ठाया। [य० २.२५]

द्यौ लोक में विष्णु जगती छन्दसे चला। वहाँसे निकाल दिया गया वह जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं। अन्तरिक्ष में विष्णु त्रिष्टुप छन्द से चला। वहाँ से निकाल दिया गया वह जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं। पृथ्वी में विष्णु गायत्री छन्द से चला। वहाँ से निकाल दिया गया वह जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं। इस अन्नसे और इस प्रतिष्ठा से निकाल दिया गया। इस पृथ्वी में ही अन्न आदि प्रतिष्ठित हैं इसलिए कहा–इस अन्न से और इस प्रतिष्ठा से ॥१२

अब वह पूर्व की ओर देखता है। पूर्व देवों की दिशा है, इसीलिए पूर्व की ओर देखता है ॥१३

वह यह मन्त्र पढ़कर देखता है—

अगन्म स्वः। [य० २.२५] हम स्वर्ग को पहुंच गये।

देव ही स्वर्ग हैं इसलिये तात्पर्य है कि हम देवों को प्राप्त हो गये।

अब कहता है— सं ज्योतिषाभूम। [य० २.२५] प्रकाश से हम मिल गये। इससे तात्पर्य है कि हम देवों से मिल गये ॥१४

अब वह सूर्य की ओर देखता है। क्योंकि वही गति है, वही प्रतिष्ठा है। इस गति और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है इसलिए सूर्य की ओर देखता है ॥१५

वह इस मन्त्र को पढ़कर देखता है—

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिः। [य० २.२६] हे श्रेष्ठ किरण! तू स्वयम्भू है। सूर्य श्रेष्ठ किरण है इसलिए कहा—हे श्रेष्ठ किरण, तू स्वयम्भू है। अब कहता है—वर्च्चोदाऽअसि वर्च्चो मे देहि। य. २.२६ तू तेज देने वाला है तू तेज दे। याज्ञवल्क्य ने कहा— मैं यही कहता हूं कि ब्राह्मण यह चाहे कि मैं ब्रह्म-वर्च्चसी होऊं। औपोदितेय ने कहा— वह मुझे गायें देगा। इसलिये मैं कहता हूं; तू गायें देनेवाला है मुझे गायें दे। इस प्रकार यजमान जो चाहता है वही उसको मिल जाता है ॥१६

अब वह (बाईं ओर से दाहिनी ओर को) मुड़ता है यह मन्त्र पढ़कर—सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते। (य० २.२६) मैं सूर्य के मार्ग को लौटता हूं। इस गति और प्रतिष्ठा को प्राप्त होकर वह लौटता है ॥१७

अब वह गार्हपत्य अग्नि के पास जाता है। गार्हपत्य घर है, घर ही प्रतिष्ठा है इसलिये वह घर में अर्थात् प्रतिष्ठा में रहता है और दूसरे, जो मनुष्य की पूरी आयु हो सकती है उसको प्राप्त करता है इसलिए गार्हपत्य अग्निके पास ठहरता है ॥१८

वह यह मन्त्र पढ़कर जाता है—

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासं सुगृहपतिस्त्वम् मयाग्ने गृहपतिना भूयाः। (य० २.२७)

हे गृहपति अग्नि! मैं तुझ गृहपति की सहायता से अच्छा गृहपति हो जाऊं। हे अग्नि, मुझ गृहपति की सहायता से तू अच्छा गृहपति हो जा। यह स्पष्ट ही है।

अब कहता है— अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु। (य० २.२७) हमारे घर के मामले एक बैल की गाड़ी जैसे न हों। ऐसा कहने

का तात्पर्य है कि हमारे घर के सामले दुःख-रहित हों।

अब कहता है— शतं हिमाः। [य० २.२७]

सौ वर्ष तक। इसका तात्पर्य है मैं सौ वर्ष तक जीऊँ। परन्तु उस को ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि मनुष्य सौ वर्ष से अधिक जी सकता है। इसलिए उसको ऐसा नहीं कहना चाहिये ॥१६

अब वह (बाईं ओर से दाईं ओर) मुड़ता है यह पढ़कर—

सूर्यस्यावृतमन्व।वर्ते। [य० २.२७] सूर्य के मार्ग से लौटता हूं। वह इस गति और प्रतिष्ठा को प्राप्त करके इस सूर्य के मार्ग से लौटता है ॥२०

अब यह मन्त्र पढ़ता हुआ अपने पुत्र का नाम लेता है—

इदं मे ऽयं वीर्य-पुत्रोऽनुसन्तनवत्। मेरा पुत्र मेरे इस वीर्य को जारी रखे। यदि पुत्र न हो तो अपना ही नाम ले ॥२१

अब आहवनीय के पास खड़ा होता है। वह चुपके से खड़ा होता है यह जानकर कि मेरा यज्ञ पूर्व में समाप्त होगा ॥२२

विधि १२०— अब व्रत का विसर्जन करता है यह मन्त्र पढ़कर—

इदमहं य एवाऽस्मि सोऽस्मि। (य० २.२८) यह मैं वही हूँ जो हूँ। जब व्रत को किया था तो मनुष्य से ऊपर (देव) हो गया था। अब यह कहना तो उचित नहीं है कि मैं सच से झूठ को प्राप्त होऊं। और वह मनुष्य हो ही जाता है इसलिए उसको इस मन्त्र को पढ़कर ही व्रत का विसर्जन करना चाहिए। 'मैं वही हूँ जो हूँ' ॥२३॥

ब्राह्मणम्, सप्तमः प्रपाठकः समाप्तः॥ कण्डिका संख्या ११४ ॥ नवमोऽध्यायः॥ अस्मिन् काण्डे कण्डिका संख्या ८३८ ॥

आचार्य वीरेन्द्र मुनि शास्त्री कृत माध्यन्दिनीय शतपथ ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद का हविर्यज्ञ नामक प्रथम काण्ड समाप्त हुआ।

प्रथम काण्ड

प्रपाठक		कण्डिका-संख्या
प्रथम	[१.२.२]	१२१
द्वितीय	[१.३.३]	१२२
तृतीय	[१.४.४]	१२८
चतुर्थ	[१.६.१]	१२१
पंचम	[१.७.२]	१२१
षष्ठ	[१.८.२]	१११
सप्तम	१.९.३	११४
	योग	८३८

शतपथ काण्ड २ (एकपादिका)
अध्याय १ ब्रा. १ [अग्न्याधानम्]

अध्वर्यु इधर-उधर से इकट्ठा करता है। यही भिन्न-भिन्न आवश्यक वस्तुओं को इकट्ठा करना तैयारी है। जिस-जिस वस्तु में अग्नि रहती है उसी उसी वस्तु में तैयारी की जाती है। इस तैयारी में यश से, पशुओं से और मिथुन अर्थात् जोड़े से युक्त करता है ॥१

अब वह रेखा खींचता है। इस पृथ्वीके जिस भागपर चला या जहाँ थूका उस भाग को निकाल देते हैं। इस प्रकार यज्ञ के योग्य पृथ्वी में ही अग्न्याधान किया जाता है। इसीलिए रेखा खींची जाती है ॥२

अब जल छिड़कता है। यह जो जल छिड़कना है मानो अग्निकी जल के साथ तैयारी है। जल लाया इसलिए जाना है कि जल अन्न है। अन्न ही जल है। इसलिये जब जल इस लोक में आ जाता है, तभी अन्न उत्पन्न होता है। इस प्रकार वह अग्निको अन्नादि से युक्त करता है ॥३

'आपः' जल स्त्री है, अग्नि पुरुष है। इस प्रकार वह यज्ञ के लिये एक सन्तान–उत्पादक जोड़ा देता है। और क्योंकि जल इस सब लोक में व्यापक है, इसलिये अग्नि को पहले जलके द्वारा तैयार करके ही स्थापित करता है। इसीलिये वह जल को लाता है ॥४

अब वह सोना (सुवर्ण) लाता है। एक बार अग्नि ने जल की ओर देखा और सोचा कि मैं इसके साथ सम्बन्ध करूँ। उसने जल के साथ सम्बन्ध किया और जो वीर्य सींचा वह स्वर्ण हो गया। इसीलिये वह अग्नि के समान चमकता है, क्योंकि वह अग्नि का ही बीज है। वह सोना जल में पाया जाता है, क्योंकि जल में उसने वीर्य सींचा था। इसलिये न कोई उसको धोता है और न कोई और काम करता है। अब आग के लिये यश है, क्योंकि देव–वीर्य अर्थात् यशसे वह उसको समृद्ध करता है और वीर्य रूप पूर्ण अग्नि का आधान करता है। इसलिये वह स्वर्ण को लाता है ॥५

अब वह रेह (नमक) को लाता है। द्यौ ने इस पृथ्वी के लिये इन पशुओंको दिया। इसलिये कहते हैं कि नमक की भूमि (ऊसर) पशुओं के योग्य है। यह पशु ही इसलिए नमक हैं। इस प्रकार वह साक्षात् रूप से अग्नि को पशुओं से युक्त करता है। और पशु उस द्यौलोक

से आकर इस पृथ्वी में प्रतिष्ठित हुये। उस नमक को इन द्यौ और पृथ्वी का रस मानते हैं। इसलिये इन्हीं द्यौ और पृथ्वी के रस से अग्नि को समृद्ध करता है। इसलिये नमक को लाता है ॥ ६

अब वह आखु-करीष (चूहों द्वारा निकाली हुई मिट्टी को) लाता है। चूहे इस पृथ्वी के रस को जानते हैं। इसीलिए वे इस पृथ्वी को गहरा खोदते चले जाते हैं। इस पृथ्वी के रस को प्राप्त करके वह मोटे हो गये, और जहाँ पृथ्वी में उनको रस प्रतीत हुआ उन्होंने उसे खोदकर बाहर निकाल डाला। इसीलिये वह अग्नि को पृथ्वी के इस रस से युक्त करता है। यही कारण है कि वह आखु-करीष को लाता है। जो श्री को प्राप्त कर लेता है, उसे पुरीष्य कहते हैं। पुरीष और करीष एक ही बात है। इसलिये इसकी बढ़ोत्तरी के लिये आखु-करीष को लाता है ॥७

अब वह कंकड़ [शर्करा] लाता है। देव और असुर दोनों प्रजापति की सन्तान अपनी बड़ाई के लिये झगड़ने लगे। यह पृथ्वी कमल के दल के समान काँपने लगी क्योंकि वायु इसको डगमगा रही थी। वह कभी देवों के पास जाती और कभी असुरों के। जब वह देवों के पास पहुंची तो— ॥ ८

उन्होंने कहा— लाओ हम इसको दृढ़ कर लें; और जब यह दृढ़ और अचल हो जाय तो दोनों अग्नियों का आधान करें। इससे हम अपने शत्रुओं को यहाँ से बिल्कुल निकाल देंगे ॥९

इसलिये जैसे खूंटियों से चमड़े को तानते हैं, उसी प्रकार इसको दृढ़ किया, तथा यह अचल और दृढ़ हो गई। उसी दृढ़ और अचल भूमि पर दो अग्नियों का आधान किया; और तब उन्होंने शत्रुओं को इसके भाग से बिल्कुल निकाल दिया ॥१०

इसी प्रकार यह (अध्वर्यु) भी कंकड़ों से दृढ़ करता है, और उस दृढ़ निश्चल पृथ्वी में दो अग्नियों को स्थापित करता है; और शत्रुओं को मार भगाता है, इसलिये कंकड़ों को लाता है ॥११

इस प्रकार यह पाँच तैयारियाँ हैं क्योंकि यज्ञ ५ भागोंवाला (पांक्त) और पशु भी ५ भागों वाला है, और वर्ष में ५ ऋतुयें भी हैं ॥१२

इसके विषय में उनका कहना है कि वर्ष में ६ ऋतुयें हैं। न्यून के जोड़े से ही सन्तान उत्पन्न होती है। न्यून के [नीचे के स्थान] से ही यह प्रजा उत्पन्न होती है। यह भी यजमान के लिए श्रेयस्कर है। इसलिए ५ तैयारियाँ होती हैं। और जब वर्ष की ६ ऋतुयें होती हैं तो छठी अग्नि होती है। इसलिये कोई न्यूनता नहीं हुई। तात्पर्य यह है

कि ५ संभारों में किसी प्रकार न्यूनता नहीं माननी चाहिये। ५ ऋतुओं के लिये पाँच संभार हो गये। यदि कोई कहे कि ऋतुयें छः होती हैं इसलिये पाँच संभारों से न्यूनता पाई जायगी, तो इसका उत्तर यह है कि न्यूनता बुरी नहीं, क्योंकि न्यून से ही तो सन्तान पैदा होती है। दूसरी बात यह है यदि छः ऋतुयें मानो तो ५ संभारों (जल, स्वर्ण, नमक आखुकरीष और कंकड़)के साथ छठा अग्निभी तो है। इससे छ; संख्या पूरी हो गई। और ५ ही संभार ठीक ठहरे ॥१३

कुछ लोगों का मत है कि एक भी सम्भार नही होना चाहिए। क्यों कि इस पृथ्वी में तो सभी चीजें हैं। जब इसी पृथ्वी में अग्नि को स्थापित किया तो मानो सभी सम्भार प्राप्त हो गये। इसीलिए किसी सम्भार की आवश्यकता नहीं। परन्तु उसको सभी सम्भारों को एकत्रित करना ही चाहिये। क्योंकि जब वह इस पृथ्वी में अग्नि का आधान करता है तब सभी सम्भारों को प्राप्त होता है और जो कुछ सम्भारों का लाभ है वह उसको भी प्राप्त हो जाता है। इसीलिए सम्भारों को इकट्ठा करना ही चाहिए ॥१४

अध्याय १ ब्राह्मण २

अग्नियों का आधान कृत्तिका नक्षत्रों में करे। कृत्तिका अग्निके नक्षत्र हैं। जो अग्नि के नक्षत्र में अग्नियों का आधान करता है वह सलोम (अनुकूलता)स्थापित करता है। अतः कृत्तिकानक्षत्रमें अग्न्याधान करे॥१

अन्य नक्षत्र एक, दो, तीन या चार होते हैं। (कृत्तिका ७ होते हैं) इसलिए कृत्तिका बहुल हुये। इस प्रकार बहुत्व को प्राप्त होता है इस-लिए कृत्तिका नक्षत्रों में अग्न्याधान करे ॥२

यह (कृत्तिका) पूर्व दिशा से हटते नहीं, अन्य सब नक्षत्र पूर्व दिशा से हटते हैं। इस प्रकार उसकी दोनों अग्नियाँ पूर्व दिशा में ही स्थापित होती हैं, इसलिए कृत्तिका नक्षत्रों में ही अग्न्याधान करे ॥३

परन्तु कुछ लोग युक्ति देते हैं कि कृत्तिकाओं में अग्न्याधान नहीं करना चाहिये। क्योंकि यह कृत्तिका पहले ऋक्षों की पत्नियाँ थीं। सात ऋषियों को पहले ऋक्ष कहते थे। उनको मैथुन करने नहीं दिया गया इसलिए उत्तरमें सप्त-ऋषि तथा ये कृत्तिकायें पूर्वमें निकलती हैं। मैथुन करने न देना यह दुर्भाग्य (अशुभ) है। इसलिए कृत्तिका नक्षत्रों में अग्न्याधान न करे कि कहीं मैथुन से वर्जित न हो जाय ॥४

परन्तु कृत्तिका में अग्न्याधान किया जा सकता है। क्योंकि इनका जोड़ा तो अग्नि है। अग्नि जोड़े के साथ इनकी वृद्धि होती है। इसलिए

अग्नि का आधान कृतिका में करे ।।५

रोहिणी नक्षत्र में भी अग्न्याधान करे । क्योंकि रोहिणी नक्षत्र में ही सन्तान के इच्छुक प्रजापति ने अग्न्याधान किया था. उसने प्रजा रची और वह प्रजा एक-रूप और ठीक रहीं । रोहिणी (लाल गाय) के समान। इसलिए रोहिणी नक्षत्र रोहिणी गौ के समान है। इसलिए जो कोई इस रहस्य को समझ कर रोहिणी नक्षत्र में अग्न्याधान करता है वह सन्तान और पशुओं से फूलता फलता है ।। ६

रोहिणी नक्षत्र में पशु अग्नियों का आधान करते हैं कि मनुष्यों की इच्छा तक चढ़ सकें (रोहेम) । उन्होंने मनुष्यों की कामनाओं तक रोहण किया । और जो कामना पशुओं की मनुष्यों के प्रति पूरी हुई वही पशुओं के प्रति उसकी पूरी होगी जो इस रहस्य को समझ कर रोहिणी नक्षत्र में अग्न्याधान करता है ।।७

मृगशीर्ष नक्षत्र में भी अग्न्याधान हो सकता है। क्योंकि मृगशीर्ष प्रजापति का सिर है। श्री ही शिर है, श्री ही शिर है । इसलिये जो मनुष्य जाति से श्रेष्ठ होता है उसको कहते हैं कि यह जाति का सिर है। जो इस रहस्य को समझ कर मृगशीर्ष नक्षत्र में अग्न्याधान करता है वह श्री को प्राप्त होगा ।।८

अत्र मृगशीर्ष नक्षत्र में अग्न्याधान न करने की (कुछ लोग यह युक्ति देते हैं) कि यह प्रजापति का शरीर है। जब देवों ने इसको त्रिकाण्ड तीर से बींधा तो कहते हैं कि उसने शरीर त्याग दिया। इसलिये यह शरीर केवल वास्तु, अयज्ञिय (यज्ञ न करने योग्य) और निर्वीर्य हो गया। इसलिये मृगशीर्ष में अग्न्याधान न करे ।। ९

परन्तु वह कर सकता है। यह जो प्रजापति का शरीर है वह न वास्तु है, न अयज्ञिय और न निर्वीर्य । इसलिए मृगशीर्ष में अग्न्या॰ धान करे। पुनर्वसु नक्षत्र में पुनराधेय कर्म करे - ऐसा आदेश है ।।१०

फल्गुनी नक्षत्र में अग्न्याधान करे। यह फल्गुनी इन्द्र के नक्षत्र हैं। और उसी के नाम पर हैं। इन्द्र का नाम अर्जुन भी है। यह उसका गुह्य नाम है और इन फल्गुनी नक्षत्रों का भी नाम अर्जुनी है। इस लिये वह परोक्ष रीति से इनको फल्गुनी कहता है क्योंकि इन्द्र का गुह्य नाम कौन ले सकता है? इसके अतिरिक्त यजमान भी इन्द्र है। वह अपने ही नक्षत्र में अग्नि का आधान करता है। इन्द्र यज्ञ का देवता है। इस प्रकार उसका अग्न्याधान सेन्द्र (इन्द्र वाला) हो जाता है। पूर्व-फल्गुनी में अग्न्याधान करे। इससे उसका क्रतु या यज्ञ प्रथमश्रेणी का हो जाता है। या पिछले फल्गुनी (उत्तरा) में अग्न्याधान करे इससे

उसका यज्ञ उत्तरा के समान अर्थात् उन्नतिशील हो जाता है ॥११

हस्त नक्षत्र में अग्न्याधान करे। जो जिसकी इच्छा करे उसको वही दिया जाय। इसी अनुष्ठान से कार्य सफल होगा। जो हाथ से प्रदान किया जाता है, वह अवश्य ही दिया जाता है। हस्त नक्षत्र का शाब्दिक सम्बन्ध हाथ द्वारा किये गये दान से जोड़ा गया है ॥१२

चित्रा नक्षत्र में अग्न्याधान करे। प्रजापति के पुत्र देव और असुर बड़ाई के लिए लड़ पड़े। दोनों ने चाहा कि उस द्यौलोक को चढ़ जावें। अब असुरों ने रौहिण अग्नि को प्रज्वलित किया कि इसके द्वारा हम उस लोक को चढ़ जायेंगे। [यहाँ अग्नि को रौहिण कहा। चढ़ने के लिये भी रुह धातु आता है। यह शाब्दिक सादृश्य है] ॥१३

इन्द्र ने अब सोचा कि यदि यह इस अग्नि का आधान कर लेंगे तो हमको हरा देंगे। अब वह ब्राह्मण का भेष रखकर एक ईंट ले कर वहाँ गया ॥१४

उसने कहा- मैं भी इस ईंट को रख दूँ। उन्होंने कहा- अच्छा। उसने वह ईंट रख दी। उनके अग्न्याधान में अब बहुत थोड़ी सी कसर रह गई ॥१५

अब उसने कहा- मै इस ईंट को निकाले लेता हूं। यह मेरी है। उसने उसे पकड़ा और खींच लिया। और अग्नि की वेदी गिर पड़ी और अग्नि के गिरने से असुर भी गिर पड़े। उसने अब इन ईंटों को वज्र बना दिया और उनसे असुरों के गले काट डाले ॥१६

अब देव इकट्ठे होकर बोले— हमने शत्रु मार डाले। यह तो चित्र अर्थात् विचित्र बात हुई। इसलिए चित्रा नक्षत्र की विचित्रता है। जो इस रहस्य को समझ कर चित्रा नक्षत्र में अग्न्याधान करता है वह विचित्र हो जाता है और अहितकारी शत्रुओं का नाश कर देता है। इसलिये क्षत्रिय को अवश्य ही इस नक्षत्र में अग्न्याधान की इच्छा होनी चाहिये। क्योंकि ऐसा आदमी प्रायः अपने शत्रु के नाश की इच्छा किया करता है ॥१७

पहले यह नक्षत्र बहुत से क्षत्र थे जैसे वह सूर्य। जब वह उदय हुआ तो उसने उनके क्षत्र और वीर्य (शक्ति) को ले लिया। इसलिए उसको आदित्य कहते हैं कि वह इन नक्षत्रों के वीर्य और क्षत्र को ले लेता है। [आदत्ते का अर्थ है ले लेता है। इसी आदत्ते से आदित्य शब्द को बनाया है] ॥१८

अब इन देवों ने कहा— जो अब तक क्षत्र अर्थात् शक्ति थे वे अब क्षत्र न रहेंगे। इसीलिये नक्षत्रों का नक्षत्रत्व है। अर्थात् पहले वह

क्षत्र थे, अब देवों के कहने से क्षत्र नहीं रहे। (न-क्षत्र—नक्षत्र हो गये)। इसलिए सूर्य को ही नक्षत्र मानना चाहिये क्योंकि उनका वीर्य सूर्य ने ले लिया। यदि यजमान को अग्न्याधान के लिये नक्षत्र की आवश्यकता हो तो यह सूर्य अच्छा नक्षत्र है। इस पुण्य दिन में वह जिन नक्षत्रों को चाहे उनका पुण्य ले लें। इसलिए उसको सूर्य को ही नक्षत्र मानना चाहिए ॥१६

प्रथमाध्याय ब्राह्मण ३

वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा यह देव ऋतुएं हैं। शरद्, हेमन्त और शिशिर यह पितृ-ऋतुयें हैं, जो आधा मास [शुक्लपक्ष] बढ़ता है वह देवों का है और जो घटता है वह [कृष्णपक्ष] पितरों का है। दिन देवों का और रात पितरों की है। फिर दिन का दोपहर से पूर्व का भाग देवों का, पिछला भाग पितरों का है ॥१

अब ये ऋतुयें देवों और पितरों की हैं। जो मनुष्य इस रहस्य को समझ कर देवों और पितरों को बुलाता है उसका देव-निमन्त्रण सुनकर देव और पितृ-निमन्त्रण सुनकर पितर आ जाते हैं। जो मनुष्य देव और पितरों को जानकर बुलाता है उसकी देव देवनिमन्त्रण और पितर पितृ-निमन्त्रण में रक्षा करते हैं ॥२

वह सूर्य जब उत्तर की ओर होता है तो देवों में होता है और देवों की रक्षा करता है, और जब दक्षिण की ओर होता है तो पितरों में होता है और पितरों की रक्षा करता है ॥३

जब सूर्य उत्तरायण हो तो अग्न्याधान करे। सूर्य के द्वारा देवों का पाप नष्ट हो गया। उसका भी पाप दूर हो जायगा। देव अमर हैं। इसलिये जो इस समय अग्न्याधान करता है उसको अमरत्व की आशा तो नहीं हो सकती, परन्तु वह पूर्ण आयु को प्राप्त हो जाता है। परन्तु जो दक्षिणायन सूर्य में अग्न्याधान करता है उसका पाप नहीं छूटता क्योंकि पितरों का पाप नहीं छूटा। और वह आयु से पहले मर जाता है क्योंकि पितर अमर नहीं हैं ॥४

वसन्त ब्राह्मण है, ग्रीष्म क्षत्रिय, वर्षा वैश्य। इसलिए ब्राह्मण वसन्त में अग्न्याधान करे क्योंकि वसन्त ब्राह्मण है। इसलिए क्षत्रिय ग्रीष्म में अग्न्याधान करे क्योंकि ग्रीष्म क्षत्रिय है। इसलिए वैश्य वर्षा में अग्न्याधान करे क्योंकि वर्षा वैश्य है ॥५

जो इच्छा करे कि मैं ब्रह्मवर्चसी हो जाऊँ वह वसन्त में अग्न्याधान

करे क्योंकि वसन्त ब्राह्मण है। वह निश्चय करके ब्रह्मवर्चसी हो जाता है ॥ ६

जो चाहे कि मुझे शक्ति, श्री और यश प्राप्त हों, तो वह ग्रीष्म में अग्न्याधान करे, क्योंकि ग्रीष्म क्षत्रिय है। उसे शक्ति, श्री और यश मिलेगा ॥७

और जो चाहे कि बहुत सन्तान तथा पशु हो जायं, तो वह वर्षा में अग्न्याधान करे, क्योंकि वर्षा वैश्य है। अन्न वैश्य है। जो इस रहस्य को समझकर वर्षा में अग्न्याधान करता है, उसके बहुत सन्तान और पशु होते हैं ॥८

(कुछ लोगों का मत है कि) ये दोनों प्रकार की देव और पितृ ऋतुयें पापों से युक्त हैं। सूर्य इनके पापों को दूर करने वाला है। जब वह चमकता है, तो इनके पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिए जब यज्ञ की इच्छा हो तभी अग्न्याधान करले। कल के ऊपर न डाले क्यों कि कौन जानता है कि कल क्या होगा ?९

प्रथमाध्याय ब्राह्मण ९

जिस दिन के अगले दिन अग्न्याधान करना है उस दिन यजमान और उसकी पत्नी दिन में ही भोजन करे। क्योंकि देव मनुष्यों के मनको जानते हैं कि अगले दिन अग्न्याधान होगा। इसलिये सब देव घर में आ जाते हैं। वे उसके घरों में ठहर जाते हैं। इसलिए इस दिन को उपवसथ (उपवास) कहते हैं ॥१

यह अनुचित है कि ठहरे हुए मनुष्यों के भोजन करने से पूर्व वह भोजन करले। इससे भी अधिक अनुचित बात यह है कि ठहरे हुये देवों के भोजन करने से पूर्व भोजन कर ले। इसलिए उसे दिन में ही भोजन करना चाहिये। परन्तु यदि इच्छा हो तो रात में भी भोजन कर सकता है। क्योंकि अभी अग्न्याधान नहीं किया, इसलिये व्रतचारी तो है नहीं, जबतक अग्न्याधान नहीं करता उस समय तक मनुष्य रहता है। अतः इच्छा हो तो रात में भोजन कर ले ॥२

कुछ लोग बकरे को बांध लेते हैं। बकरा अग्नि का है। और यह काम अग्नि के सर्वत्व अर्थात् पूर्ति के लिये किया जाता है। परन्तु उसे ऐसा नहीं करना चाहिये। जिसके पास बकरा हो वह प्रातः काल आग्नीत् (आग्नीध्र) को दे दे, उसी से काम चल जायगा। इसलिये इस प्रथा का आदर न करे ॥३

अब ४ जनों के योग्य भात पकाते हैं कि इससे छन्दों को प्रसन्न करें। जैसे जिस वाहन से जाते हैं उसे तय्यार रहने के लिए बोलते हैं ऐसे ही। किन्तु ऐसा न करे। ऋत्विज-अनृत्विज ब्राह्मण इसके कुल में बसते हैं— इसीसे कामना पूरी हो जाती है अतः इस प्रथा का आदर न करे।। ४

उस भात में घी सींच कर पीपल की ३ समिधायें घी में डुबाकर समिधा और घृत शब्दवाली ३ ऋचाओं से आधान करता है। शमी-गर्भ-फल इस से पायें—यह बोलता हुआ यदि १ वर्ष तक सामिदा-धान करे तभी यह फल पाये अतः इस बात का आदर न करे ।।५

याज्ञवल्क्यका कथन है कि जैसे कोई एक कार्य करते हुए अन्य कार्य करे या कुछ बोलते हुए अन्य बोल जाय ऐसे ही यह अपराध ही है कि जिस आग में ऋक्-यजु-साम से समिधा या आहुति दें उसीको दक्षिण ले जायँ या बुझा दें (अन्वाहार्य-पचन के लिए आग दक्षिण में ले जाते और बाद में बुझा देते हैं ।।६

अब जागरण में देव जागते हैं। अतः वह देवों के पास हो जाता है, तथा अधिक देव, श्रान्त और तपस्वी बनकर आधान करता है। चाहे तो सो भी जाय क्योंकि अनाहिताग्नि व्रतचारी नहीं, साधारण मनुष्य ही है अत इच्छानुसार सो सकता है ।।७

कुछ लोग सूर्यके उदय से पूर्व अग्नि मथकर उदय के बाद पूर्व की ओर लेजाते हैं जिससे रात-दिन का, प्राण-उदान तथा मन-वाणी का काम चल जाय, परन्तु ऐसा न करे, क्योंकि इससे दोनों अग्नियों का अनुदित में आधान हो जायगा। उदय-पश्चात् मन्थन से भी यह कार्य हो सकता है ।।८

देव दिन हैं पितर पाप-शून्य नहीं। पितरों (ऋतुओं) के पाप नहीं छूटे। पितर मरण-शील हैं। सूर्योदय से पूर्व अग्नि-मन्थन करने-वाला आयु से पूर्व मरता है। देव निष्पाप अमर हैं। उदय-पश्चात् मन्थन करनेवाला अमर नहीं, फिर भी पूर्णायु पाता है, देव श्री तथा यश हैं, अतः वह श्री-यश को पाता है, जो यह जानकर उदय होने पर मन्थन करता है ।।९

कहते हैं कि यदि ऋक्-साम-यजु से आधान न किया जाय तो किससे किया जाय? (उत्तर—) यह अग्नि ब्रह्म की है, अतः उसी से आधान होता है। वाणी तथा सत्य ही ब्रह्म है, उसी की यह है, सत्य ही ये व्याहृतियाँ हैं अतः सत्य से ही आधान होता है ।। १०

प्रजापति ने भूः से इस पृथ्वी को, भुवः से अन्तरिक्ष को और स्वः से द्यौ को उत्पन्न किया। जितने ये लोक हैं उतना ही यह सब है, उसी सब से आधान किया जाता है ।। ११

शतपथ ब्राह्मण २.१.४

प्रजापति ने भूः से ब्राह्मण उत्पन्न किये, भुवः से क्षत्रिय और स्वः से वैश्य। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही सब जगत् हैं, इसलिए सब से ही आधान किया जाता है ॥१२

प्रजापति ने भूः से आत्मा को, भुवः से प्रजा को और स्वः से पशुओं को उत्पन्न किया। ये आत्मा, प्रजा तथा पशु ही सब जगत् है इसलिए सब से ही आधान किया जाता है ॥१३

वह भूर्भुवः से ही गार्हपत्य अग्नि का आधान करता है। यदि सब (तीनों व्याहृतियों) से आधान करे तो आहवनीय का आधान किससे करे ? इसलिये दो अक्षर (स्वः) छोड़ देता है। इससे (शेष तीन अक्षर) अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं। इन पाँचों अक्षरों से आहवनीय का आधान करता है। इस प्रकार आठ अक्षर हो जाते हैं। गायत्री में भी आठ-अक्षर होते हैं। गायत्री अग्नि का छन्द है। इस प्रकार वह अग्नि का आधान (अग्नि के ही) छन्द से करता है ॥१४

देवों ने अग्नियों का आधान करना चाहा। असुर और राक्षसों ने उनको रोका और कहा— अग्नि उत्पन्न न होगी, अग्नि का आधान मत करो। क्योंकि उन्होंने रोका (अरक्षन्) इसलिए रक्ष् धातु से उनका नाम राक्षस पड़ा ॥१५

तब देवों ने इस वज्र अर्थात् अश्व को देखा। उन्होंने उसको सामने खड़ा कर लिया, और उसके भय-रहित, शत्रु-रहित संरक्षण में अग्नि को उत्पन्न किया। इसलिए जहाँ अग्नि को मथना हो वहाँ अश्व को ले जाओ; ऐसा अध्वर्यु (अग्नीध्र को) बोले। वह सामने खड़ा होता है। वज्र को उठाता है उसके भयरहित और शत्रु-शून्य संरक्षण में अग्नि उत्पन्न होती है ॥१६

इसको पूर्णवाट् [पूर्ण को चलने वाला अगुआ युवा घोड़ा] होना चाहिए। क्योंकि इसमें अपरिमित वीर्य होता है। यदि पूर्णवाट् अश्व न मिले तो जैसा अश्व मिले वही सही। यदि अश्व न मिले तो अनड्वान् (बैल) ही ले ले। क्योंकि यह अग्नि बैल का बन्धु है ॥१७

और जब वह इसी अग्नि को पूर्व की ओर ले जाते हैं तो आगे-आगे घोड़े को ले जाते हैं। इस प्रकार आगे-आगे चलकर वह दुष्ट राक्षसों को हटाता चलता है। और वे इस अग्निको (आहवनीय तक) बिना भय और बिना शत्रु के ले जाते हैं ॥१८

इस अग्नि को इस प्रकार ले जायें कि उसका मुंह यजमान की ओर

रहे। यह अग्नि ही यज्ञ है। यजमान की ओर ही यज्ञ प्रविष्ट होता है उसी की ओर यज्ञ शीघ्र झुक जाता है। और जिसकी ओर से यह अग्नि मुंह फेर लेता है उसकी ओर से यज्ञ भी मुंह फेर लेता है। यदि कोई किसी को दुर्वाक्य कहे कि यज्ञ तुझसे मुंह फेर ले तो उसका ऐसा ही हो जाय ॥१९

यह अग्नि प्राण है। इस अग्नि को इस प्रकार से लें जाये कि इसका मुंह यजमान की ओर रहे। क्योंकि उधर से हीं प्राण घुसता है। यदि अग्नि किसी की ओर से मुंह फेर लेता है तो प्राण भी उससे मुंह फेर लेंना है। यदि कोई किसी से दुर्वाक्य कहे कि प्राण तुझ से मुंह फेर ले तो ऐसा ही हो जाय ॥२०

यहीं पवन यज्ञ है। इस अग्नि को इस तरह ले जायें कि उसका मुंह यजमान की ओर रहे। क्योंकि इसी की ओर यज्ञ प्रवेश करता है, इसी की ओर झुक जाता है। जिसकी ओर से यह अग्नि मुंह फेर लेता है, उसकी ओर से यज्ञ भी मुंह फेर लेते हैं। यदि कोई किसी से दुर्वाक्य कहे कि यज्ञ तुझ से मुंह फेर ले तो ऐसा ही हो जाय ॥२१

यह अग्नि प्राण है। इस अग्नि को इस प्रकार लें जाये कि इसका मुंह यजमान की ओर रहे क्योंकि इधर से ही प्राण घुसता है। यदि अग्नि किसी से मुंह फेर लेता है तो प्राण भी उससे मुंह फेर लेता है। यदि कोई किसी से दुर्वाक्य कहे कि प्राण उससे मुंह फेर ले तो ऐसा ही हो जाय। इसलिये अग्नि को वे इस प्रकार से ले जायँ ॥२२

अब अध्वर्यु अश्व को आहवनीय की ओर ले जाता है। जब वह वहाँ पहुँच गया तो वह उसे पूर्व की ओर ले जाता है। [बायीं ओर से दाहिनी ओर] घुमाता है। और पश्चिम-मुख खड़ा कर देता है। अश्व वीर्य है। वह अश्व को फिर इस प्रकार घुमाता है कि वीर्य उस की ओर से मुंह न मोड़े ॥२३

वह अग्नि को अश्व के पद-चिह्न पर रखता है। अश्व वीर्य है। इस प्रकार वीर्य में वह इस अग्निको रखता है। इसीलिए अश्व के पद-चिह्न में वह अग्नि को रखता है ॥२४

पहले वह चुपके से अग्नि के पद-चिह्न को छूता है। फिर वह उस को उठाता है तथा फिर छूता है। फिर तीसरी बार रख देता है यह मन्त्रांश पढ़ कर— भूर्भुवः स्वः। [य० ३.५]

तीन ही लोक हैं। इस प्रकार यह इन लोकोंको प्राप्त होता है। यह अग्न्याधान की एक विधि है ॥२५

दूसरी विधि यह है कि चुपके से पहले छुए, फिर उठावे फिर दूसरी

द्वारमें ही भूर्भुवः से आधान करदे। बिना भूमिपर पैर जमाये जो भार उठाता है वह उसे उठा नहीं सकता, वह ई। दबा देता है ॥२६

चुपचाप स्पर्श पृथ्वी पर पैर जमाना है। वह आधान करता है तथा व्यथित नहीं होता। आसुरि, पाङ्गिच और माधुक्कि इसे कुछ पीछे हटाकर रखते थे। अन्य सब वस्तुएँ हट सी जाती हैं अतः पूर्व ही उठ अर भूर्भुवः से आधान करे। किन्तु जैसा चाहे करे ॥२७

अब सामने आ जलती समिधाओं का पूर्वार्ध पकड़ कर जपता है—

द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। (य ३.५)

जैसे यह द्यौ नक्षत्रोंसे बड़ी तथा पृथिवी विस्तृत है वैसा मैं होऊँ।

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ (य ३.५)

हे देवयज्ञ के योग्य पृथिवि, उस तेरी पीठ पर अन्न के खाने वाले अग्नि को अन्न की प्राप्ति के लिए रखता हूं। अग्नि अन्नाद है, मैं भी अन्नाद होऊँ। यह आशीर्वाद है। चाहे जपे चाहे नहीं ॥२८

अब सर्पराज्ञी ऋचाओं से उपस्थान करता है—

आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरम्पुरः। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥
त्रिंशद्धाम विराजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥
यजु ३.६-८; ऋ १०-१८९-१-३

अर्थ— यह जल-सहित पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा किया करती है। इसके प्राण से आगे बढ़ती हुई चमकते अन्तरिक्ष के अन्दर चलती है। महान् के द्वारा द्यौ की व्याख्या करती है। यह ३० धामों में विराजती है। प्रतिदिन प्रकाशों के साथ वाणी सूर्यके लिए धारण की जाती है।

इनको इसलिए जपता है कि यूप की तय्यारी, या नक्षत्रों या ऋतुओं या आधान से जो मिलता है वह इससे मिल जाता है।

कुछ कहते है कि सर्पराज्ञी ऋचाओंकी आवश्यकता नहीं; यह पृथ्वी ही सर्पराज्ञी है। इसपर अग्न्याधान से सब कामनाओं की पूर्ति हो जाती है ॥ ३०

—ॐ—

अध्याय २ ब्राह्मण १

आहवनीय को प्रज्वलित कर वह पूर्णाहुति देता है। इससे वह स्वयं को अन्नाद बनाता है। अतः इस अन्नाद्य को प्रकट करता है जैसे कि उत्पन्न हुए कुमार या बछड़े के लिए स्तन पिलाते हैं ॥ १

इस अन्न से शान्त अग्नि बाद की हवियों को पकाती हुई शान्त रहती है। यदि पूरी आहुति न जाय तो आग अध्वर्यु-यजमान को जला दे क्योंकि वे इसके पास चलते हैं, अतः पूरी आहुति देता है ॥२

वह पूरी आहुति देता है क्योंकि वह सर्व है जिससे शान्त करता है। स्वाहा कहकर होम करता है। स्वाहा-सर्व दोनों अनिरुक्त हैं अत; सर्व से ही इसको शान्त करता है ॥३

प्रजापति ने पहली आहुति स्वाहा कहकर दी, यह भी स्वाहा कहकर देता है। उसमें वर देता है। वर ही सर्व है। उसी से वह शान्त करता है ॥ ४

कहते हैं कि इसको देकर आगे की हवियों का आदर न करे। इसी से उस कामना को पा लेता है जिस के लिए अन्य हवियाँ देता है ॥५

वह पवमान अग्नि के लिए आहुति देता है। प्राण निश्चयपूर्वक पवमान है जिसे वह उसमें धारण कराता है। अन्न ही प्राण और यह आहुति है ॥ ६

अब यह अध्वर्यु पावक अग्नि के लिए आहुति देता है। अन्न ही पावक है जिसको वह इसमें इससे धारण कराता है। यही प्रत्यक्ष अन्न आहुति है ॥ ७

अब शुचि अग्निके लिए आहुति देता है। यह जो उसकी ज्वाला है वही शुचि वीर्य है जिसको वह इससे इसमें धारण कराता है। जब वह आहुति देता है तब इसका शुचि वीर्य उज्ज्वल होता है ॥८

इसलिए कहते हैं कि इसीको देकर अन्य हवियों का आदर न करे। इसी से उस कामना को पाता है जिसके लिए आगेकी हुति है। किन्तु वे भी देनी ही चाहिए, इससे जो परोक्ष है वह प्रत्यक्ष हो जाता है ॥९

पवमानके लिए आहुति इसलिए कि प्राण ही पवमान है। जब उत्पन्न होता तभी प्राण आता है, जब तक नहीं उत्पन्न होता तब तक माता के ही प्राण से जीता है ॥ १०

पावक के लिए इसलिए, क्योंकि अन्न ही पावक है जो इसको उत्पन्न होते ही दिया जाता है ॥११

शुचि के लिये इसलिए क्योंकि अन्न से शुचि वीर्य बनता है, अतः शुचि के लिए आहुति देकर, वह इससे इसको वीर्य धारण कराता है ॥११

सो यही विपर्यस्त सा है। अग्नि जहां देवों से मनुष्यों के पास आया तो चाहा कि मैं अपने सभी रूपों से मनुष्यों के पास न आऊँ ॥१३

उसने ३ शरीर इन लोकों मे रक्खे—पवमान पृथ्वीमें, पावक अन्तरिक्ष में, शुचि द्यौ में। जो भी ऋषि तब थे वे जान गये कि अग्नि हम तक अपूर्ण रूप से आया है। अतः ये हवियां तय्यार कीं ॥१४

अध्वर्यु पवमान की आहुति से वह रूप पाता है जो पृथ्वीमें है. पावक की आहुति से अन्तरिक्षस्थ अग्नि के रूप को और शुचि की आहुति से द्यौ में स्थित अग्नि के रूप को पाता है। इस तरह सम्पूर्ण अग्नि बिना छिपी का आधान करता है। अतः उसको आगे की हवियां देनी ही चाहिए। १५

प्रथम हवि एक वर्हि होता है। बाद की दोनोंमें एक ही बर्हि समान हवि होता है। यह लोक प्रथम हवि, अन्तरिक्ष द्वियीय तथा द्यौ ही तृतीय है यह पृथिवी बहुल। (दृढ़ स्थिर) सी, अन्तरिक्ष–द्यौ लेलया (कांपते) से हैं। दोनों इस के समान उद्यामी हो जायें अतः दोनों की एक वर्हि है ॥१६

सब पुरोडाश ८ कपालों वाले होते हैं। गायत्री–चरण में ८ अक्षर होते हैं। वह अग्नि का छन्द है। वे सब मिलकर २४ कपाल हो जाते हैं। २४ अक्षरों की गायत्री है। अतः उसी के छन्द के द्वारा आधान करता है ॥ १७

अब अदिति के लिए चरु देता है मानो इस लोक से प्रच्यावित होकर इन लोकों पर चढ़ता जाताहै ॥१८

वह जो अदिति के लिए चरु देता है वह यही पृथिवी अदिति है यही प्रतिष्ठा है। वह इसींमें प्रतिष्ठित होता है। अतः अदिति के लिए चरु देता है ॥ १९

कहते हैं कि उसके लिए दो विराट छन्द संयाज्य हों, क्योंकि यह विराड्ढी है। अथवा दो त्रिष्टुप् या जगती हों क्योंकि यह त्रिष्टुभी या जगती है। परन्तु विराट ही होने चाहिए ॥ २०

उस के लिए धेनु दक्षिणा है। गौ के समान यह मनुष्यों के लिए सब कामनाओं को दुहता है। गौ मां है। मां के समान यह मनुष्यों को पालती है। अतः धेनु दक्षिणा है। यह एक विधि हुई ॥ २१

अब यह दूसरी– आग्नेय अष्टाकपाल पुरोडाश देता है मानो परोक्ष में यह पवमान–पावक–शुचि के लिए है, और शीघ्र ही प्रत्यक्ष अग्नि का आधान करता है, फिर अग्नि-अदिति को पूर्ववत चरु देता है ॥२२ ❀

अध्याय २ ब्राह्मण २

इस यज्ञ को गति देते हैं जब उसका विस्तार करते, सोम निचोड़ते, पशु की ताड़ना करते, विशेष शासनकरते, हवि ऊखल-मूसल-सिलवट्टों से कूटते हैं ।।१

गतियुक्त वह दक्ष नहीं रहा, तब देवों ने इसे दक्षिणाओं से दक्ष किया। इसी से दक्षिणा नाम है। जो कुछ यहाँ यज्ञ में कमी होती है उसको वह दक्षिणाओं से पूर्ण करता है। तब यज्ञ समृद्ध होता है। इसी लिए दक्षिणा देता है ।। २

६ गौ देनी चाहिए। संवत्सर यज्ञ प्रजापति की ६ ऋतुएँ होती हैं। जितना ही यज्ञ और जितनी इसकी मात्रा, उतनी दक्षिणाओं से दक्ष बनाता है ।। ३

या १२ गौ दे। संवत्सरके १२ मास हैं, वह यज्ञ प्रजापति है. वह जितना ही यज्ञ और जितनी इसकी मात्रा, उतनी से दक्ष बनाता है ।।४

या २४ गौएँ दे। संवत्सर के २४ अर्धमास (पक्ष) हैं, वह यज्ञ प्रजापति है। वह जितनाही यज्ञ, जितनी इसकी मात्रा उतनी से दक्ष बनाताहै। यह दक्षिणाओं की मात्रा है। श्रद्धानुसार अधिक भी दे ही जब दक्षिणा दे क्योंकि- ।।५

दो प्रकार के देव हैं; देव और मनुष्यदेव जो ब्राह्मण वेदज्ञ उपदेशक हैं। यज्ञ दो प्रकार विभक्त है- आहुतियाँ ही देवों की, दक्षिणा मनुष्य-देवों की। आहुतियोंसे देवोंको और दक्षिणाओंसे मनुष्यदेवोंको प्रसन्न करता है। दोनों प्रसन्न हो उसको अमृत में रखते हैं ।। ६

जैसे योनि में वीर्य; वैसे ही लोक में यजमान को ऋत्विज रखते हैं तब जब कि इनके लिए यह देता है। यह दक्षिणाओं की बात हुई ।।७

देव-असुर दोनों प्राजापत्य स्पर्द्धा करते थे। वे दोनों ही अनात्मा मर्त्य थे। मर्त्य अनात्मा है। दोनों मर्त्यों में अग्नि ही अमृत था। दोनों अमृत का सहारा लेते हैं। वह इनमें जिनको मारता वही मर जाता है ।। ८

तब देव निर्बल के समान हो गये। वे अर्चा-श्रम करते हुए विचरते रहे, हम असुर-शत्रु-मर्त्यों को पराजित करें—यह सोच कर उन्होंने यह अमृत अग्न्याधेय देखा ।।९

वे बोले— अरे! यह अमृत अन्तरात्मा में रख अमर-बली होकर बली-शत्रु-मर्त्यों को पराजित करें ।। १०

वे बोले-- यह अग्नि हम दोनों के पास है। अतः असुरों से प्रत्यक्ष सामने बोलें ॥११

वे बोले--हम दोनों(आत्मिक-भौतिक)अग्नियोंका आधान करेंगे तब क्या करोगे? ॥१२

वे बोले—हम इसका आधान कर कहेंगे कि यहाँ तिनके यहाँ लकड़ी जला। यहाँ भात पका। जिसे असुरों ने रक्खा उसी से मनुष्य खाना पकाते हैं॥ १३

तब देवों ने इस (दूसरी) अग्नि (परमात्मा) को अन्तरात्मा में धारण कर अमृत-बली होकर बली-शत्रु-मर्त्य असुरों को जीता। वैसे ही यह भी अमर(ईश्वर) को आत्मा में धारण कर, यद्यपि अमरता की आशा नहीं तथापि पूर्णआयु पाता, अजेय होता और यत्न करके भी शत्रु उसको जीत नहीं सकते। अतः अनाहिताग्नि से स्पर्द्धा में आहिताग्नि की जीत होती है क्योंकि वह अजेय-अमर होता है॥ १४

उसे मथ कर जलाता है। उत्पन्न हुई को फूँकता है। प्राण ही अग्नि है। उत्पन्न को फिर उत्पन्न करता है। प्राणायाम कर ईश्वर को आत्मा में धारण करता है। वह वहाँ आहित हो जाती है॥१५

उसे जलाकर उद्दीप्त करता है कि इससे यज्ञ-पुण्य करूंगा। इस तरह आत्मा में स्थापित अग्नि को दीप्त करता है॥१६

कोई विघ्न होजाय या अग्नि बुझ जाय- ऐसा नहीं। किन्तु जीवन-पर्यन्त कोई इसके बीच में नही आ सकता जिसकी आत्मा में अग्नि है। जब तक जीता है वह बुझ नहीं सकती। इसलिए उसे भय न करना चाहिये॥ १७

ये अग्नियाँ प्राण ही हैं- आहवनीय प्राण, गार्हपत्य उदान, अन्वाहार्य पचन व्यान है॥ १८

इस अग्न्याधेय का उपचार सत्य ही है। सत्य बोलने वाला मानो अग्नि घी से सींचता है। इस तरह वह उसे उद्दीप्त करता है, उसका बहुत बहुत तेज बढ़ता तथा दिन-प्रति-दिन कल्याण होता है। जो झूट बोलता है वह मानो जलती आग पर पानी डालता है। वह इसे कमजोर करता है, उसका तेज कम-कम होता जाता तथा दिन-प्रति-दिन पापी होता है, अतःसत्य ही बोले॥१९

औपवेशि अरुण से उसके बान्धवों ने कहा— आप वृद्ध हैं। दोनों अग्नियों का आधान कीजिए। उसने उत्तर दिया— ऐसा मत कहो, मौन रहो। आहिताग्नि को झूट न बोलना चाहिए। न बोलता हुआ कभी झूट न बोले। अतः सत्य ही उपचार है॥२०

ब्राह्मणम् ॥६॥[२.२]॥ प्रथमः प्रपाठकः॥ कण्डिकासंख्या ११४॥

—❀—

अध्याय २ ब्राह्मण ३ पुनराधेयम्

वरुणने अग्निका राज्यकी कामनासे आधान किया, उसने राज्य पा लिया। चाहे कोई जाने या न जाने, लोग उसको वरुणराजा कहते हैं। सोम ने यश की कामना से आधान किया, वह यशस्वी हो गया। चाहे कोई लाभ करे या न करे, दोनो ही यशस्वी होते हैं क्योंकि लोग यश देखने ही आते हैं। जो यह समझकर आधान करता है वह यशस्वी होता तथा राज्य पाता है ॥ १

देवों ने ग्राम-अरण्य-सम्बन्धी सब रूपों को अग्नि के लिए सौंप दिया। चाहे विजाय की इच्छा से चाहे स्वतन्त्र विचरने की इच्छासे चाहे यह सोचकर कि यह रक्षक है रक्षा करेगा ॥२

अग्नि को उनका लोभ होगया, वह इन्हें एकत्र करके ऋतुओंमें छिप गया। देवों ने सोचा कि वहीं चलें जहां वह छिपा था, वे वहीं गये। वे निराश हो गये कि क्या करें ॥ ३

तब त्वष्टा ने पुनराधेय (फिर रक्खी हुई) अग्नि देखी, उसका आधान किया उससे अग्निके प्रिय धाम पहुँच गया। उसने इसके लिए ग्राम्य-आरण्य दोनों रूप छोड़ दिये, अतः इन रूपों को त्वाष्ट कहते हैं। सभी रूप त्वष्टाके साथ होते हैं। अन्य प्रजा जैसी-तैसी रहती है ॥ ४

अतः त्वष्टा केलिए ही पुनराधेय करे। इसी तरह वह अग्नि का प्रिय धाम पाता है। वह इसके लिए ग्राम्य-आरण्य दोनों रूप छोड़ देती है। उस में ये ही दोनो रूप दिखाई पड़ते है। उसको वृद्धि पर नोा [illegible] करते हैं। [illegible] होता है ॥५

शतपथ अध्याय २ ब्राह्मण ३

यह यज्ञ अग्नि का है। अग्नि ज्योति है। यह पापों को जलाती है। यह उस यजमान के पापों को भी जलाती है। यही ज्योति श्री और यश देने वाली होती है। ज्योति दूसरे लोक में पुण्य का मार्ग बनाती है। अतः पुनः आधान करना चाहिए॥६

वर्षा में पुनराधान करे। वर्षा ही सब ऋतुओं की प्रतिनिधि है। वर्षा ही सब ऋतुयें हैं। इसीलिए कहते हैं कि अमुक वर्ष में यह काम किया। वर्षा सब ऋतुओं का एक रूप है। जब कहते हैं 'यह ग्रीष्म सा है' तो यह वर्षा में ही है तथा जब कहता है कि–'आज शिशिर सा है' तो यह भी वर्षा ही है। वर्ष से ही वर्षा है॥७

वर्षा का एक परोक्षरूप है। जब वह पूर्व से बहता है तो वसन्त का रूप है, जो गरजता है वह ग्रीष्म का, जो बरसता है वह वर्षा का, जो बिजली चमकती है वह शरद् का, जब बरस कर बन्द हो जाता है वह हेमन्त का। वर्षा सब ऋतुयें हैं। वह अग्नि ऋतुओं में ही प्रविष्ट हो गई। अतः ऋतुओं में से ही इसका निर्माण करते हैं॥८

लेकिन आदित्य भी सब ऋतुएं हैं। जब उदय होता है तब बसन्त, जब संगव होता है (जब गायें दुहने के लिए इकट्ठी की जाती हैं) तब ग्रीष्म, जब दोपहर होता है तब वर्षा, तीसरा पहर शरद्, जब अस्त होता है तब हेमन्त। इसलिए दोपहर के समय ही पुनराधान करे। क्योंकि उस समय सूर्य इस लोक के निकटतम होता है तथा इसलिए वह मध्य से ही अग्नि का निर्माण करता है॥९

यह पुरुष छाया के समान पाप से लिप्त है। दोपहर के समय यह छाया सबसे छोटी होती है। पैर के नीचे ही सिकुड़ जाती है। इस प्रकार वह पाप को सबसे छोटा कर देता है। अतः दोपहर में पुनराधान करे॥१०

वह गार्हपत्य में से दर्भों को निकालता है। पहले वह लकड़ी से निकालता है। पहले भी दारु (लकड़ी) से निकाले और फिर भी दारु से, तो दुहराने का दोषी हो और विघ्न पड़े। जल ही दर्भ है और जल ही वर्षा है। अग्नि ऋतुओं में प्रविष्ट हो गया इसलिए वह उसे जलों के द्वारा ही निकालता है अतः दर्भों के द्वारा निकालता है॥११

भात पकाकर वह दो आक के पत्तों पर रखता है, और उसको उस जगह रखता है जहाँ गार्हपत्य अग्नि रखती है फिर गार्हपत्य अग्नि की स्थापना कर देता है॥१२

जौ के अपूप (पूये) पकाकर दो आक के पत्तों पर रख कर उस जगह रखता है जहाँ आहवनीय स्थापित करनी होती है और आहवनीय को स्थापित कर देता है। कुछ लोग कहते हैं कि हम इस प्रकार पहली दो अग्नियों से इसको ढक देते हैं। परन्तु ऐसा न करे क्योंकि यह रातों के द्वारा ढकी जाती हैं ।।१३

अब पाँच कपालों पर पुरोडाश को अग्नि के लिए तैयार करता है। इसके आज्य और अनुवाक्य पंक्ति छन्द के पाँच-पाँच पद वाले होते हैं। पाँच ही ऋतुएं हैं। अग्नि ऋतुओं में घुसा था। अतः ऋतुओं से ही इसको निकालता है ।।१४

यह सब यज्ञ अग्नि का होता है। क्योंकि इसी से त्वष्टा अग्नि के प्रियधाम में घुसा। इसलिये यह सब अग्नि का होता है ।।१५

इसे चुपके-चुपके करते हैं। किसी सम्बन्धी या सखा के लिए जब कोई कुछ बनाना चाहता है तो छिपाकर रखता है। अन्य यज्ञ विश्वेदेवों का होता है और यह यज्ञ केवल अग्नि का ही है। जो छिपाकर किया जाता है वह चुपके से किया जाता है। अतः वह इसको चुपके चुपके करते हैं ।।१६

अन्तिम अनुयाज को जोर से बोलते हैं। क्योंकि तब कार्य समाप्त हो जाता है। जब कार्य हो चुकता है तो उसे सभी जान जाते हैं ।।१७

वह पुकार कर (और आग्नीध्र द्वारा उत्तर दिये जाने के पश्चात् होतृ से) कहता है– समिधाओं का यज्ञ करो। वह अग्नि का परोक्ष रूप है। लेकिन उसको यह भी कहना चाहिए कि–अग्नियों का यज्ञ करो। क्योंकि वह अग्नियों का प्रत्यक्ष रूप है ।।१८

अब वह पढ़ता है–१. अग्नऽआज्यस्य व्यन्तु वौभक्। हे अग्नि! यह समिधाएं घी को ग्रहण करें। वौक्षक्। २. अग्निमाज्यस्य वेतु वौभक्। (तनूनपात्) आज्य की अग्नि को स्वीकार करे वौक्षक्। ३. अग्निमाज्यस्य व्यन्तु वौभक्। वे इडा अग्नि के द्वारा आज्य को स्वीकार करें, वौभक्। ४. अग्निराज्यस्य वेतु वौभक्। अग्नि को स्वीकार करे, वौभक् ।।१९

अब कहता है– स्वाहाग्निम्। आग्नेय आज्य भाग के लिये। यदि पवमान के लिये आधान करे तो कहे– स्वाहा अग्निं पवमानम्। यदि इन्दुमान अग्नि के लिये आधान करे तो कहे–स्वाहाग्निमिन्दुमन्तम्। स्वाहाग्निम्, स्वाहाग्नीनाज्यपान् जुषाणोऽग्निराज्यस्य वेतु। यह होता पढ़ता है ।।२०

आग्नेय आज्यभाग के सम्बन्ध में अध्वर्यु कहता है–अग्नयेऽनुब्रूहि।

अग्नि के लिए पढ़ो। तब होता पढ़ता है— अग्निं स्तोमेन बोधय, समिधानोऽमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत्। 'स्तुति द्वारा अग्नि को जगाओ' जो अमरत्व को प्रज्वलित करता है, जिससे यह अग्नि हमारे हवियों को देवताओं तक ले जावे'। जब अग्नि अपने स्थान से निकल जाता है तो सोता सा है। अब ऋत्विज उसे जगाता है। अब वह पढ़ता है— जुषाणोऽग्निराज्यस्य वेतु। अर्थात् अग्नि कृपा करके आज्य को ग्रहण करे ॥२१ (प्रथम मन्त्र ऋ० ५.१४.१, दूसरा य० २१.१५)

यदि अग्नि-पवमान के लिए आधान करना हो तो कहे- अग्नये पवमानाय अनुब्रूहि। 'पवमान अग्नि की स्तुति करो।' तब होता पढ़े—

अग्नऽआयूंषि पवसऽआसुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम ॥ [ऋग्वेद ९-६६-१९; य० १९.३८]

हे अग्नि! तू आयु को पवित्र करती है। हमारे लिए अन्न तथा रस उत्पन्न करो। विपत्तियों को हमसे दूर करो'। इस प्रकार यह अग्नि-युक्त हो जाता है। सोम पवमान है। लेकिन इसको वह सोम के आज्य भाग से निकालते हैं। अब वह पढ़ता है- जुषाणोऽग्निः पवमान आज्यस्य वेतु। 'अग्नि पवमान प्रसन्न होकर आज्य स्वीकार करे॥२२

यदि वह इन्दुमान् अग्नि के लिये आधान करे तो कहता है— अग्नयेऽइन्दुमतेऽनुब्रूहि। 'इन्दुमान् अग्नि के लिए प्रार्थना करो'। तब होता पढ़े-

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभि;।
(य० २६.१३, ऋ० ६.१६.१६

हे अग्नि आ। मैं प्रार्थनायें तेरे लिए करूंगा। इन इन्दुओं (बूंदों) से बढ़। इस प्रकार वह अग्नि का सम्बन्धी हो जाता है। सोम ही इन्दु है, सोम आज्य-भाग से लाते हैं, इसलिए पढ़ता है- जुषाणोऽग्निरिन्दुमानाज्यस्य वेतु। अग्नि इन्दुमान् प्रसन्न होकर आज्य को स्वीकार करे'. इस प्रकार वह इन सबको अग्नि-युक्तकर देता है॥२३

अब वह हवियों के विषय में कहता है— अग्नयेऽनुब्रूहि. 'अग्नि की प्रार्थना करो, अग्निं यज, 'अग्नि का यज्ञ करो अग्नये स्विष्टकृते ऽनुब्रूहि, 'स्विष्टकृत की प्रार्थना करो, अग्निं स्विष्टकृतं यज। 'अग्नि स्विष्टकृतका यज्ञकर। पुनः कहे- देवान् यज, देवोंका यज्ञकर। अग्नीन् यज, अग्नियों का यज्ञ करो ॥२४

अब वह प्रार्थना करता है- अग्नेर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु वौक्ष्क्। वहि अग्नि की वृद्धि के लिए वसुधा को ग्रहण करे, वौक्ष्क्

अग्नाऽउ वसुधेयस्य वेतु वौक्क् । नराशंस अग्नि में वृद्धि के लिए वसुधा को स्वीकार करे, वौक्क् । देवो अग्निः स्विष्टकृत् । 'देव अग्नि स्विष्टकृत्' । यह तीसरी प्रार्थना स्वयं अग्नि की ही है । इस प्रकार सब अनुयाजों को अग्नि का कर देता है ॥२५

यह छः विभक्तियाँ हैं, चार प्रयाज में और दो अनुयाजों में । छः ऋतुएं होती हैं । अग्नि ऋतुओं में प्रविष्ट हुआ था । इस प्रकार ऋतुओं से उसका निर्माण करता है ॥२६

इन छः विभक्तियों में १२ या १३ अक्षर होते हैं । वर्ष में १२ या १३ महीने होते हैं । अग्नि ऋतुओं (वर्ष) में प्रविष्ट हुआ था । इस प्रकार ऋतुओं में अर्थात् संवत्सर से उसका निर्माण करता है । दुहराने के दोष से बचने के लिए दो एक से नहीं होते । यदि दो एक से हों तो दुहराने का दोष लगे । इसलिए प्रयाजों में कहते हैं—व्यन्तु या वेतु । तथा अनुयाजों में कहते हैं—वसुवने वसुधेयस्य ॥२७

इसकी दक्षिणा है स्वर्ण । यह यज्ञ अग्नि का है तथा स्वर्ण अग्नि का रेत (वीर्य) है । इसलिए स्वर्ण दक्षिणा है । या बैल, क्योंकि बैल का कन्धा अग्नि का होता है । इसका कन्धा अग्नि से दग्ध सा हो जाता है । दूसरे, अग्नि देवों का बोझ ढोने वाला है, तथा बैल मनुष्यों का बोझ ढोने वाला है । इसलिए बैल दक्षिणा (में दिया जाता है) ॥२८

अ० २ ब्राह्मण ९ अग्निहोत्रम्

पहले एक प्रजापति ही था । उसने सोचा, मैं कैसे उत्पन्न होऊँ ? उसने श्रम और तप किया । उसने मुखसे अग्नि उत्पन्न की । क्योंकि उसे मुख से उत्पन्न किया इसलिए अग्नि अन्न का खाने वाला है । जो इस प्रकार अग्नि को अन्न का खाने वाला जानता है वह अन्न का खाने वाला होता है ॥१

इस अग्नि को देवों से पहले उत्पन्न किया था, इसलिए अग्नि का अग्रि नाम है । अग्नि तथा अग्रि एक ही बात है । वह उत्पन्न होकर पूर्व की ओर अर्थात् आगे गया । जो पहले पूर्व जाता है उसको कहते हैं आगे (अग्रे) गया । यही अग्नि की अग्निता है ॥२

प्रजापति ने सोचा कि मैंने इस अग्नि को अपना अन्न खाने वाला बनाया है । तथा मुझे छोड़कर और कोई अन्न है ही नहीं । तथा मुझे वह खायेगा नहीं । उस समय पृथ्वी गंजी थी । न ओषधियाँ थीं, न वनस्पतियाँ । उसको इसी बात का सोच था ॥३

अब अग्नि उसकी ओर मुंह फैलाकर दौड़ी । वह डर गया तथा उसकी महिमा चली गई । वाणी ही उसकी महिमा है। यह वाणी ही चली गयी। उसने अपने में ही आहुति की इच्छा की। और हाथ मले। क्योंकि हाथ मले इसीलिए यह हथेलियां लोमरहित होती है। अब उसने घी की आहुति या दूध की आहुति ली। यह दोनों दूध ही तो हैं। ४

वह उसे पसन्द न आयी क्योंकि वह बालों से मिली हुई सी थी। उसने उसे यह कहकर- ओष धय। 'जलते हुए खा' आग में डाल दिया। इससे ओषधि उत्पन्न हुई। इसलिए उनका नाम 'ओषधि' है। अब फिर उसने विचार किया। तब दूसरी आहुति मिली। घी की आहुति या दूध की आहुति। ये दोनों दू . ही तो हैं। ५

वह उसको पसन्द आ गई। उसे संकोच हुआ, इसे आग में छोड़ूं या न छोड़ूं। उसकी महिमा ने कहा, आहुति दे। प्रजापति ने जाना यह तो मेरी ही (स्वा) महिमा है जो कह रही है (आह)। इसलिए उसने स्वाहा कहकर आहुति दे दी। अतः स्वाहा कहकर आहुति दी जाती है। अब वह निकला जो तपता है अर्थात् सूर्य। और वह आया जो बहता है अर्थात् वायु। अब अग्नि चला गयी। ६

प्रजापतिने आहुतियाँ देकर मानो अपने को फिर उत्पन्नकर लिया। तथा आग-रूपी मृत्यु से अपने को बचा लिया जो उसको खाना चाहती थी। जो यह समझ कर अग्निहोत्र करता है वह प्रजारूप में अपने को उत्पन्न करता है जैसे प्रजापति ने किया वैसे ही करके खानेवाली अग्नि से अपने को बचा लेता है। ७

और जहाँ वह मरता है तथा जहाँ उसको अग्नि में रखते हैं तो वह अग्निसे फिर उत्पन्नहोता है,अग्नि उसके शरीरको ही जलाता है। जैसे वह माता या पिता है उसी प्रकार आग से उत्पन्न होता है। और जो अग्निहोत्र नहीं करता वह श्रेष्ठ जन्म पाता ही नहीं। इसलिए अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए। ८

विचिकित्सा के द्वारा जन्मके विषय में यह बात है कि जब प्रजापतिने संकोच किया तो वह संकोच करते हुए श्रेय पर आरूढ़ रहा, यहाँ तक कि उसने अपने को उत्पन्न किया तथा अपने को मृत्युरूपी आग से बचाया जब कि वह उसे खाना चाहती थी। इसी प्रकार वह भी जो विचिकित्सा से जन्म को जानता है, यदि कभी संकोच करता है तो भी श्रेय पर आरूढ़ रहता है। ९

आहुति देकर उसने विचार किया। तब विकङ्कत वृक्ष उत्पन्न हुआ,

इसीलिए यह यज्ञ सम्बन्धी वृक्ष है और यज्ञसम्बन्धी पात्र इससे बनाये जाते हैं। अब देवों में जो वीर हैं वे उत्पन्न हुए। (अग्नि, वायु तथा सूर्य। सचमुच जो इनको जानता है उसके वीर उत्पन्न होता है। १०

उन्होंने कहा—हम पिता प्रजापतिके पीछे हुए हैं। अब हम प्रजा को उत्पन्न करें जो हमारे पीछे हो। उन्होंने एक घेरा घेर कर गायत्री से हिङ्कार छोड़कर प्रार्थना की। जिससे उन्होंने घेरा था वह समुद्र था, तथा पृथ्वी आस्ताव (प्रार्थना की) जगह हो गई। ११

वे स्तुति करके पूर्व को गये, यह कहकर कि हम लौट जाते हैं। देव एक गाय के पास आये जो उत्पन्न हो गयी थी। उसने उनकी ओर देखकर हिङ्कार किया। देवों ने जाना कि यह सामवेदका-हिङ्कार है। पहले वह हिंकार-शून्य था। अब ठीक साम हो गया। यह सामवेदीय हिंकार गाय के मध्य में था। इसलिए यह गाय जीविका का साधन हो गई। जो कोई गाय में इस सामवेदीय हिंकार के भेद को जानता है वह जीविका का साधन हो जाता है। १२

उन्होंने कहा— यह हमने भद्र किया यह जो हमने गाय उत्पन्न की, इसलिए कि यह तो यज्ञ ही है, क्योंकि गाय के बिना यज्ञ हो ही नहीं सकता। यह अन्नभी है, क्योंकि जो भी कुछ अन्न है वह गाय ही है। १३

यह 'गो' नाम उन गौओं का भी है तथा यज्ञ का भी। इसलिए उस को दुहराना चाहिए यह कहकर कि यह साधु है, पुण्य है। जो कोई इस रहस्य को समझकर 'साधु, पुण्य दुहराता है, गायें उसके लिए बहुत देती हैं और यज्ञ उसकी ओर झुकता है। १४

अब अग्नि ने उससे प्रेम किया कि मैं इसके साथ सम्बन्ध करूँ। उसने उसके साथ सम्बन्ध किया, उसमें वीर्य सींचा, वह दूध हो गया, इसलिए गाय जब तक कच्ची रहती है वह दूध पकता है, क्योंकि वह अग्नि का वीर्य है, इसलिए चाहे काली गाय में हो चाहे लाल में दूध सफेद ही होता है, आगके समान चमकता हुआ, क्योंकि आगका वीर्य है अतः जब दुहा जाता तो गर्म होता है क्योंकि वह अग्नि का वीर्य है। १५

उन्होंने (मनुष्यों ने) कहा— इसकी आहुति दें, (देवों ने कहा)— हम पहले किसके लिए आहुति देंगे? आग ने कहा— मेरे लिए, वायु ने कहा— मेरे लिए, सूर्य ने कहा— मेरे लिए। वे निश्चय न कर सके तथा निश्चय न करके कहा—पिता प्रजापति के पास चलें। वे जिसको पहली आहुति के योग्य बतायेंगे, लोग भी उसी को पहली आहुति देंगे। वे पिता प्रजापति के पास जाकर बोले—हम में से किसको लोग पहले आहुति देंगे? १६

उसने कहा– अग्नि के लिए। अग्नि तुरन्त ही अपने वीर्य को उत्पन्न करेगा। इससे तुम्हारी भी प्रजा होगी। फिर सूर्य से कहा– इस के पश्चात् तुम्हारे लिए आहुति दी जावेगी। तथा जो (दूध) आहुति देने से बच रहा वह उसके लिए जो बहता है (वायु के लिए)। इस-लिए लोग अब तक इसी प्रकार आहुति देते हैं। सायंकाल में अग्नि के लिए तथा प्रातः काल में सूर्य के लिए, तथा जो आहुति देने से बच रहता है वह वायु के लिए।१७

आहुति देकर देवों ने उस प्रकार अपने को प्रजा के रूप में उत्पन्न किया जिस प्रकार उत्पन्न हुये थे, इसप्रकार उन्होने वह विजय पाई जो सचमुच में विजय थी। अग्नि ने यह लोक जीता, वायु ने अन्तरिक्ष तथा सूर्य ने द्यौ। जो कोई इस रहस्य को समझ कर हवन करता है उसके उसी प्रकार प्रजा होती है जैसे देवों के हुई, तथा वह उसी प्रकार विजय पाता है जैसे देवों ने। जो इस रहस्य को समझ कर यज्ञ करता है वह उन देवों के साथ इस लोक का हिस्सेदार होता है। इस-लिये अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए। १८

अध्याय 3 ब्राह्मण 1

सूर्य ही अग्निहोत्र है। क्योंकि वह इस आहुति के पहले उदय हुआ इसलिये सूर्य अग्निहोत्र है॥१

यजमान तथा अध्वर्यु सायंकाल सूर्य अस्त के होते समय आहुति देता है तो सोचता है कि जो यह है इसके यहां रहते हुये आहुति दे दूं। तथा जो सूर्योदय से पहले प्रातःकाल के समय आहुति देता है तो सोचता है कि जो यह है उसके यहाँ रहते हुये आहुति दूँ। इस-लिये सूर्य ही अग्निहोत्र है ऐसा कहते हैं॥२

अब जब वह अस्त हो जाता है तब आग रूपी योनि में गर्भ होकर प्रवेश करता है। उसके गर्भ होने पर प्रजा गर्भ हो जाती है। थप-थपाये जाकर मानो वह सन्तुष्ट होकर सो जाती है। रात्रि उसको इसलिए छिपा लेती है कि गर्भ भी तो छिपा रहता है।३

वह सायंकाल को अस्त होने पर इसलिए आहुति देता है कि सूर्य जो गर्भ रूप है उसको आहुति दी जाय। तथा क्योंकि उसको गर्भके रूप में आहुति देता है अतः गर्भस्थ जीव बिना खाये जीतेरहते हैं।४

प्रातःकाल उदय होने से पूर्व इसलिये आहुति देता है कि इस (सूर्य रूपी बालक) को जन्म दे। वह तेज होकर चमकता हुआ निकलता है, यदि वह आहुति न दे तो कदापि लाभप्रद न निकले। अतः वह हो।५

जैसे साँप केंचुली छोड़ता है इसी प्रकार वह पाप-युक्त रात्रि को छोड़ता है। जो इस रहस्य को समझ कर अग्निहोत्र करता है वह उसी प्रकार पाप-युक्त रात्रि से छूट जाता है जैसे साँप केंचुली से। उस सूर्य के उदय होने पर सब प्रजा फिर से उत्पन्न हो जाती है। क्योंकि यह अपने प्रयोजन के अनुकूल विचरती है। ६

वह जो सूर्यास्त से पहले आहवनीय को (गार्हपत्य से) निकालता है— ये किरणें ही विश्वेदेव (सब देव) हैं। इससे अधिक जो प्रकाशित होता है वह प्रजापति या इन्द्र है। यज्ञ करने वाले के घर सब देवता पहुँच जाते हैं। तथा जो कोई आग न निकाल पावे तथा देवतागण आ जायँ तो वे चले जाते हैं। जिसके यहाँ से देवतागण लौट जायँ वह सफल नहीं होता है। उसके विषय में लोग कहते हैं कि चाहे नई जाने या न जाने, इसका सूर्य अस्त हो गया। क्योंकि इसने अग्नि को नहीं जलाया। ७

सूर्यास्त से पहले आहवनीय निकालने का यह कारण है कि जब कोई बड़ा आने वाला होता है तो घर को साफ करके सत्कार करते हैं उसी प्रकार यह भी है। क्योंकि जिस किसी के आग निकालने के पीछे देवतागण आते हैं वह उसके आहवनीय-गृह में घुस जाते है तथा उसी आहवनीय में ठहर जाते हैं। ८

वह शाम को सूर्यास्त होने पर आग में इससे आहुति देता है कि वह घर में प्रवेश किये हुये देवताओं के लिए आहुति देता है। तथा सूर्योदय होने से आहुति देने का प्रयोजन यह है कि जब तक देव जाने न पावें तब तक आहुति दी जाय। इसीलिए आसुरि का कहना था कि सूर्योदय होने के पश्चात् आहुति देने वालों का हवन व्यर्थ हो जाता है जैसे खाली घर में कोई खाना ले जाय। ९

जीवन दो प्रकार के हैं— जड़वाले तथा बिना जड़ के। ये दोनों देवताओं के हैं इन्हीं के सहारे मनुष्य जीते हैं। पशु बिना जड़ के हैं तथा ओषधियाँ जड़ वाली; बिना जड़ वाले पशु जब जड़ वाली ओषधियों को खाते तथा जल पीते हैं तब रस उत्पन्न होता है। १०

वह सूर्यास्त के पश्चात् शाम को आहुति इसलिए देता है कि इस जीवन-रस की आहुति देवों के लिए दे दूँ। क्योंकि यह रस उन्हीं का है जिसको खाकर हम जीते हैं। तथा जो रात्रि में भोजन करता है वह आहुति का शेषभाग है जो निकाला जा चुका है, क्योंकि जो हवन करता है वह यज्ञ के शेष भाग को खाता है। ११

शतपथब्राह्मण का२ अ३ ब्रा१

और जो प्रात: सूर्य के उदय से पूर्व हवन करता है वह समझता है कि इस जीवन-रस की आहुति देवों के लिए दे दूं ; क्योंकि यह उन्ही का है जिससे हम जीते हैं। वह जो दिन में खाता है वह यज्ञ-शेष हां है जिसमें से भाग निकाल दिया गया। अग्निहोत्र करनेवाला यज्ञ-शेष ही खाताहै ॥१२

कहते हैं कि अन्य यज्ञ समाप्त हो जाते हैं अग्निहोत्र ही समाप्त नहीं होता। १२ वर्ष चलनेवाले यज्ञ का भी अन्त है, किन्तु इसका नहीं। सायंहोम करके जानताहै कि प्रात:होम करूंगा, प्रात: करके जानताहै कि सायं फिर करूंगा! अत: यह अनन्त है और इससे अनन्त प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। जो इस प्रकार अनन्त अग्निहोत्र को जानता है वह श्री और प्रजा से सदा सम्पन्न रहता है ।।१३

वह दूध दुहकर गार्हपत्य पर रखता है कि पक जाय। कहते हैं कि जब उबल जाय तब उसकी आहुति दे, किन्तु उबाले नहीं, क्योंकि जल जायगा और जला बीज उपजता नहीं अत: उबाल न आने दे ॥१४

दूध गरम करके ही आहुति दे। यह आग का वीर्य है। इसे आग पर रखते हैं कि गरम हो जाय। अत: गरम करके ही आहुति दे ॥१५

अब देखता है कि पका या नहीं। उस पर शान्ति और रस के लिए पानी छिड़कता है। जब बरसता है तो ओषधियाँ होतीहैं, उन्हें खाकर व पानी पीकर रस बनता है। अत: यदि केवल दूध पीना हो तो उसमें कुछ पानी शान्ति और रस के लिए अवश्य मिला ले ॥१६

अब चार चमचे दूध निकालता हैं, क्योंकि यह चार थनों से मिलता है। समिद्ध होम के लिए समिधा लेकर चमचा बिना नीचे रखे पूर्वाहुति देता है। यदि नीचे रख दे तो ऐसा हो कि जैसे किसीको भोजन लेजाते हुए मार्ग के बीच में रख देना। चमचा बिना नीचे रखे होम करना ऐसा है कि भोजन पहुंचा कर ही पात्र नीचे रखना। चमचा नीचे रखकर फिर दूसरी। इस प्रकार इन दोनों को नाना पराक्रम वाली बनाता है। ये दो मन-वाणी हैं, इन्हें अलग करता है. अत: ये समान ही नाना से हैं ॥१७

वह २ बार अग्नि में होम करता, दो बार चमचा मांजता, दो बार चखता, चार बार निकालता— ये दस क्रियाएँ हैं। दस अक्षर का विराट् है, विराट् ही यज्ञहै, अत: इस यज्ञ को वह विराट् ही बना देता है ॥ १८

वह जो आग पर होम करता है वह देवों के लिए करता है, इससे वे सम्मिलित हैं। और जो शेष बचाता है वह पितरों तथा ओषधियों के लिए देता है, इससे वे सम्मिलित हैं। और जो खाता है इससे मनुष्यों को देता है इससे वे यज्ञमें सम्मिलित हैं ॥१९

जो प्रजा यज्ञ में असम्मिलित है वह तिरस्कृत है। इसी प्रकार जो ये प्रजाएँ अतिरस्कृत हैं उनके लिए भाग यज्ञारम्भमें ही निकाल देता है इसमें पशु सम्मिलित हैं क्योंकि ये मनुष्यों के पीछे साथ में हैं ॥२०

याज्ञवल्क्य ने कहा कि इसे हविर्यज्ञ नहीं माना जाय, यह पाकयज्ञ है अन्यों में तो जो स्रुच् में लिया वह सब आग में होम कर दिया, किन्तु इसमें होम के पश्चात् आचमन करके खाया जाता है, यह पाकयज्ञ का ही पशव्य रूप है, क्योंकि पाकयज्ञ पशाय हैं ॥२१

वह यह एक आहुति ही आगे है जो प्रजापति ने दी थी और जिसे पश्चात् इन अग्नि-वायु-सूर्य ने प्रचलित रक्खा। अतः यह दूसरी आहुति होती है ॥२२

वह जो पूर्वाहुति है वह अग्निहोत्रकी देवता है, अतः उसके लिए देता है और जो दूसरी है वह स्विष्टकृद् भाजन ही है अतः वह उत्तरार्द्ध में दी जाती है। यही स्विष्टकृत की दिशा है वह दूसरी जोड़ा बनाने के लिए है। जोड़ा ही प्रजनन के लिए होता है ॥२३

ये आहुतियाँ दो ही हैं- भूत-भविष्यत्, जात-जनिष्यमाण, आगत-आशा, आज-कल इत्यादि दो का ही जोड़ा है ॥२४

आत्मा ही भूत है, भूत निश्चित है, आत्मा निश्चित है। प्रजा ही भविष्यत् है जो अनिश्चित हैं ॥२५

आत्मा ही उत्पन्न हुई है, दोनों निश्चित हैं। प्रजा ही उत्पन्न होनेवाली है, दोनों अनिश्चित हैं ॥२६

आत्मा ही आगत है, दोनों निश्चित हैं। प्रजा ही आशा है, दोनों ही अनिश्चित ॥२७

आत्मा ही आज है, दोनों निश्चित हैं, प्रजा ही कल है, दोनों अनिश्चित हैं॥२८

वह पूर्वाहुति आत्मा को लक्ष्य करके दी जाती है उसे वह मन्त्र से देता है क्योंकि दोनों निश्चित हैं, और दूसरी प्रजा के लिए मौन होकर क्योंकि मौन और प्रजा दोनों अनिश्चित हैं ॥२९

वह सायं और प्रातः क्रमशः निम्नाङ्कित मन्त्रों से होम करता है—

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। यजु ३.९

यह होम सत्यतासे ही करता है क्योंकि जभी सूर्य अस्त होता है तभी अग्निर्ज्योतिः, और जब उदय होता तब सूर्यो ज्योतिः। जो सत्यता स हवन क्रिया जाय वह देवों का जाता है ॥३०

यही ब्रह्म-तेज की कामना वाले आरुणि से तक्षा ने कहा था—

अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्च,, सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः। यजु ३.९

इस तरह समझकर हवन करनेवाला ब्रह्मवर्चसी होता है ॥३१

यही प्रजनन का रूप ही है— अग्निर्ज्योति० आदि कहकर वह ज्योतिरूपी वीर्य को देवता से घेरता है। दोनों ओर से गृहीत ही वीर्य उत्पन्न होता है। अतः दोनों ओर से घेरकर प्रजनन कराता है ॥३२

अब प्रातः सूर्यो० आदि मन्त्रमें भी वह ज्योतिवीर्यको देवतासे दोनों तरफसे घेरता है। दोनों तरफ घिरा ही वीर्य उत्पन्न होता है। अतः दोनों ही ओर से घेरकर वह सन्तान की उत्पत्ति कराता है। यह प्रजनन का रूप है ॥३३

चैलकि जीवल ने कहा—आरुणि गर्भ को ही कराता है प्रजनन को नहीं, वह इसी से सायं-हवन करे ॥ ३४

अब प्रातः— ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा। (य ३.९) से वह देवता के द्वारा ज्योति-वीर्य को बाहर करता है। बाहर हुआ ही उत्पन्न होता है। अतः इससे प्रजनन करता है ॥ ३५

कहते हैं कि वह सायं अग्निमें ही सूर्य के लिए और प्रातः सूर्यमें अग्नि के लिए आहुति देता है। किन्तु यह बात ऊदितहोमियों की ही है। क्योंकि जब यह सूर्य अस्त होता है तब अग्नि ज्योति और जब सूर्य उदय होता तब सूर्य ज्योति — इसमें कुछ दोष नहीं। दोष इसमें है कि उस अग्निहोत्र के देवता के लिए अग्नि० आदि के साथ अग्नये स्वाहा और सूर्यो० आदि के साथ सूर्याय स्वाहा न कहा जाय ॥३६

इससे भी होम करे— सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा। (यजु० ३.१०)

इस प्रकार प्रेरणा के लिए सविता से युक्त होकर उसका रात्रि से जोड़ा करता, इन्द्र-सहित करता, और अग्नि के लिए प्रत्यक्ष आहुति देता है। क्योंकि इन्द्र यज्ञ का देवता है ॥ ३७

और प्रातः— सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा कहकर प्रेरणाके लिए सविता से युक्त कर इसका या दिन का मिथुन उषा के साथ करता, उसको इन्द्र-युक्त करता और साक्षात् सूर्य के लिए आहुति देता है। क्योंकि इन्द्र यज्ञ का देवता है। अतः इस प्रकार ही होम करे ॥३८

वे बोले— कौन हमारे लिए यह होम करेगा ? ब्राह्मण ही । हे ब्राह्मण, हमारा यह होम कर । मुझे उससे क्या होगा? अग्निहोत्र का उच्छिष्ट हो । वह जो स्रुच् और बटलोई–कड़ाही में बच रहता है वह अग्निहोत्र का उच्छिष्ट है, जैसे गाड़ी के घेरे में से चावल बीनना । उसे जो कोई पिये वह अब्राह्मण न हो । क्योंकि आग पर अधिश्रयण करते हैं अतः अब्राह्मण न पिये ॥३९॥ ब्राह्मणम् १ [२.१. ।

—॥—

तृतीय अध्याय ब्राह्मण २

निश्चय ही इनमें देवता यजमान में रहते है—इन्द्र, राजा यम, नड-नैषिध, अनश्नत्सांगमन, और असत्पांसव: ॥१

वह यही इन्द्र है जो आहवनीय, यही गार्हपत्य यम–राजा, यही नड-नैषिध है जो अन्वाहार्य–पचन (दक्षिणाग्नि) है । क्योंकि इसको प्रति दिन दक्षिण से लाते है अत: कहते हैं कि प्रतिदिन नड–नैषिध यम-राजा को दक्षिण से लाता है ॥२

और जो यह सभा में अग्नि, यही अनश्नत्–सांगमन है क्योंकि वहाँ बिना खाये जाते हैं । और जो यह भस्म निकाल कर फेंकते हैं वह असत्पांसव: हैं । वह जो यह जानता है कि मुझ में इस तरह ये देवता रहते हैं वह इन सब लोकों को जीतता और उनमें विचरता है ॥३

उनका उपस्थान— जो सायं प्रातः आहवनीय के पास खड़ा होना तथा बैठना, लौट कर गार्हपत्य के पास बैठना या सोना और जहाँ ही जाते हुए अन्वाहार्य-पचन का स्मरण करना तथा मन से उसके पास ठहरना —यही उनकी उपासना है ।४

और प्रातः बिना खाये मुहूर्त भर सभा में बैठकर भी उसकी यथेच्छ परिक्रमा, तथा जहाँ ही भस्म ले कर डाले वहाँ ठहरना —वही उनका उपस्थान है । इस तरह ही इसके ये देवता उपस्थित होते हैं ॥५

गार्हपत्यका देवता यजमान है और अन्वाहार्य-पचन का उसका शत्रु, अत: इसको प्रतिदिन न आहरण करे । इसके ज्ञात और प्रतिदिन इस आग को आहरण न करनेवाले के कोई शत्रु नहीं होते, यह अन्वाहार्य-पचन है ॥६

इसको उपवास के दिन ही लायँ । जहाँ इसमें यज्ञ करनेवाले हैं वहीं इसको सफलता के लिए लाते हैं ॥७

या इसको नये घर में लायें । उसमें पकायें उसको ब्राह्मण खायें । यदि पकाने को न हों तो गौ का ही दूध उबाल कर ब्राह्मणों को पिलाने को कहे, ऐसा करनेवाले के शत्रु पापी होते हैं अत: ऐसा ही करे ॥८

❁ यज्ञ की आग के ५ रूप ❁

प्रथम यह समिद्ध होती, धुआँ सा निकलता तब यह रुद्र होती है। यदि कोई चाहे कि उसके समान प्रजाको विभिन्न समयों पर अश्रद्धा कठोरता और हिंसा के साथ अन्न खाऊँ तो वह यह आहुति दे, ऐसा समझकर होम करने वाला इस अन्नाद्य को पाता है ।।९

फिर यह अधिक प्रदीप्त हो वरुण होती है। यदि कोई उसके समान प्रजा को कठोरता तथा हिंसा के साथ वरत कर अन्न खाये तो व यह आहुति दे, ऐसा समझकर होम करनेवाला यह अन्नाद्य,पाता है ।।१०

फिर यह प्रदीप्त होती, ऊँचे धुआँ परम वेग से छोड़ती इन्द्र होती है। यदि कोई उसके समान श्री–यश–युक्त हो तो वह यह आहुति दे। ऐसा समझकर होम करनेवाला यह अन्नाद्य अवश्य पाता है ।।११

फिर यह घटती–घटती तिरछी सी लपट वाली शान्त होने लगती है तो मित्र होती है। यदि कोई चाहे कि मित्रता के साथ यह अन्न खाये कि सब कहें कि यह ब्राह्मण सबका मित्र है; किसीकी हिंसा नहीं करता तो वह यह आहुति दे, ऐसा समझकर होम करनेवाला इस अन्नाद्यको पाता ही है ।। १२

और फिर यह अङ्गारों के साथ चमकती है तो ब्रह्म हो जाती है। यदि कोई चाहे कि मैं ब्रह्मवर्चसी होऊँ तो वह यह आहुति दे, ऐसा समझकर होम करनेवाला यह अन्नाद्य अवश्य पाता है ।।१३

वह इनमें किसी एक का सेवन वर्ष भर करे, स्वयं होम करे या अन्य से कराये। और अन्य–अन्य प्रकार होम करना ऐसा ही व्यर्थ है जैसा कि पानी या अन्नके लिए कभी यहाँ खोदे कभी वहाँ,और बीचमें छोड़ दे। लगातार करना ऐसा है कि खोदता–खोदता पानी–अन्न शीघ्र पा ले ।।१४

आहुतियाँ अन्नाद्य के लिए कुदाल हैं। समझकर होम करनेवाला अन्नाद्य प्राप्त करता है ।। १५

पूर्वाहुति देव, बादवाली मनुष्य, और स्रुकमें बचे वह पशु हैं ।।१६

वह पूर्वाहुति कम और बादकी अधिक देता है,स्रुचमें और अधिक बचाता है ।।१७

पूर्वाहुति कम इसलिए कि देव कम हैं, दूसरीमें अधिक इसलिए कि मनुष्य देवों से अधिक हैं, स्रुक् में सर्वाधिक इसलिए छोड़ता है कि पशु मनुष्यों से भी अधिक हैं। जो ऐसा समझकर होम करता है वह समृद्ध है, आश्रित मनुष्यों की अपेक्षा पशु अधिक होते हैं ।।१८

ब्राह्मणम् ।४। [२.२]; द्वितीयः प्रपाठका,कण्डिका संख्या १९३ ।।

—❁—

अध्याय 3 ब्राह्मण 3

जहाँ प्रजापतिने प्रजा पैदा की वहाँ आग भी पैदा की। वह मत्रको हीं जलाने लगी तब सबने बचना और उसको बुझाना चाहा। सहन न करती वह पुरुष के पास आई ॥१

वह बोली—मैं यह सहन नहीं कर सकती। अरे! तुझमें घुस जाऊँ, तू मुझे पैदा करके पालन कर, जैसा ही तू इस लोक में मेरा पालन करेगा वैसा ही मैं उस लोकमें तेरा पालन करूँगी। तथाऽस्तु- कहकर उसने उस को उत्पन्न कर पालन किया ॥२

वह यजमान दो अग्नियों का आधान करता, उन्हें पैदा करके पालन करता, वैसे ही वह उस लोक में उसका पालन करती है ॥३

इसका अधूरा उद्वासन न करे यदि करेगा तो वैसा ही वह ह्रास करेगी, अतः आधा उद्वासन न करे ॥४

यह जब मरता, जब इसे आगमें रखते, तब यह उससे पैदा होताहै, बह पुत्र होकर पिता हो जाती है ॥५

अतः ऋषि (ईश्वर) ने कहा (ऋ १.८६.६ तथा यजु २५.२२)—

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥

हे देवो, सौ वर्ष हमारे पास हैं। जब तुम हमारे शरीरों में वृद्धावस्था करते हो। जहाँ पुत्र पिता होते हैं तुम हमारी आयु बीच में न काटो। क्योंकि आग पुत्र होकर पिता होगई अतः उनका आधान करे ॥६

जो यह तपता वही सूर्य मृत्यु है, अतः इससे इधर की प्रजा मर जाती तथा दूरके देव अमर रहते हैं, उसकी ये सब प्रजाएँ किरणों-द्वारा प्राणों में स्थित हैं अतः किरणें प्राणों को प्रभावित करतीं हैं ॥ ७

वह जिसको चाहता प्राण लेकर निकलता, वह मर जाता है। जो इससे न बचकर इस लोक में जाता, उसको वह बार-बार मारता है जैसे इस लोकमें बन्दीका आदर नहीं होता; जब चाहें मारते ही हैं ॥८

वह जो सायं सूर्यास्त पर तथा प्रातः अनुदित पर दो-दो आहुतियाँ देता है वह अगले पिछले दो-दो पैरों से मृत्यु पर अधिकार करता है। उदीयमान ही सूर्य इसको लेकर उदय होता है, अतः इस मृत्यु से छूटता है, यह अग्निहोत्र करने पर मौत से छुटकारा है। इसको समझनेवाला मौत से छूट जाता है ॥९

बाणकी नोक के समान यज्ञों का अग्निहोत्र है, जिधर नोक, उधर ही बाण है। इसी तरह इसीके द्वारा सब यज्ञ-क्रतु मौतसे छुड़ाते है ॥१०

घूमते हुए दिन-रात उस लोकमें मनुष्यके सुकृत को क्षीण करदेते हैं किन्तु वे इस तरफ हैं अतः वे उसका सुकृत क्षीण नहीं करते ।।११

जैसा रथ में स्थित ऊपर से घूमते पहिए देखता है वैसे ही वह ऊपर से दिन-रात देखता है। इस तरह समझनेवाले के सुकृत को दिन-रात क्षीण नहीं कर सकते ।। १२

यजमान पूरब से आहवनीय-गार्हपत्य के बीच में से जाता है। देव बीच में जाते इस को पहचान जाते हैं कि यही हमें आहुति देगा। अग्नि पाप का नाशक है। दोनों अग्नियाँ अपने बीच से जाते हुए इसके पाप को नष्ट करती हैं। निष्पाप वह श्री-यशो-युक्त ज्योति ही होता है ।।१३

अग्निहोत्र का द्वार उत्तर की ओर है, अतः वह ऐसे घुसता है मानों द्वार से घुसा, तथा जो दक्षिणसे आकर बैठे तो मानों बाहर का है ।।१४

अग्निहोत्र स्वर्ग की नाव है, दोनों अग्नियां उसके दो पक्ष, तथा दूध की आहुति का दाता उसका मल्लाह है ।।१५

जब पूर्वको चलता है तो मानो इसको पूर्व को स्वर्गकी ओर लेजाता है, उससे स्वर्गलोकों को पाता है, उसपर उत्तर से चढ़ने से वह स्वर्ग लोक पहुँचाती है। जो दक्षिणसे आकर उसमें बैठता है वह मानो तब चल पड़ी नाव में बैठा तथा पीछे रह गया ।।१६

इस पर रक्खी गयी समिधा ईंट, जिस मन्त्र से आहुति देता वह यजुः है जिस से ईंट रक्खी जाती है, तभी आहुति दी जाती है। अतः उन रखी ईंटों पर ये आहुतियाँ दीजाती हैं जो अग्निहोत्र की हैं ।।१७

प्रजापति अग्नि है, संवत्सर ही प्रजापति है। प्रति संवत्सर इसका अग्निहोत्र चित्य अग्निसे होता है। ऐसा समझकर अग्निहोत्र करने वाला प्रतिवर्ष चित्य अग्नि पाता है, उसका अग्निहोत्र चित्य अग्नि से होता है ।।१८

८० ऋचाओं की ७२० आहुतियां दे, वे सायं-प्रातः की २-२ होती हैं। इस तरह ३६० दिनों में ७२० हुईं ।।१९

प्रति वर्ष इसका अग्निहोत्र बड़े यश से होता है। ऐसा समझ कर करनेवालेका अग्निहोत्र बड़े यशवाला होताहै, वह महायश पाताहै ।।२०

ब्राह्मणम् ।।१।।[३-३]

अध्याय 3, ब्राह्मण 4

विजयार्थ या घूमने को जातेहुए देवों ने गाँव तथा वन के सब पशु आग को सौंप दिये कि वह हमारी रक्षक है, रक्षा करेगी ।। १

आग ने उनकी कामना की, उन्हें संग्रह कर रात में प्रविष्ट हुई।

देव लौट गये। उन्होंने इस आग को छिपा जानलिया कि यहीं रात में छिपी है। वे शामको रातके आनेपर पहुंचे, कहा—पशु लौटा, लौट पशु। आग ने उन्हें पशु लौटा दिये ॥२

अतः दोनों अग्नियों का सुख से सेवन करे, वे दाता हैं, उनसे ही माँगता है। साय अग्नि का उपस्थान करे, साय को ही देवों ने किया था। ऐसा समझ कर उपस्थान करनेवाले को ये पशु देती हैं ॥३

❀ पक्ष-विपक्ष में युक्तियाँ ❀

विपक्ष—प्रथम देव-मनुष्य साथ थे। जो मनुष्यों के पास न हुआ, उसे देवोंसे माँग लिया—हमारा यह नहीं, हमारा यह हो। इसी मांगने के द्वेष से वे छिप गये, ऐसा न हो कि वे हिंसा या द्वेष करें, अतः उनके पास न जाय ॥४

पक्ष—यज्ञ देवों का तथा आशीर्वाद यजमानों का है। यह आहुति यज्ञ है तथा यहाँ का कार्य यजमानका आशीर्वाद। अतः पास जाय ॥५

विपक्ष—जो ब्राह्मण या क्षत्रियसे आशा करता रहता है कि यह मुझे देगा, यह मेरा घर बनायेगा, जो वाणी-कर्म से उसे प्रसन्न करता है उसे वह देय मानता है और जो कहता है कि तू मेरा कौन है जो मुझे नहीं देता—तो स्वामी इससे द्वेष तथा खेद करेगा अतः पास न जाय। इसे दीन कर होम करता ही उपस्थान करना है ॥६

पक्ष—और माँगता हुआ दाता को पाता ही है तथा स्वामी भार्य को आवश्यकता नहीं जानता। अब वह कहता है—मैं आपका भार्य हूं, मुझे पालिये, तब उसे जानता और भार्य मानता है। अतः अग्नि की सेवा करनी ही चाहिए—ये ही समस्त युक्तियाँ हैं ॥७

प्रजापति होकर यह अग्नि जो शासित और अनुकूल होता है उसक वीर्य-सिचन करता है। अग्नि का सेवी अनुकरण करता और इस सब का अनुप्रजनन करता है ॥८

वह इस मन्त्र से प्रार्थना करता है—

उप प्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ (य० ३।११)

यह पृथिवी दो प्रकार से उप है—१. सब कुछ इसमें पैदा होता है, २. नष्ट हुआ यहीं दबाया जाता है। अतः दिन-रात यहाँ आधिक्य होता रहता है, अतः वह उप (आधिक्य) से आरम्भ करता है ॥९

वह कहता है—प्रयन्तो अध्वरम् अर्थात् यज्ञ के पास पहुँचते हुए, अध्वर का अर्थ है यज्ञ। अब कहता है—मन्त्रं वोचेमाग्नये, हम अग्नि के लिए मन्त्र बोलें। आरे अस्मे च शृण्वते। यद्यपि वह हमसे दूर है, तथापि हमारी प्रार्थना सुने और हमें माने, हमारा भला करे ॥१०

शतपथब्राह्मण का२ अ३ ब्रा४

अब अध्वर्यु कहता है–

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् ।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ (य० ३.१२)

अग्नि (ईश्वर और भौतिक अग्नि) द्यौलोक का सिर, महान्, पृथिवी का पति है। यह जलों में वीर्य को सींचता है। इस प्रकार इस मन्त्र के द्वारा वह प्रार्थना करता हुआ उसके पीछे दौड़ता है जैसे माँगने वाले दौड़ते हैं। याचक कहता है– तू ऐसों की सन्तान है, तू ऐसा कर सकता है, तू ऐसा है ॥११

अब इन्द्रअग्नि वाला मन्त्र पढ़ता है—

उभा वामिन्द्राग्नी ऽआहुवध्या ऽउभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दातारा विषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ य० ३.१३

(हे इन्द्र और अग्नि, मैं तुम दोनों को बुलाता हूं। तुमको प्रीति की हवि से प्रसन्न करूँगा। तुम बल और धन के दाता हो। तुम्हें अन्न की प्राप्ति के लिए बुलाता हूं।) इन्द्र सूर्य का नाम है। जब वह अस्त हो जाता है तो आहवनीय अग्नि में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए प्रार्थी उन दोनों मिले हुओं से प्रार्थना करता है कि वे दोनों मिलकर मुझको दें। अतएव इन्द्र–अग्नि वाला मन्त्र पढ़ता है ॥१२

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।
तं जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ य० ३-१४

यह तेरी योनि ऋतु के अनुकूल है जहाँ से उत्पन्न होकर तू चमकती है। हे अग्नि! इस बात को जानकर उठ और हमारा ऐश्वर्य बढ़ा। रयि का अर्थ है पुष्टि। इस मन्त्र का तात्पर्य है कि वह हमारी पुष्टि करे ॥१३

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ य० ३.१५

[विधाताओं द्वारा प्रथम यहाँ सर्वश्रेष्ठ होता और यज्ञ में पूजा के योग्य बनायी गयी, वनों में विचित्रता से चमकती हुई और घर-घर में फैलती हुई जिसको अप्नवान (विद्या-प्रचारक) और भृगु (याज्ञिक) प्रज्वलित करते हैं यह अग्नि है ॥१४

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ य० ३.१५

विद्या पाने वाले विद्वान् इस अग्नि की सन्तान, प्रकाशयुक्त, शुद्ध,

दीप्ति को जानकर हजारों को शक्ति देने वाले जल को दुहते हैं। सहस्रसा का अर्थ है परम दान देने वाली। इसी की प्राप्ति के लिए वह कहता है सहस्रसाम् ऋषिम्॥ १५

ये ६ ऋचाएं हैं। पहले में उप शब्द है और पिछले में प्रत्न। हमने इन्हें इसलिए पढ़ा कि उपवाली यह पृथ्वी है और प्रत्न वह द्यौ है। क्योंकि जितने देव पहले थे उतने अब भी हैं इसलिए प्रत्न का अर्थ द्युलोक है। अब इन्हीं दोनों के बीच में सब कामनायें हैं और ये यजमान के हित और उसकी कामनाओं की पूर्ति के लिए संयुक्त हैं॥ १६

पहला मन्त्र ३ बार जपता है और अन्तिम ३ बार। क्योंकि यज्ञ त्रिवृत् (तीन आरम्भ और तीन अन्त वाले) होते हैं। अतः तीन बार प्रथम मन्त्र जपता है और तीन बार अन्तिम ॥१७

अग्निहोत्र करने में जो कुछ भूल वाणी या कर्म से करता है उससे वह आत्मा–आयु–वर्चस्–प्रजा को हानि पहुंचाता है। अतः कहता है– ॥१८

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदाऽअग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण॥(य० ३.१७)

हे अग्नि! तू शरीरों की रक्षक है, मेरे शरीर की रक्षा कर। हे अग्नि! तू आयु की देने वाली है, मुझे आयु दे। हे अग्नि तू वर्चस् की देने वाली है, मुझे वर्चस् दे। हे अग्नि! जो मेरे शरीर में कमी है उसको मेरे लिए पूरा कर ॥१९

और अग्निहोत्र करने में वह वाणी या कर्म से जो भूल करता है उससे वह आत्मा–आयु–वर्चस्–प्रजा को हानि पहुँचाता है। जब वह इस मन्त्र को पढ़ता है मेरी कमी को पूरा कर, तो वह कमी पूरी होती है ॥२०

इन्धानास्त्वा शतं हिमा द्युमन्तं समिधीमहि। [य० ३.१८]

[तुझे प्रज्वलित करते हुए हम सौ वर्षों तक जलती हुई प्रदीप्त करते हैं]। इससे तात्पर्य है कि हम सौ वर्ष जीते रहें। और समिधीमहि का अर्थ है कि हे महान्! हम तुझको प्रदीप्त करते हैं।

वयस्वन्तो वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम्। [य० ३.१८

अन्न वाले हम तुझ अन्न देने वाली को, बलवान् हम बल देने वाली तुझको। इसका अर्थ है कि हम अन्न वाले हों, तू अन्न देने वाली हो, हम बल वाले हों, तू बल देने वाली हो।

अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो अदाभ्यम्। [य० ३-१८]

हे अग्नि! क्षतिरहित हम तुझ क्षतिरहित और शत्रुओं को दमन करने वाली को। इसका अर्थ है कि तेरी सहायता से हम शत्रुओं को सर्वथा दमन करें॥२१

तीन बार इस मन्त्र को जपे—

चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय। [य० ३-१८]

हे चित्र वाली, हम भलीभाँति तेरे पार को पा जायें। चित्रावसु रात है। क्योंकि यह चित्रों को इकट्ठा करके रहती है। इसीलिये रात में दूर से चित्र स्पष्ट नहीं दीखता ॥२२

इसी मन्त्र से ऋषि लोग रात के पार को भलीभाँति पा गये। और इसी के कारण दुरात्मा राक्षसों ने उनको न पाया। इसी तरह इसी मन्त्र के द्वारा वह रात्रि के पार को भलीभाँति पा जाता है और इसी के कारण दुरात्मा राक्षस उसको नहीं पा सकते। इस मन्त्र को वह खड़ा होकर जपता है॥ २३

अध्वर्यु अब बैठ-बैठे यह मन्त्र जपता है—

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्चसागथाः समृषीणां स्तुतेन।
सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्चसा सं ऽजया
सं रायस्पोषेण ग्मिषीय॥ (य० ३ १९).

हे अग्नि, तू सूर्य के प्रकाश को प्राप्त हो गया। यह वह कहता है क्योंकि डूबता हुआ सूर्य आहवनीय में घुस जाता है। इसीलिए कहा ऋषियों की स्तुति से। क्योंकि वह खड़ा होकर स्वयं प्रार्थना करता है, प्रिय घर के द्वारा। आहुतियाँ इसका प्रियधाम हैं। अतः धाम के द्वारा। मैं आयु, वर्चस्, सन्तान और धन को प्राप्त करूँ। इसका अर्थ है मैं आयु,वर्चस् सन्तान और धन [समृद्धि]को प्राप्त करूँ ॥२४

अब इस मन्त्र को पढ़कर गाय के पास जाता है—

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीय ऊर्ज स्थोर्ज्जं वो भक्षीय रायस्पोष स्थ रायस्पोषं वो भक्षीय॥ (य० ३-२०)

तुम अन्ध [अन्न] हो, मैं तेरा अन्न खाऊँ, तू धन हो मैं तेरा धन खाऊँ। इसका अर्थ है कि तुम्हारे जो पराक्रम और जो धन हों उनका मैं उपभोग करूँ। तुम ऊर्ज [रस] हो मैं तेरे ऊर्ज को भोगूं। तुम धन हो मैं तेरे धन को भोगूं॥२५

रेवती रमध्वम अस्मिन् योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिँल्लोकेऽस्मिन्क्षये। इहैव स्त मापगात॥ [य० ३-२१]

हे धन वालो! रमण करो। रेवन्त अर्थात धन वाले पशु हैं। इस लिए कहा- रेवन्ती रमध्वम्। इस स्थान में, इस बाड़े में, इस लोक में, इस घर में। यहीं हो रहो। यहाँ से न जाओ। यहाँ अपने लिए कहा है अर्थात् मुझको छोड़कर मत जाओ ॥२६

अब इस मन्त्र से गाय को छूता है—

संहितासि विश्वरूपी ऊर्जामाविश गौपत्येन। (य० ३-२२)

तू इकट्ठा करने वाली और नाना रूपोंवाली है। पशु भिन्न-भिन्न रूप वाले होते हैं इसलिये गाय को विश्वरूपी कहा। गौओं से युक्त ऊर्ज के द्वारा मुझमें प्रविष्ट हो। वहाँ ऊर्ज कहने से रस का तात्पर्य है और गौपत्य कहने से तात्पर्य है संवृद्धि का।। २७

अब गार्हपत्य में जाता है और उसकी अर्चना करता है इस मन्त्र से-

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्तऽएमसि। (य० ३-२२)

हे अग्नि! दिन प्रतिदिन नमस्कार करते हुये हम रात को प्रकाशित करने वाले तुझको बुद्धि से प्राप्त होते हैं। वह इसलिए इसकी अर्चना करता है कि कहीं वह उसकी हानि न पहुंचा दे।।२८

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे।। य० ३.२३

यज्ञों के प्रकाशित करने वाले, ऋत के चमकने वाले रक्षक, अपने घर में बढ़नेवाले तुझको। इसका तात्पर्य है कि वह मेरा घर तेरा ही घर है। इसको हमारे लिए समृद्धिशील कर।।२९

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।। य०३.२४

हे अग्नि, तू हमारे लिए उसी प्रकार सुलभ हो जैसे पिता पुत्र को। और हमारी स्वस्ति कर। इसका तात्पर्य है कि जैसे पिता पुत्र के लिए सुलभ होता है किसी प्रकार उसको हानि नहीं पहुँचाता, इसी प्रकार तू भी हमारे लिए सुलभ हो, किसी प्रकार हानि न पहुंचा।। ३०

अब यह दो पद वाले मन्त्र को पढ़ता है—

अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवाऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः।।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णोऽघायतः समस्मात्।। य० ३, २५-२६

हे अग्नि, तू मेरे निकट रह। रक्षक, कल्याणकारी तथा घर का हितकर हो। हे अग्नि तू वसु (धन) हो, वसुश्रवा अर्थात् धन के लिए प्रसिद्ध हो। हमको अच्छा-अच्छा तेजस्वी धन दो। अपने मित्रों के सुख के लिए हम तुझ प्रकाश स्वरूप तथा चमकने वाले के पास आते हैं। हमारे साथ रह, हमारी बात सुन, हमको पापी शत्रु से बचा। ३१

जब आहवनीय की अर्चना करता है तो पशुओं की याचना करता है, इसलिए ऊंचे-नीचे मन्त्रों को जपता है। क्योंकि पशु भिन्न आकार के होते हैं। जब गार्हपत्य की अर्चना करता है तो पुरुषों की याचना करता है। इसलिए पहली तीन ऋचाएं गायत्री छन्द में हैं। गायत्री

अग्नि का छन्द है। अतः उसीं छन्द से स्तुति करता है ॥३२

अब वह ऊपर के दो पद वाले मन्त्र जपता है। दो पद वाले मन्त्र पुरुष छन्द हैं, क्योंकि पुरुष भी दो पैर वाला है, इसलिए पुरुषों की याचना करता है। पुरुषों की याचना करता है इसलिए दो पदोंवाले मन्त्र को जपता है। जो इस रहस्य को समझकर दोनों अग्नियोंकी सेवा करता है उसको पशु तथा पुरुष दोनों प्राप्त होते हैं ॥३३

अब वह इस मन्त्र को जप कर गाय के पास जाता है—

इड ऽएह्यदित ऽएहि काम्याऽएत। मयि वः कामधरणं भूयात् ॥
(य० ३.२७)

हे इडा आ, हे अदिति आ। इडा गौ है अदिति गौ है। कामना के योग्य तुम आओ—यह कहकर छूता है। इनमें मनुष्यों की कामनायें हैं। इसलिए इनको काम्या एत कहा। आपकी मेरे में इच्छा-पूर्त्ति हो। मैं आपका प्रिय होऊँ यह तात्पर्य है ॥३४

अब आहवनीय और गार्हपत्य के बीच में खड़ा होकर पूर्व को देख कर तीन मन्त्र जपता है—

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं यऽ औशिजः ॥
यो रेवान् योऽअमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः। स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥
मा नः शंसोऽअररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥
(य० ३.२८-३०)

हे वाणी के पति, सोम को अर्पण करने वाले कक्षीवान् औशिज (उत्तम श्रेणी के विद्याभिलाषी) को सुरीला कर। धन वाला दुःख नाशक समृद्धिशील तथा पुष्टि देने वाला एवं तीव्र हमारे पास आवे। हे वाणी के पति ! हमारी रक्षा कर। बुरों का शाप हम तक न आवे तथा न किसी मनुष्य की धूर्तता ॥३५

जब वह आहवनीय में जाता है तो मानो द्यौलोक में जाता है तथा जब गार्हपत्य में जाता है तो मानो पृथिवी लोकमें; इससे वह अन्तरिक्ष में जाता है। यह बृहस्पति की दिशा है, इस दिशा को प्राप्त होना चाहता है इसलिए बृहस्पति वाला मन्त्र जपता है ॥३६

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य ॥
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशंसः ॥
ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥
(य० ३.३१-३३)

बड़ी द्यौ लोक सम्बन्धी, न पराजित होने वाली मित्र-अर्यमा-वरुण तीनों की रक्षा हमारे लिए हो। (इन देवोंसे रक्षित) लोगों पर भयानक

मार्गों अथवा घरों में पापी शत्रु स्वत्व नहीं प्राप्त कर सकते। ये देव निरन्तर मनुष्य के लिए अदिति के पुत्रों के जीवन के लिये ज्योति देते हैं। यहाँ कहा नाध्वसु वारणेषु (भयानक मार्गों में) क्योंकि द्यौ और पृथिवी के बीच के मार्ग भयानक हैं। इन्हीं मार्गों में उसको चलना है। इसलिये कहता है भयानक मार्गों में ॥३७

अब इन्द्र की स्तुति है। इन्द्र ही यज्ञ का देवता है। इसलिए इन्द्र से ही अग्नि के उपस्थान को सम्बद्ध करता है—

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।

उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥ [य० ३.३४]

हे इन्द्र! तू कभी रिक्त नहीं, और कभी अपने सेवक को विफल नहीं करता। दाशुषे का तात्पर्य यजमान है। तू यजमान से कभी द्रोह नहीं करता। इस मन्त्र के पढ़ने का यही तात्पर्य है।

हे मघवन्, तुझ देव का दान अधिक ही होता जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि हमको यहाँ अधिक पुष्ट कर ॥३८

अब साविद्री का जप है। सविता देवों का प्रेरक है। सविता की प्रेरणा से ही सब काम सफल होते हैं। इसलिए कहता है—

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (य० ३.३५) ॥३९

अब अग्नि के लिये एक मन्त्र है,अपने को अन्त में रक्षार्थ अग्नि को ही समर्पण करता है--

परि ते दूडभो रथोऽस्माँऽअश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः॥ य.३.३६

तेरा अवध्य रथ हमको चारों ओर से ढक ले जिससे तू दानियों की रक्षा करता है। दाशुषः का अर्थ है यजमान, और अग्नि के पास जो अवध्य रथ (रमणीय साधन) है उससे वह यजमानों की रक्षा करता है। इसके कहने का तात्पर्य है हे अग्नि,जो अवध्य रथ तेरे पास हैं और जिससे तू यजमानों की रक्षा किया करता है उससे हर ओर से हमारी रक्षा कर। तीन बार इसको जपता है ॥४०

अब वह अपने पुत्र का नाम लेता है। मेरा यह पुत्र [नाम लेकर] मेरे इस एक क्रम को जारी रक्खे। यदि पुत्र न हो तो अपना ही नाम ले ले ॥ ४१

ब्राह्मणम् ॥३॥ [३.४] अध्यायः ॥३॥ [१२]

अध्याय ४ ब्राह्मण १

अग्निहोत्र के पश्चात् यजमान अग्नि की प्रार्थना करता है—

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। य.३.३७

ऐसा कहकर वह अपनी वाणी को सत्य से पवित्र करता है और वाणी को पवित्र करके आर्शीर्वाद मांगता है। मैं अच्छी सन्तानवाला होऊँ। इससे सन्तान को चाहता है; इससे वीरों को चाहता है, और इससे पुष्टि चाहता है। १

वह बड़ी प्रार्थना भी आशीर्वाद थी और वह छोटी प्रार्थना भी उसी के लिए है। इससे भी वह सबको प्राप्त करता है अतः वह यह प्रार्थना करे। आसुरि का कथन है कि हम इसी से अग्निहोत्र करें। २

यदि प्रवास(यात्रा) करना हो तो पहले गार्हपत्य के पास जाये फिर आवनीय के ॥३

गार्हपत्य के पास जाकर कहता है— नर्य प्रजां पाहि। य० ३.३७ हे नरों के मित्र, मेरी सन्तान की रक्षा कर। गार्हपत्य प्रजा का अधिष्ठाता है,अतः रक्षा के लिये वह प्रजाको उसीको सौंपता है ॥४

अब आहवनीय के पास जाकर कहता है—

शंस्य पशून् मे पाहि। [य० ३.३७]

हे प्रशंसनीय मेरे पशुओं को बचा। आहवनीय पशुओं का अधिष्ठाता है, अतःपशुओं की रक्षा के लिए उसे सौंपता है ॥५

अब वह मौन चलता है जब यात्रा आरम्भ करता है। और जिस किसी सीमा को मान लेता है वहाँ तक चलकर बोलता है। तथा जब यात्रा से वापिस आता है तो मानो मानी हुई सीमा के भीतर आने पर मौन रहता है। चाहे उस समय घरमें राजा भी उपस्थित हो तो भी पहले अग्नि के पास जाता है ॥६

पहले आहवनीय के पास फिर गार्हपत्य के पास जाता है। गार्हपत्य ही घर है तथा घर ही प्रतिष्ठा का स्थान है। अतः वह अपने को घर अर्थात् प्रतिष्ठा के स्थान में स्थापित करता है ॥७

वह इस मन्त्र से आहवनीय का उपस्थान करता है—

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्।
अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽ आयच्छस्व ॥ [य० ३.३८]

हे सम्राट् अग्नि! हम तुझ विश्ववेदस् (सबके जानने वाले)वसुवित्तम (धन बाँटने वाले) के पास आते हैं। हमको प्रकाश और बल

दे।' और खड़े होकर तृणों से आग को तीव्र करता है ॥८

इस मन्त्र को पढ़कर गार्हपत्य के पास जाता है—

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्य; प्रजाया वसु वित्तमः।

अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥ [य० ३.३६]

गार्हपत्य अग्नि घर का स्वामी तथा हमारी सन्तान के लिए दान देने वाला है। हे घर के स्वामी अग्नि, हमको प्रकाश तथा बल दे।' अब वह बैठकर तृणों से अग्नि को तीव्र करता है। इस प्रकार यजमान जप करके अग्नि के पास जाया करते हैं ॥९

मौन होकर ही उपस्थान करे इसलिए कि यदि किसी स्थान में कोई ब्राह्मण, राजा या श्रेष्ठ मनुष्य रहता हो तो कोई उससे यह नहीं कह सकता कि मैं यात्रा पर जा रहा हूं तुम मेरे माल की रक्षा करना। यहाँ भी श्रेष्ठ अग्नि देवों का निवास है। इसलिए इनसे कौन कह सकता है कि आप रक्षा कीजिये, मैं यात्रा को जा रहा हूं ॥१०

देव मनुष्यों के मन को जानते हैं। गार्हपत्य पर अग्नि को ज्ञात है कि वह अपने को मुझे सौंपने आया है। आहवनीय में भी मौन होकर जाये क्योंकि आहवनीय को भी ज्ञात है कि यह अपने को मुझे सौंपने आया है ॥११

अब वह पैदल या सवारी में चल पड़ता है और नियत सीमा तक जाने के बाद मौन तोड़ता है। तथा जब लौटता है तो जिसको सीमा मान रक्खा है उसको देखते ही मौन धारण कर लेता है और चाहे भीतर राजा भी क्यों न हो वह उसके पास नहीं जाता ॥१२

वह पहले आहवनीय के पास जाता है तथा फिर गार्हपत्य के पास, आहवनीय के पास मौन होकर जाता है तथा मौन ही बैठकर तृणों से अग्नि को तीव्र करता है। गार्हपत्य में भी मौन होकर जाता है और मौन ही बैठकर तृणों से अग्नि को तीव्र करता है ॥१३

अब घर में यह उपचार है। जब कोई गृहपति बाहर से वापस आता है तो घर वाले डर जाते हैं कि यह क्या कहेगा या क्या करेगा। और जब वह कुछ कहता है या करता है तो घरवाले डर जाते हैं और उसके कुल में क्षोभ होता है। तथा जो गृहपति न कुछ कहता है, न करता है तो उसके घर वाले सन्तुष्ट रहते हैं कि इसने न कुछ कहा न कुछ किया। इसलिये यदि गृहपति किसी कारण क्रुद्ध भी हो तो जो कुछ कहना या करना हो वह दूसरे दिन कहे या करे। यह घर में आने की विधि है ॥१४

ब्राह्मणम् ।३। [४.१]

—❀—

शतपथब्राह्मण का२ अ४ ब्रा२

❀ पिण्डपितृयज्ञ ❀

सभी साधारण प्राणी प्रजापति के पास गये। उन्होंने कहा— हमको वह विधि बताओ जिससे हम जीवन व्यतीत करें। इस पर यज्ञोपवीत पहने हुए देव दाहिना घुटना झुकाकर, उसके पास आकर बैठे। उसने उनसे कहा– यज्ञ तुम्हारा अन्न है, अमृतत्व तुम्हारा बल है और सूर्य तुम्हारी ज्योति है ॥१

अब पितर [वानप्रस्थी] दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत पहने, बायाँ घुटना झुकाकर उसके पास बैठे। उनसे उसने कहा– तुम्हारा प्रतिमास भोजन,तुम्हारे मनकी तेजी स्वधा और चन्द्रमा तुम्हारी ज्योति होगा।२

अब मनुष्य उसके पास कपड़े पहने और शरीर को झुकाये हुये आए। उनसे उसने कहा– सायं और प्रातः तुम्हारा भोजन,मृत्यु तुम्हारी प्रजा और अग्नि तुम्हारी ज्योति होगा ॥३

अब उसके पास पशु आये। उनको उसने स्वेच्छाचारी कर दिया जब कभी तुम कोई चीज पाओ, चाहे समय पर,चाहे कुसमय, तुम खा जाओ। इसलिये जब वे कोई वस्तु पाते हैं चाहे समय पर, चाहे कुसमय, वे खा जाते हैं ॥४

कहते हैं कि तत्पश्चात् असुर भी पहुँचे। उनको उसने अन्धकार और माया दी। इसलिए आसुरी माया होती है। वे तो नष्ट हो गए, लेकिन आजकल भी वैसी प्रजा है जो उसी प्रकार बरतती है, जैसे प्रजापति ने उनके लिए निर्धारित किया था ॥५

देव, पितर या पशु इन नियमों का उल्लंघन नहीं करते। कुछ मनुष्य ही उल्लघन करते हैं। इसलिए मनुष्यों में जो मोटा हो जाता है वह अशुभ कार्यों के कारण मोटा हो जाता है, और क्योंकि वह अनृत के कारण मोटा होता है अतः वह चल नहीं सकता, उसके पैर लड़खड़ाते हैं। इसलिये सायं और प्रातःकाल को ही खाना चाहिए। जो इस रहस्य को जानकर सायं और प्रातः ही खाता है वह पूर्ण आयु को प्राप्त होता है। जो कुछ वह बोलता है वही होता है, क्योंकि वह देव–सत्य की रक्षा करता है। जो प्रजापति के व्रत को पाल सकता है उसमें ब्रह्म-तेज आ जाता है ॥६

यह तेज उसी को होता है जो मास में एक बार पितरों को अन्न देता है। जब पूर्व या पश्चिम में चन्द्र न दीखे तब उसको अन्न देता

है। क्योंकि चन्द्रमा सोम राजा है जो देवों का भोजन है। अमावस्या को वह क्षीण होता है तब पितरों को भोजन देता है। इस प्रकार वह देवों-पितरों में समन्वय कराता है। लेकिन यदि उस समय देगा जब चन्द्र क्षीण नहीं है तो देवों और पितरों में झगड़ा हो जायगा। अतः तभी भोजन दे जब चन्द्र न पूर्व में दीखे न पश्चिम में ॥७

वह दोपहर के बाद देता है। पहला पहर देवों का है; दोपहर मनुष्यों का और तीसरा पहर पितरों का है। अतः तीसरे पहर देता है ॥८

वह गार्हपत्य के पीछे बैठकर यज्ञोपवीत दक्षिण कन्धे पर रक्खे हुए दक्षिण की ओर मुंह करके हवि लेता है। फिर वहाँ से उठकर अन्वाहार्य-पचन के उत्तर की ओर खड़ा होकर दक्षिण की ओर मुंह करके चावल फटकता है। एक बार ही फटकता है क्योंकि एक बार ही पितर गये थे अतः एक ही बार फटकता है ॥९

फिर पकाता है। पकते हुये में घी छोड़ता है। देवों के लिये हवि अग्नि में छोडी जाती है। मनुष्यों के लिए [भोजन] निकालकर लिया जाता है। और पितरों के लिए जब यह आग पर पक रहा हो उसमें घी छोड़ते हैं॥१०

वहाँ से उठकर अग्नि में देवों के लिये दो आहुतियाँ देता है। जो अग्नि स्थापित करता है या जो दर्शपूर्णमास करता है वह देवों की सेवा में उपस्थित होता है। परन्तु उसे यहां पितृयज्ञ करना है। अतः देवों को प्रसन्न करता है कि उनको प्रसन्न करने के पश्चात् पितरों को दे। अतः वहाँ से उठकर अग्नि में देवों के लिए दो आहुतियां देता है ॥११

वह अग्नि और सोम के लिए आहुतियाँ देता है। अग्नि में आहुति इसलिए देता है कि अग्नि का भाग तो सर्वत्र दिया जाता है। सोम के लिए इसलिये देता हूं कि सोम पितरों का देवता है। अतः अग्नि और सोम के लिये देता है ॥१२

वह इस मन्त्र से आहुति देता है—

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। सोमाय पितृमते स्वाहा ॥ य० २.२९

[बुद्धिमान् कवियों के लिए ले जाने वाले अग्नि के लिए। पितृ-युक्त सोम के लिये।] स्विष्टकृत् के बदले आग पर मेक्षण (चमचा) रखता है। अब दक्षिणाग्नि के दक्षिण में वेदि के पहले एक रेखा खींचता है, पितर एकही बार जाते हैं अतः एकबार रेखा खींचता है॥१३

अब दूसरे छोर पर जलती हुई लकड़ी रखता है क्योंकि यदि बिना इस लकड़ी के रक्खे पितरों को भोजन दिया गया तो असुर-राक्षस उसको बिगाड़ ही जायेंगे। इस प्रकार असुर-राक्षस उसको नहीं

बिगाड़ते अत: वह जलती हुई लकड़ी को रखता है ॥१४

वह यह मन्त्र पढ़कर रखता है —

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽ असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ॥य. २.३०

छोटे या बड़े शरीर वाले जो असुर रूपों को बदलते हुए स्वतन्त्रता से विचरते हैं, अग्नि उनको इस लोक से निकाल दे।' अग्नि राक्षसों को भगाने वाला है अत: वह जलती लकड़ी रखता है ॥१५

अध्वर्यु जलका पात्र लाकर हाथ धुलाता है। यजमान के पिता का, पितामह का, प्रपितामह का नाम लेकर– आप हाथ धोइये। जैसे अतिथि को जल देते हैं वैसे यहाँ भी ॥१६

कुश एक चोट में जड़ से काटे जाते हैं। उनका अगला भाग देवों का, बीच का मनुष्यों का और जड़ पितरों की होती है अत: वे जड़ से काटे जाते हैं। वह एक ही चोट से इसलिए काटे जाते हैं कि पितर लोग एक ही बार में आते हैं ॥१७

वह उनके सिरों को दक्षिण की ओर करके फैलाता है। जव (अन्न) देता है। वह इसप्रकार (हाथसे बताकर) अन्न देता है। देवों को इस प्रकार दिया जाता है (यहाँ भी हाथ से विधि बताई जाती है)। मनुष्यों को इस प्रकार परोसते हैं। और पितरों के लिए इस प्रकार। अत: वह इस प्रकार देता है ॥१८

यजमान के पिता का नाम लेकर–यह तुम्हारे लिये। कुछ लोग इस के साथ में यह भी कहते हैं– और उनके लिए जो तुम्हारे पीछे आवें। परन्तु उसको ऐसा न कहना चाहिये। क्योंकि वह भी तो उन्हीं में से है, इसलिये पिता का नाम लेकर कहे– यह तुम्हारे लिये। बाबा का नाम लेकर– यह तुम्हारे लिये। पर-बाबा का नाम लेकर– यह तुम्हारे लिये। वर्तमान समय से आरम्भ करके पिछले-पिछले के क्रम से देता है क्योंकि पितरों के आने का वर्तमान की अपेक्षा यही क्रम है ॥१९

अब वह जपता है–

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्। य० २.३१

हे पितरो! यहाँ प्रसन्नता से अपने अपने हिस्से का खाओ ॥२०

अब मुड़कर उत्तर की ओर खड़ा होता है। क्योंकि पितर मनुष्यों से बिल्कुल दूसरी ओर हैं। और वह भी पितरों से दूसरी ओर है। कुछ लोग कहते हैं कि जब तक साँस रोक सके उस समय तक खड़ा रहे क्योंकि प्राण इतने ही होते हैं। अस्तु एक महूर्त बैठकर– ॥२१

दाहिनी ओर मुड़कर जपता है—

अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत। य० २.३१

पितरों ने खा लिया और बहुत तृप्त हुये ॥२२

अब जलपात्र लेकर हाथ धुलाता है। यजमान के पिता, बाबा, पर-बाबा का नाम लेकर अध्वर्यु कहता है–आप हाथ धोइये। जिस प्रकार अतिथियों को खाना खिलाकर धुलाते हैं उसी प्रकार यहाँ भी ॥२३

नीवि [निचला कपड़ा और ऊपर का कपड़ा दोनोंमें गाँठदी जातीहै] उसको खोलता है। नीवि पितरों की है इसलिये उसे खोलकर नमस्कार करता है। नमस्कार यज्ञ है। अतः इस प्रकार वह उनको यज्ञके योग्य बनाता है। छः बार नमस्कार करता है क्योंकि छः ऋतुएं हैं और पितर ऋतुएँ हैं। अब कहता है —

गृहान्नः पितरो दत्त। य० २.३२

हे पितरो, हमको घर दीजिये।' पितर घरों के रक्षक हैं इसलिए इस कर्म से आशीर्वाद चाहता है। भोजन को पीछे हटाकर सूंघता है। क्योंकि यह यजमान का भाग है। एक चोट में कटे हुये कुश को अग्नि पर रखता है। और उल्मुक को भी बनाता है ॥२४

ब्राह्मणम् ॥४ [४.२]

अध्याय ४ ब्राह्मण ३ आग्रयणेष्टि (नवान्नयज्ञ)

कहोड कौषीतकि ने कहा — यह रस वस्तुतः द्यावा–पृथ्वी का है। इन देवोंको आहुति देकर खावें, अतः आग्रयणेष्टियज्ञ किया जाता है ॥१

याज्ञवल्क्य का भी कथन है कि प्रजापति की सन्तान देव और असुर स्पर्धा करने लगे। तब असुरों ने दोनों प्रकार की ओषधियों (अन्नों)को [जिनके सहारे मनुष्य और उनके पशु रहते हैं] कुछ अपनी क्रिया से और कुछ विष के द्वारा नष्ट कर दिया कि इस प्रकार हम देवों पर विजय पालेंगे। इस पर न मनुष्य कुछ खा सके और न ही पशु, तथा भोजन के अभाव में ये पराजित से हो गये।।२

जब देवों ने सुना कि बिना भोजन के यह प्रजा पराजित हो रही है, उन्होंने कहा — इस सब विष आदि को हटाना चाहिए। कैसे? यज्ञ के द्वारा। देव जो कुछ करना चाहते थे वह उन्होंने यज्ञ के द्वारा किया और ऋषियों ने भी ॥३

तब उन्होंने कहा— यह यज्ञ हममें से किसका होगा? हर एक ने कहा–मेरा-मेरा और निश्चित न कर सके। निश्चय न कर सकने पर उन्होंने कहा— चलो दौड़ में दौड़ें। हममें से जो जीत जायगा उसी

का यह होगा। अच्छा कहकर वे दौड़े।४

इन्द्र-अग्नि जीत गये। इसलिए १२ कपाल का पुरोडाश उनका होता है। इन्द्र-अग्नि जीतने पर जहाँ खड़े थे वहाँ सब देव भी गये।५

इन्द्र-अग्नि क्षत्रिय हैं, सब देव वैश्य। जहाँ क्षत्रिय जीतता है वहाँ वैश्यों को अवश्य भाग मिलता है। देवों को भाग मिल गया इसलिए चरु वैश्वदेव होता है।६

कुछ लोगों का विचार है कि चरु पुराने अन्न का हो क्योंकि इन्द्र और अग्नि क्षत्रिय हैं इसलिये वैश्य क्षत्रियों के बराबर हो जायँगे। परन्तु दोनों को नया अन्न ही होना चाहिए, केवल वह पुरोडाश है और यह चरु है। इन दोनों के नये होने से ही क्षत्रियों के बराबर वैश्य नहीं हो सकते। अतः पुरोडाश और चरु दोनों नये अन्न के ही हों।७

अब देवों ने कहा- यह रस वस्तुतः द्यावापृथ्वी का है। इसलिये इनको यज्ञ में भाग देंगें। इसलिए उन्होंने उन दोनों को एक-कपाल का पुरोडश भाग दिया। क्योंकि यह पृथ्वी उस रस का कपाल है और वह एक ही है अतः पुरोडाश भी एक कपाल का होता है।८

उसका एक दोष है, चाहे किसी देवता को हवि दी जाय, पीछे से एक भाग स्विष्टकृत् का होता है। परन्तु यहाँ पूरी आहुति दे दी जाती है, स्विष्टकृत् के लिये कुछ बचाया नहीं जाता। इसलिये आहुति उल्टी पड़ जाती है।९

इसलिये कहते हैं- यह एककपाल पुरोडाश उलटा पड़ गया। यह राष्ट्र को बिगाड़ देगा। परन्तु इनमें कुछ दोष नहीं। आहुतियों की प्रतिष्ठा आहवनीय है। जब आहुति आहवनीय में पहुंच गई तो चाहे दस बार उलट जाय, कुछ चिन्ता नहीं। और यदि कोई कहे कि इन दोषों के भार को कौन सहे, तो केवल घी की ही आहुति दे, क्योंकि इन द्यावा-पृथ्वी का प्रत्यक्ष रस घी है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में इन को वह इन्हीं के रस या मेध[तत्त्व] से तृप्त करता है अतः घी की ही आहुति दे।१०

यज्ञ करके देवों ने उन सब ओषधियों को जिनके सहारे मनुष्य या पशु रहते हैं, असुरों की चालाकी और विष से मुक्त कर दिया। इसलिये अब मनुष्य भोजन करने लगे और पशु चरने लगे।११

अब वह जो यज्ञ करता है, या तो इसलिये करता है कि कोई चालाकी या विष से वनस्पति बिगाड़ने न पाय या केवल इसलिये कि देवों ने ऐसा किया था। और जो भाग देवों ने अपने लिये निकाला था वह भी उनके लिये निकाल देता है। इसके अतिरिक्त वह दोनों

प्रकार के पौधों को, जिनके सहारे मनुष्य और पशु रहते हैं; विष-रहित कर देता है। ये मनुष्य और पशु इसके दोष-रहित पौधे के सहारे जीते हैं। अतः वह इस यज्ञ को करता है। १२

इस यज्ञ की दक्षिणा गाय का पहला बच्चा है। क्योंकि यह अग्र अर्थात् पहला फल होता है। यदि दर्श–पूर्णमास यज्ञ कर चुका हो तो पहले उनकी आहुतियाँ दे तथा फिर इस यज्ञ को करे। और यदि नहीं किया तो अन्वाहार्य-पचन अग्निपर चातुष्प्राश्य को पका ले तथा ब्राह्मणों को खिला दे।१३

देव दो प्रकार के हैं। एक तो देव तथा दूसरे ब्राह्मण जो वेदपाठी हैं, ये मनुष्य–देव हैं। जिस प्रकार वषट्कार की आहुति होती है वैसो यह भी है। इस समय भी वह जितनी हो सके उतनी दक्षिणा दे क्योंकि कहते हैं– कोई हवि दक्षिणाके बिना पूरी नहीं होती। अग्निहोत्रमें नया अन्न न डाले, नहीं तो झगड़ा होगा। आग्रयण भिन्न है और अग्नि-होत्र भिन्न। इसलिए अग्निहोत्र में नया अन्न न डाले। १४

ब्राह्मणम् ॥५ [४.३] तृतीयः प्रपाठकः कण्डिका संख्या ॥११३

अध्याय ४ ब्राह्मण ४ दाक्षायण यज्ञ

प्रजापति ने पहले प्रजाकी कामनासे यह यज्ञ किया। उसने सोचा- मैं बहुत प्रजा और पशुओं से युक्त हो जाऊँ, श्री मिल जाय, यशस्वी हो जाऊँ अन्न पचाने वाला हो जाऊँ। १

उसका नाम दक्ष था, और पहले उसने इस यज्ञ को किया, इसलिए यज्ञ का दाक्षायण यज्ञ नाम पड़ा। कुछ इसे वसिष्ठ-यज्ञ कहते हैं क्योंकि वह वसिष्ठ ही है। जिस के नाम पर यज्ञ का नाम पड़ा। उसने यज्ञ किया और इस यज्ञ से उस प्रजापति ने जो सन्तान, श्री, विभूति प्राप्त की उसी सन्तान, श्री को वह भी प्राप्त होता है जो इस यज्ञ को करता है। अतः इस यज्ञ को करे। २

प्रतीदर्श श्वैक्न ने भी इसी यज्ञ को किया, और जिन्होंने उनका अनुकरण किया उनके लिए वह प्रमाण था। जो इस रहस्य को समझ कर इस यज्ञ को करता है वह प्रमाण सा हो जाता है। इसलिए इस यज्ञ को करे। ३

सुप्ला सार्ञ्जय ब्रह्मचर्य व्रत के लिये उनके पास आया, इसलिए उसे यह और अन्य भी यज्ञ सिखाये। वह उनको सीखकर सृञ्जय (अपने देश) में चला गया। अब उन्होंने जान लिया कि यह हमारे लिये यज्ञ

को सीखकर आया है। उन्होंने कहा– यह जो यज्ञ सीखकर आया है मानो देवों के साथ आया है इसलिये उसका सहदेव साञ्जय नाम पड़ गया। अब तक यह कहावत चली आती है कि अरे सुप्ला का दूसरा नाम रख दिया गया। उसने इस यज्ञको किया तथा जो सन्तान वैभव इस यज्ञ के करने से सृञ्जयों को प्राप्त हुआ उसी को वह भी उत्पन्न करता और प्राप्त होता है जो इस रहस्य को समझ कर यज्ञ करता है। अतः इस यज्ञ को करे। ४

देवभाग श्रौतर्ष ने भी यज्ञ किया था। वह कुरुओं और सृञ्जयों–दोनों का पुरोहित था। जो एक राष्ट्र का पुरोहित होता है उसकी बड़ी पदवी होती है और उसकी पदवी का क्या कहना जो दो राष्ट्रों का पुरोहित हो। जो इस रहस्य को समझकर इस यज्ञ को करता है वह उसी बड़ी पदवी को पाता है। अतः इस यज्ञ को करे। ५

दक्ष पार्वति ने भी यही यज्ञ किया था। आज तक ये दाक्षायण राज्य को पाये हुए हैं। जो कोई इस रहस्य को समझकर इस यज्ञ को करता है वह भी राज्य को पा जाता है। इसलिए इस यज्ञ को करे। एक-एक पुरोडाश प्रतिदिन देना होता है। इसलिए उसकी श्री बिना शत्रु के और बिना बाधा के होती है। वह पूर्णमासी के दो दिन और अमावास्या के दो दिन यज्ञ करता है। दो का नाम है जोड़ा। इसप्रकार वह उत्पन्न करने वाले जोड़े से सम्पन्न हो जाता है। ६

पूर्णिमा के पहले दिन अग्नि और सोम को एक पुरोडाश देता है। ये दो देवता हैं। दो का अर्थ है जोड़ा। इस प्रकार वह उत्पन्न करने वाले जोड़े से सम्पन्न हो जाता है। ७

दूसरे दिन अग्नि का पुरोडाश और इन्द्र का सान्नाय्य होता है। ये दो देवता हैं। दो का अर्थ है जोड़ा। इस प्रकार वह उत्पन्न करने वाले जोड़े से सम्पन्न हो जाता है। ८

अमावस्या के पहले दिन इन्द्र–अग्नि को पुरोडाश देता है। ये दो देवता हैं। दो का अर्थ है जोड़ा। इस प्रकार एक उत्पत्ति करने वाले जोड़े से सम्पन्न हो जाता है। ९

दूसरे दिन प्रातः अग्नि के लिए पुरोडाश और मित्र-वरुण के लिए पयस्या (दही या खीर)। अग्नि का पुरोडाश केवल इसलिए कि वह यज्ञ से चला न जाय। मित्र और वरुण दो देवता हैं। दो का अर्थ है जोड़ा। वह इस प्रकार उत्पन्न करने वाले जोड़े से सम्पन्न हो जाता है यह उसका वह स्वरूप है जिससे वह बहुत हो कर उत्पन्न होता है। १०

और जो पूर्णिमा के पहले दिन अग्नि-सोम का पुरोडाश दिया जाता

है वह ऐसा है जैसा सोमयज्ञ में उपवास के दिन पशु की प्राप्ति। ११

दूसरे दिन अग्नि का पुरोडाश और इन्द्र का सान्नाय्य। अग्नि का पुरोडाश वैसा ही है जैसा सोमयज्ञ में प्रातःकाल की आहुति। क्योंकि प्रातःकाल का सवन अग्नि का होता है। इन्द्र का सान्नाय्य वैसा ही है जैसा सोमयाग में मध्यदिन का सवन। क्योंकि मध्यदिन का सवन इन्द्र का होता है। १२

अमावस्या के पहले दिन जो इन्द्र–अग्नि का पुरोडाश दिया जाता है वह वैसा ही है जैसा तृतीय सवन। क्योंकि तृतीय सवन विश्वेदेवों का है और वस्तुतः इन्द्र–अग्नि विश्वेदेवाः ही हैं। १३

और जो दूसरे दिन अग्नि के लिए पुरोडाश और मित्र-वरुण के लिए पयस्या होती है, इसमें अग्नि का पुरोडाश केवल इसलिए है कि कहीं अग्नि यज्ञ छोड़कर चली न जाय। और पयस्या मित्र-वरुण के लिए उसी प्रकार है जैसे सोमयाग में मित्र-वरुण के लिए अनूबन्ध्या गाय दी जाती है। इस प्रकार पूर्णमासी और अमावस्या की इष्टियों से मनुष्य को उतना ही फल मिल जाता है जितना सोमयाग से, क्योंकि वह महायज्ञ है। १४

और यह जो पूर्णिमा के पहले दिन अग्नि और सोम के लिए आहुति दी जाती है वह इसलिए है कि इन्द्र ने वृत्र को मारा था। इसी से उसको वह विजय प्राप्त हुई जो आज उसे प्राप्त है। इसी प्रकार यह यजमान भी इस यज्ञ से द्वेषी पापी शत्रु को मारता है और उस पर विजय प्राप्त करता है। और यह जो सान्नाय्य अर्थात् दूध और दही को मिलाना है, यह सान्नाय्य अमावस्या का है। अमावस्या का अर्थ है दूर होना। जिस इन्द्र ने वृत्र को मारा था उसको तुरन्त ही यह आहुति दी गई थी और तुरन्त ही उसको रस से प्रसन्न किया गया था। इसलिए जो पुरुष इस रहस्य को समझकर पूर्णमासी को सान्नाय्य बनाता है वह तुरन्त ही पाप को दूर भगा देता है। यह जो चरु है वह सोम–राजा और देवों का अन्न है। वे पहले दिन रस निकालते हैं कि दूसरे दिन खायेंगे। इसलिए जब चन्द्र क्षीण होने लगता है तो मानो देव उसको खाने लगते हैं। १५

और यह जो पूर्णिमा के पहले दिन अग्नि तथा सोम के लिए पुरोडाश दिया जाता है मानो उस प्रकार वह सोम–रस निचोड़ लेता है। निचोड़ने के पश्चात् उसमें मिलाता है और उसे तीव्र करता है। जो पुरुष इस भेद को समझकर पूर्णिमा को सान्नाय्य तैयार करता है वह मानो देवों के लिए हव्य को स्वादिष्ट बनाता है और इसका हव्य देवों के लिए स्वादिष्ट हो जाता है। १६

शतपथब्राह्मण का २ अ१ ब्रा२

और यह जो अमावस्या के पहले दिन इन्द्र–अग्नि के लिए पुरोडाश दिया जाता है वह इसलिए है कि इन्द्र-अग्नि अमावस्या और पूर्णिमा के देवता हैं। इन्हीं के लिए वह सीधा प्रत्यक्ष रूप से हव्य देता है। जो इस भेद को समझता है वह दर्श और पूर्णमास की इष्टियों को करता है। १७

और दूसरे दिन अग्नि का पुरोडाश होता है तथा मित्र और वरुण के लिए पयस्या। अब अग्नि का पुरोडाश इसलिए है कि अग्नि यज्ञ को छोड़कर चला न जाय। मित्र और वरुण अर्धमास हैं। बढ़ता हुआ वरुण है और घटता हुआ मित्र। उस अमावस्या की रात्रि को वे दोनों मिलते हैं, और जब वे मिलते हैं तो यजमान दोनों को प्रसन्न करता है जो इस रहस्य को समझता है सब उससे प्रसन्न रहते हैं तथा उस को सब कुछ प्राप्त होता है। १८

मित्र उसी रात को वरुण में वीर्य सींचता है। तथा जब यह चन्द्र घटता है तो फिर उसी वीर्य से उत्पन्न होता है। यह जो मित्र और वरुण की पयस्या है वह सान्नाय्य के समान है। १९

अमावास्या सान्नाय्य के योग्य है, यह पूर्णिमा को नहीं तैयार किया जाता। यदि वह पूर्णिमा को भी सान्नाय्य बनावे तो दुहराने के दोष का भागी हो और देवताओं में झगड़ा हो जाय। इस सोम को जलों तथा ओषधियों से इकट्ठा करके आहुतियों के लिए उत्पन्न करता है। और यह आहुतियों के पश्चात् उत्पन्न होकर पश्चिम की ओर चमकता है। २०

इसको जोड़े से उत्पन्न करता है। पयस्या स्त्री है और मट्ठा वीर्य है। जो जोड़े से उत्पन्न होता है वह ठीक होता है। इसलिये वह इस को जोड़े से उत्पन्न करता है और इसीलिए यहाँ पयस्या तैयार की जाती है। २१

अब मट्ठे की आहुति वाजियों के लिए दी जाती है वाजी ऋतुएं हैं और वाजी वीर्य मट्ठा है। यह वीर्य अनुष्ठान से सींचा जाता है। सींचे हुये वीर्य से ऋतुएँ इन प्रजाओं को उत्पन्न करती हैं। इसलिए वाजी के लिए वाजी की आहुति देता है। २२

वह यज्ञ के पश्चिम में आहुति देता है। पीछे की ओर से पुरुष स्त्री के पास जाता है और वीर्य-सिञ्चन करता है। वह पहले पूर्व की ओर

आहुति देता है– अग्ने वीहि। 'हे अग्नि, स्वीकार करो' यह पढ़कर वषट्कार को दुहराता है, यह स्विष्टकृत् के बदले में है, इसको पूर्व की ओर देता है ॥२३

अब वह इस मन्त्र से दिशाओं के लिये आहुति देता है—

दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा। यः ६.१९

पाँच दिशायें हैं तथा पाँच ऋतुएँ, इस प्रकार दिशाओं का जोड़ा मिलाता है ॥२४

(चमसे में जो बचा रहता है उसे) पाँच लोग चखते हैं–होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, आग्नीध्र और यजमान। पाँच ही ऋतुएँ हैं। इस प्रकार वह ऋतुओं के तद्रूप हो जाता है, और जो वीर्य जाता है वह प्रतिष्ठित हो जाता है। यजमान पहले चखता है कि मुझे पहले वीर्यकी प्राप्ति हो, वह पीछे भी चखता है कि मुझमें वीर्य अन्त तक रहे। 'उपहूत उपह्वयस्व' कहकर वह इसको सोम बना लेता है ॥२५

ब्राह्मणम् ॥१ [४.४] अध्यायः ॥४ [१३] ॥

अध्याय ५ ब्राह्मण १ (चातुर्मास्ययज्ञ)

सृष्टि के पहले केवल प्रजापति ही था। उसने ईक्षा की कि कैसे प्रजा उत्पन्न करूँ। उसने श्रम और तप किया, उसने प्रजा उत्पन्न की। वह उत्पन्न प्रजा हीन हुई, ये वे पक्षी हैं, पुरुष प्रजापति के निकटतम हैं जिसके दो पैर होते हैं, वैसे पक्षियों के भी दो पैर होते हैं। १

प्रजापति ने ईक्षा की मैं पहले भी अकेला था अब भी अकेला हूं, इस लिए उसने दुबारा सृष्टि की, वह भी हीन हुई, ये वे कीड़े हैं जो साँप के अतिरिक्त हैं। कहते हैं कि उसने तीसरी बार सृष्टि की, वह भी हीन हुई वे साँप हैं। याज्ञवल्क्य उनको दो प्रकार के बताते हैं। परन्तु ऋग्वेद के अनुसार तीन प्रकार के हैं। २

प्रजापति ने अर्चा और श्रम करते हुए सोचा कि मेरी बनायी हुई प्रजा हीन कैसे हो जाती है, तब उसे मालूम हुआ कि वह बिना भोजन के मर जाती हैं। इसलिए आत्मा के स्तनों में दूध पहले से ही भर दिया, तब उसने प्रजा उत्पन्न की, और ये उत्पन्न प्रजा स्तनों का दूध पीकर जीती रही, वह मरी नहीं। ३

इसलिए ऋषि (ईश्वर) ने ऐसा कहा—

प्रजा ह तिस्रोऽअत्यायमीयुः। (ऋ० ८.१०१.१४)

'तीन प्रजायें मर चुकीं।' यह उसके लिए कहा गया, जो मर चुकीं।

न्यन्याऽअर्कमभितो विविश्रे [ऋ० ८.१०१.१४]। दूसरी आग (प्रकाश) के चारों ओर बस गई। अग्नि ही अर्क है।' इसलिए कहा कि जो प्रजा जीती रही वह अग्नि के चारों ओर बस गई ॥४

महद्ध (वृहद्ध) तस्थौ भुवनेष्वन्तः (ऋ ८.१०१.१४)। महान् (आत्मा) भुवनों के भीतर रही।

यह प्रजापति के विषय में कहा गया। 'पवमानो हरितऽआविवेश' [ऋ ८.१०१.१४] पवित्र करने वाला वायु देशों में प्रविष्ट हो गया।' हरित का अर्थ है दिशायें, पवमान यह हवा है। यह हवा ही दिशाओं में भर गयी। इसी का ऋचा में संकेत है। जिस प्रकार प्रजापति ने इन प्रजाओं को उत्पन्न किया उसी प्रकार ये उत्पन्न होती हैं। क्योंकि जब स्त्रियों और पशुओं के थनों में दूध आ जाता है तभी बच्चा पैदा होता है, और स्तन को पीकर ही वे जीते हैं ॥५

यह दूध ही अन्न है, क्योंकि प्रजापति ने पहले इसी भोजन को उत्पन्न किया। अन्न ही प्रजा है क्योंकि अन्न ही से यह उत्पन्न होत है। जिनके स्तनों में दूध है उसको पीकर ही वे जीते हैं तथा जिनके दूध नहीं होता वह अपने बच्चों को जन्मते ही 'चुगा' देते हैं। इस तरह वे अन्न से ही जीते हैं इसलिए अन्न ही प्रजा है ॥६

जो सन्तान की कामना करता है वह इस हवि से यज्ञ करता है।] इस तरह अपने को प्रजापति रूपी यज्ञ बना लेता है ।७ [शतम् १२००

अग्नि का पुरोडाश आठ कपालों में बनता है, अग्नि ही देवताओं का मुख और उत्पादक प्रजापति है। इसलिए अग्नि के लिए पुरोडाश होता है ।८

इसके पीछे सोम का चरु होता है, सोम वीर्य है और वह उत्पादक अग्नि में सोम को सींचता है, इस तरह उत्पादक जोड़ा होता है।९

अब ८ या १२ कपालों में सविता के लिए पुरोडाश होता है, सविता देवों का प्रेरक प्रजापति है, मध्य का जनक है, इसलिए पुरोडाश होता है।१०

अब सरस्वती के लिए चरु आता है, तथा एक चरु पूषा के लिये। सरस्वती स्त्री है और पूषा पुरुष, इस तरह उत्पन्न करने वाला जोड़ा मिल गया। इस प्रकार दो तरह के जोड़ों के मिलने से प्रजापति ने प्रजा को उत्पन्न किया। एक से ऊपर की एक से नीचे की। इसलिए ये ५ हवियाँ होती हैं।११

अब इसके पश्चात् पयस्या का आयतन तथा मरुतों का सात कपालों का पुरोडाश। मरुत् देवों के आदमी हैं, वे स्वतन्त्र फिरते थे, जब

प्रजापति यज्ञ कर रहा था तो तो उन्होंने उसके पास जाकर कहा—तू इस यज्ञ के द्वारा प्रजा उत्पन्न करेगा उसे हम नष्ट कर डालेंगे।१२

प्रजापति ने सोचा कि मेरी पहली प्रजायें तो मर चुकीं। यदि मरुत् इस प्रजा को भी मार डालेंगे तो कुछ न बचेगा। इसलिए उसने उसके लिए अलग भाग रख दिया। यह पुरोडाश सात कपाल वाला इसलिए होता है कि मरुतों के सात सात के गण होते हैं।१३

स्वतवोभ्यः (अपने स्वत्व को बढ़ाने वालों के लिए) ऐसा कहकर आहुति देनी चाहिए, क्योंकि उन्होंने अपने स्वत्व को ले लिया। परन्तु यदि याज्ञिकों को याज्य-अनुवाक्य न मिले तो केवल 'मरुतों के लिए' ऐसा कह दे। यह जनता की अहिंसा के लिए किया जाता है इसलिए मरुतों के लिए होता है।१४

अब इसके बाद पयस्या की आहुति, दूध से ही प्रजायें होती और पलती हैं इसलिए वह उनके लिए उसी की आहुति देता है जिनके द्वारा वे पलती हैं। जिसको प्रजापति ने पहली हवियों से उत्पन्न किया वह दूध से पलती हैं।१५

इसमें जोड़ा हो जाता है, पयस्या स्त्री और मट्ठा वीर्य है। इसी जोड़े से क्रमानुसार अनन्त विश्व उत्पन्न हुआ। क्योंकि इस जोड़े से विश्वेदेवा उत्पन्न हुये इसलिये इसको वैश्वदेवी कहते हैं।१६

अब एक कपाल पर द्यावापृथ्वी की आहुति होती है। इन्हीं हवियों से प्रजापति ने प्रजा को उत्पन्न करके द्यौ-पृथ्वी के बीचमें रख दिया। इसलिए द्यौ-पृथ्वी के बीचमें रक्खे हुये हैं। जो कोई यह आहुति देता है वह प्रजा को उत्पन्न करके द्यौ-पृथ्वी के बीच में रख देता है। इसलिए द्यावापृथ्वी का पुरोडाश एक कपाल वाला होता है।१७

अब इसके पीछे कार्यक्रम कहते हैं। उत्तर-वेदि नहीं बनाते। बर्हि परिमित न हो, पूर्ण हो और विश्वेदेवों की हो। अतः उसको तीन गट्ठों में बाँधते हैं फिर एक में कर लेते हैं। उत्पत्ति का यही रूप है। माता-पिता दो होते हैं, जो सन्तान उत्पन्न होती है वह तीसरी होती है। इसलिए जो त्रित्व है वह पीछे से एक हो जाता है। बर्हि के फूले हुए सिरे (प्रस्वः) बँधे होते हैं। उनको वह प्रस्तर के रूप में ग्रहण करता है, क्योंकि यह जलने वाला संयोग है, फूले हुये बर्हि उत्पन्न करने वाले होते हैं, यही कारण है कि वह फूले हुए कुशों को प्रस्तर के रूप में ग्रहण करता है।१८

हवियों को रखकर अग्नि को मथता है। अग्नि के उत्पन्न होने के पश्चात् ही प्रजापति की प्रजा हुई। इसी तरह इस यजमान के भी

अग्नि के उत्पन्न होनेपर ही प्रजा होगी। यही कारण है कि वे हवियों के रखने के पश्चात् अग्नि का मन्थन करते हैं।१९

नौ प्रयाज और नौ अनुयाज होते हैं। विराट् छन्द में दस अक्षर होते हैं। इसलिए वह दोनों बार विराट् से एक कम ही उत्पन्न करने के लिए लेता है। क्योंकि प्रजापति ने न्यून प्रजनन से ही दो बार उत्पत्ति की, ऊपर की ओर, नीचे की ओर। इसलिए नौ प्रयाज और नौ अनुयाज होते हैं।२०

तीन समिष्टयजुष् होते हैं, क्योंकि यह हविर्यज्ञ से बड़ा होता है। क्योंकि इसमें नौ प्रयाज होते हैं और नौ अनुयाज। समिष्ट-यजुष् एक भी हो सकता है, तब यह हविर्यज्ञ ही होता है। इसकी दक्षिणा पहलौटी गौ होती है।२१

जो इस रहस्य को समझ कर इस यज्ञ को करता है उसको वही प्रजा उत्पन्न होती है और वही श्री प्राप्त होती है जो प्रजापति के यज्ञ करने से प्रजा उत्पन्न हुई और श्री प्राप्त हुई थी॥२२

अध्याय ५ ब्राह्मण २ वरुणप्रघासपर्व

प्रजापति ने वैश्वदेव यज्ञ करके ही प्रजा उत्पन्न की। उससे उत्पन्न हुई वह प्रजा वरुण के जौ को खा गई। जो पहले वरुण का ही था। क्योंकि उन्होंने वरुण के जौ खाये इसलिए इस यज्ञ का नाम वरुण-प्रघास पड़ा।१

वरुण ने उनको पकड़ लिया। वरुण से पकड़े जाकर वे सूज गये। वे लेट गये और साँस बाहर भीतर लेते हुए बैठे रहे। केवल प्राण और उदान ने उनको न छोड़ा; और सब देवता छोड़ गये। इन्हीं दो के कारण प्रजा मरी नहीं।२

प्रजापति ने इस हवि के द्वारा उनको स्वस्थ किया। जो प्रजा उत्पन्न हो चुकी थी और जो अभी उत्पन्न नहीं हुई थी उस सबको वरुण के जाल से मुक्त कर दिया, उसकी प्रजा रोगदोष-रहित उत्पन्न हुई।३

यह यजमान जो चौथे मास में यज्ञ करता है वह इसलिये करता है कि जनता वरुण के जाल से बची रहे, क्योंकि देवों ने यह यज्ञ किया था। जो सन्तान उत्पन्न हो चुकी और जो होने वाली है उसको वह वरुण के जाल से मुक्त कर देता है और उसकी सन्तान निर्दोष और निरोग उत्पन्न होती है। इसलिए वह चौथे मास में (वरुण-प्रघास यज्ञ) करता है।४

इस यज्ञ में दो वेदियाँ और दो अग्नियाँ क्यों होती हैं। अतः कि वह दोनों ओर से प्रजा को वरुण के जाल से छुड़ा देता है; ऊपर से भी और नीचे भी। इसलिये दो वेदियाँ और दो अग्नियाँ होती हैं।५

उत्तर की दिशा में उत्तर की वेदी बनाई जाती है, दक्षिण की दिशा में नहीं। वरुण क्षत्रिय है मरुत् वैश्य लोग। वह इस प्रकार क्षत्रियों को वैश्यों से उच्च ठहराता है। इसीलिए क्षत्रियों को उच्च आसन पर बैठाकर सर्व साधारण उनकी पूजा करते हैं। यही कारण है कि उत्तर की दिशा में वेदी बनाते हैं, दक्षिण की दिशा में नहीं।६

पहले पाँच हवियाँ होती हैं। क्योंकि इन ५ हवियों के द्वारा ही प्रजापति ने प्रजा उत्पन्न की और इन्हीं के द्वारा प्रजा को दोनों ओर से वरुण के जाल से बचाया, वह जो ऊपर और नीचे के ओर थे। यही कारण है ५ हवियाँ होती हैं।७

अब इन्द्र-अग्नि के लिए १२ कपालों में बना पुरोडाश दिया जाता है। इन्द्र-अग्नि वस्तुतः प्राण और उदान हैं। यह एक प्रकार से उसके लिए पुण्य करना है जिसने पुण्य किया। क्योंकि इन्हीं दो के कारण प्रजा मरी नहीं। इसलिए अब वह अपनी प्रजा को प्राण-उदान के द्वारा स्वस्थ करता है। उसमें प्राण-उदान को स्थापित करता है। अतः १२ कपालों का पुरोडाश इन्द्र-अग्नि के लिए होता है।८

दोनों अग्नियों के लिए पयस्या की आहुतियाँ होती हैं। दूध से ही प्रजा उत्पन्न होती और जीती है। इसलिए उसी वस्तु के द्वारा जिससे वह बची और पलती है वह उसको वरुण के जाल से दोनों ओर से छुड़ाता है, ऊपर तथा नीचे की ओर से। इसलिये दोनों अग्नियों के लिए पयस्या की आहुति होती है।९

उत्तर की हवि वरुण के लिए होती है। क्योंकि वरुण ने ही तो उस की प्रजा पकड़ी थी। इसलिए वह प्रत्यक्ष ही वरुण के जाल से जनता को छुड़ाता है। दक्षिणकी हवि मरुतों के लिये होती है। एकसा न हो इसलिये मरुतों के लिये होती है। यदि दोनों आहुतियाँ वरुण के लिये होतीं तो एक सी हो जातीं। दक्षिण से ही मरुतों ने प्रजा को मारना चाहा था। और उसी भाग से प्रजापति ने उनको शान्त किया। इसलिए दक्षिण की आहुति मरुतों की होती है।१०

उन दोनों आहुतियों के ऊपर करीर फल डालता है। प्रजापति ने करीर फल से ही जनता को सुखी किया। इसलिये वह जनता को उसी से सुख पहुँचाता है।११

उनके ऊपर वह शमी वृक्ष के पत्ते भी डालता है। प्रजापति ने

प्रजा को शमी के वृक्षों से शान्त किया। इसलिए वह प्रजाओं को उसी से शान्त करता है।१२

अब एक कपाल का पुरोडाश 'क' अर्थात् प्रजापति के लिये होता है। क प्रजापति ने क के लिये एक कपाल के पुरोडाश से जनता को सुख पहुंचाया। इसी तरह यह भी क के लिये एक कपाल के पुरोडाश से जनता को सुख पहुँचाता है। इसलिये क के लिये एक कपाल का पुरोडाश होता है।१३

अब यज्ञ के पहले दिन अन्वाहार्य पचन अर्थात् दक्षिणाग्नि पर जौ की भूसी निकाल कर और कुछ पका कर करम्भ के इतने पात्र बनाते हैं जितने घर के लोग हों और एक अधिक। (करम्भ जौ और दही का बनता है)।१४

वहीं जौ का एक मेष और एक मेषी भी बनाते हैं। यदि एडक भेड़ के सिवाय किसी अन्य भेड़ की ऊन मिले तो उस पर लगा दें। और यदि एडक को छोड़ कर अन्य भेड़ की ऊन न मिले तो कुशों का अग्र भाग ही लगा दें।१५

यह मेष मेषी क्यों बनाते हैं? मेष प्रत्यक्ष रूप से वरुण का पशु है। इस तरह प्रत्यक्ष ही वरुण के पास से जनता को छुड़ा देता है। इनको जौ का इसलिये बनाते हैं कि जब इन्होंने जौ खाये तभी तो वरुण ने इनको पकड़ा। जोड़ा इस लिये बनाते हैं कि जोड़े से जनता वरुण के पाश से छूटती है १६

उत्तरी पयस्या पर मेषी को रखता है और दक्षिण की पयस्या पर मेष को। क्योंकि इसी तरह ठीक जोड़ा मिलता है। क्योंकि स्त्री पुरुष से उत्तर की ओर रहती है।१७

अध्वर्यु अन्य सब हवियों को उत्तर की वेदी में रखता है, और प्रति-प्रस्थाता दक्षिण की वेदी में पयस्या को रखता है।१८

हवियों को रखकर अग्नि का मन्थन करता है। अग्निको मथकर और वेदीपर लाकर आहुति देता है। पहले अध्वर्यु होता से कहता है- 'अग्नये समिध्यमानाम्'। (जलाई गई अग्नि के लिए) ऐसा कह। तब दोनों अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता ईंधन रखकर एक-एक समिधा रखते हैं। और दोनों पहली आघार या आहुति छोड़ते हैं। इस तरह अध्वर्यु कहता है- अग्निमग्नीत् सम्मृड्ढि। (हे अग्नीध् अग्नि को ठीककर)। अभी केवल कहा जाता है, अग्नि ठीक नहीं की जाती।१९

अब प्रतिप्रस्थाता उस जगह जहाँ गृह-पत्नी होती है लौटता है। वह पत्नी को ले जाने की इच्छा करता हुआ पूछता है- तू किसके साथ

रहती है ? यदि स्त्री एक की होकर दूसरे के साथ रहे तो पाप करती है। वह इसलिये पूछता है कि कहीं मन में पछतावा करके आहुति न दे दे। कहा हुआ पाप कम हो जाता है, क्योंकि यह सत्य होता है। इस लिये वह ऐसा पूछता है। यदि वह पाप को छिपा लेगी तो उसके सम्बन्धियों के लिये अहित होगा।२०

अब वह इससे कहलवाता है—

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः॥ य० ३.४४

प्रघास और करम्भ नामी हवियों को खूब खानेवाले और इन शत्रुओं का नाश करने वाले मरुतों को हम बुलाते हैं।' यह अनुवाक्य है,इससे वह मरुतों को पात्रों तक बुलाती है।२१

सबके लिये एक-एक पात्र होता है, जितने घर के लोग होते हैं उतने ही पात्र होते हैं और एक अधिक। १-१ पुरुष के लिये १-१ इसलिये होता है कि जो जनता उत्पन्न हुई है वह वरुण के पास से छूट जाय। एक पात्र बच रहा वह इसलिये कि उससे जो सन्तान अभी उत्पन्न नहीं हुई वह वरुण के पास से छूट जाय। अत: एक पात्र अधिक होता है।२२

पात्र इसलिये होते हैं कि पात्रों में ही खाना खाते हैं। जौ के इस-लिये बनाये जाते हैं, क्योंकि जब प्रजा ने जौ खाये तभी वरुण ने उनको पकड़ा। सूपसे आहुति देते हैं कि उससे ही भोजन तैयार किया जाता है पति के साथ पत्नी भी आहुति देती है क्योंकि जोड़े द्वारा ही वरुण के पास से प्रजा को छुड़ाता है।२३

यज्ञसे पूर्व,आहुति से पूर्वही इसलिए अर्पण करती हैं क्योंकि विश(लोग) आहुतियोंको नहीं खाते और मरुत विश हैं। जब प्रजापतिकी प्रजाको वरुण ने पकड़ लिया और विदीर्ण कर दिया, वे लोग श्वास-प्रश्वास लेते हुये लौट गये और बैठ गये तब उनके पापों को मरुतोंने दूर किया था। इसी तरह इस यजमान की सन्तान का पाप मरुत ही दूर करते हैं इसलिए यज्ञ के पहले ही और आहुतियों से होम करती है।२४

वह दक्षिणाग्नि में यह मन्त्र पढ़कर आहुतियाँ देता है—

यद्ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयम् इदं तदवयजामहे स्वाहा॥ य० ३.४५

'जो पाप गाँव में किया और वन में।' पाप गाँवमें भी होता है वन में भी। 'जो पाप सभा में किया और जो इन्द्रिय अपने में।' सभामें का अर्थ मनुष्यों के लिए और इन्द्रियों में का अर्थ है देवताओं के लिए। 'जो कुछ पाप हमने किया उसके लिए हम यज्ञ करते हैं'। तात्पर्य यह है कि उस सबसे हम (भविष्य के लिये) छुटकारा पाते हैं।२५

शतपथब्राह्मण का२ अ५ ब्रा२

अब अध्वर्यु इन्द्र-मरुद् वाली ऋचा को जपता है। जहाँ प्रजापति की प्रजा का मरुतों ने पाप छुड़ाया वहाँ उसने सोचा कि ये मेरी प्रजा कानाश न करेंगे। २६

उसने ऐन्द्री मरुत्वती का जप किया। इन्द्र क्षत्रिय और मरुद् विश हैं जिनको क्षत्र वशमें रखता है। वे वशमें रहें अतः ऐन्द्री जपता है।२७

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः॥
यजु० ३.४६

हे इन्द्र, युद्धों में हमारा देवों से विरोध न हो। हे बलवान्, यज्ञ में तेरा भक्त है जिसके दानी हवियुक्त ऋत्विजों को वाणी आनन्दित कर वन्दना करती है।२८

अब वह पत्नी से कहलवाता है—

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्म कृत्वा अस्तं प्रेत सचाभुवः॥ (यजु० ३.४७)

कर्म करनेवाले हर्ष-पूर्ण वाणीके साथ कर्म किया करते हैं, वे देवों के लिए कर्म करके अन्यत्र से विवाहित पत्नी के साथ सुख-युक्त घर पाते हैं। पत्नी यज्ञ का निचला भाग है, जिसे यज्ञ में पूर्व से बैठाया है, उसे घर में प्रतिष्ठित करता है(इस मन्त्र से), घर ही प्रतिष्ठा है। २९

प्रतिप्रस्थाता उसे विठालकर लौटता है तब वे दोनों उत्तरबाघार की २ आहुतियाँ देते हैं। फिर अध्वर्यु श्रौषट् कहकर होता का वरण करता है जो वेदि के उत्तर में अपने होतृस्थान पर बैठकर दोनों को प्रेरणा करता है। वे दोनों ही प्रेरित होकर स्रुचों को लेकर चलते हैं श्रौषट् कहकर अध्वर्यु होता को आज्ञा देता है— समिधो यज। यज कहकर चौथे-चौथे प्रयाजमें जुहू मे घी डालकर नौ प्रयाज करते हैं।३०

अब अध्वर्यु ही कहता है— अग्नयेऽनुब्रूहि। आग्नेय आज्यभाग में से ४ भाग लेकर उत्तर को चलकर श्रौषट् कहकर अध्वर्यु ही कहता है— अग्नि यज। वे दोनों ही वषट् कह कर आहुतियाँ देते हैं। ३१

इसी तरह अध्वर्यु ही होता से सोमाय अनुब्रूहि, श्रौषट् और सोमं यज कहता है तथा वे दोनों ही आज्य के ४ भाग लेकर चलते और वषट् कहकर आहुतियाँ देते हैं ३२

जो कुछ वाणीका कार्य है उसे अध्वर्यु ही करता है, प्रतिप्रस्थाता नहीं वही आश्रावण क्यों करता है ? जब वषट् कहा जाता है तब-- ३३

प्रतिप्रस्थाता किये का अनुकरण ही करता है। वरुण क्षत्रिय, मरुत् विश हैं जिनसे क्षत्रिय का अनुकरण कराना है। यदि प्रतिप्रस्थाता भी आश्रावण करे तो दोनों समान हो जायें, अतएव वह नहीं कहता। ३४

वह तो हाथ में ही दो स्रुचों को लेकर बैठता है तब अध्वर्यु इनकी आहुति देता है— आग्नेय अष्टाकपाल पुरोडाश, सौम्य चरु, सावित्र द्वादशकपाल वा अष्टाकपाल पुरोडाश, सारस्वत और पौष्णचरु, तथा ऐन्द्राग्न द्वादशकपाल पुरोडाश। ३५

वे दोनों दो पयस्याओं को लेकर चलने की इच्छा करते हुए मेष-मेषी को रखते हैं- मरुतों के पात्र का मेष वरुण के पात्रमें और वरुण के पात्रकी मेषी मरुतों के पात्रमें रख देता है। यह इसलिए कि वरुण क्षत्रिय;; पुमान् वीर्य है जिसे वे क्षत्र में धारण कराते हैं, स्त्री वीर्यशून्य, मरुत विश हैं जिन्हें वे वीर्य-रहित करते हैं अतएव बदलते हैं।३६

अब अध्वर्यु ही कहता है— वरुणाय अनुब्रूहि। वह आज्य का नीचे का भाग जुहू में डालता है और वारुणी पयस्या के दो भाग कर एक में मेष रखता है, ऊपर से घी डालता और रिक्त स्थान को भर देता है। फिर चलकर श्रौषट् और वरुण यज कह, वषट् कर आहुति देताहै।३७

बाएँ हाथ में दो स्रुच पकड़कर, दाहिनेसे प्रतिप्रस्थाता का कपड़ा पकड़कर अध्वर्यु कहता है—मरुद्भ्यो ऽनुब्रूहि। पूर्ववत् क्रियाएँ करके मरुतो यज कहकर, वषट् करके आहुति देता है। ३८

अब क के एककपाल पुरोडाश को लेकर कहता है—अग्नये स्विष्ट-कृतेऽनुब्रूहि। वह सभी हवियों में से एक-एक भाग और प्रतिप्रस्थाता इसी पयस्या का एक भाग लेकर, ऊपर से दो बार घी डालकर वे दोनों ही चलकर आते, अध्वर्यु श्रौषट् तथा अग्नि स्विष्टकृतं यज कहता और वे वषट् कहकर आहुति देते हैं ३९

फिर वही प्राशित्र काटता है। इडा के टुकड़े कर प्रतिप्रस्थाता को देता जो उनपर मारुती पयस्या के दो भाग रखता है, अब ऊपर से दो बार घी डालकर, इडा कहकर वे मार्जन करते हैं।४०

-फिर अध्वर्यु ही कहता है— हे ब्रह्मन, मैं आगे जाऊंगा। समिधा रखकर हे अग्नीत्, अग्नि तेज करो 'यह कहकर वह स्रुचों में पृष-दाज्य डालता है। यदि प्रतिप्रस्थाता के पास हो तो वह भी उस के दो भाग डालता है। यदि न हो तो उपभृत् में जो भी आज्य हो उसके दो भाग डालकर वे दोनों चलते हैं, वह श्रौषट कहता है।

'देवान् यज यज' कहता है और प्रत्येक चौथे अनुयाज में चमचे में घी छोड़ता है। इस प्रकार वे दोनों नौ अनुयाज करते हैं। क्योंकि वह दोनों बार प्रजा को वरुण के पाश से छुड़ाता है पहले से ऊपर के और पिछलसे नीचे के। अतः नौ प्रयाज होते हैं, और नौ अनुयाज ॥४१

अब वे दोनों ही स्रुचों को वेदी म रखकर, अलग करके, परिधियों पर घी डालकर और एक परिधि को लेकर 'औषट्' कहकर अध्वर्यु होता से कहता है— दिव्य होता भद्र कहने के लिए बुलाये गये और मनुष्य-होता सूक्तवाक के लिए। अब होता सूक्तवाक कहता है। इस पर दोनो प्रस्तरों को आगमें डाल देते हैं। दोनों एक तृण लेकर बैठे रहते हैं जब होता सूक्तवाक को कहता है ॥४२

अग्नीध्र कहता है— अनुप्रहर। दोनों डालते हैं और अपने शरीर का स्पर्श करते हैं ॥४३

अब आग्नीध्र कहता है— संवाद कर। अध्वर्यु कहता है, अग्नीत् क्या वह गया? हाँ वह गया। यहाँ देवताओं को सुनाओ। सुनें। दैवी होता विदा हों। मनुष्य-होता का कल्याण हो। अब अध्वर्यु से कहता है- शान्ति कह। वे दोनों परिधियों को फेंक देते हैं और दोनों स्रुचों को मिलाकर स्फ्या पर रख देते हैं ॥४४

अब वह ही गार्हपत्य अग्नि के पास लौटकर पत्नी-संयाज करता है। प्रतिप्रस्थाता ठहरा रहता है। अध्वर्यु पत्नी-संयाज करके उत्तर की ओर चला जाता है ॥४५

अब तीन समिष्ठ-यजुषों की आहुति देता है। प्रतिप्रस्थाता स्रुच लेकर मौन होकर आहुति देता है। यजमान और पत्नी ने जो वस्त्र वैश्वदेव के समय पहने थे वे ही अब भी पहनें। अब वरुण को पक्स्या के जले भागको लेकर अवभृथ अर्थात् स्नान के स्थान में आयें। यह स्नान वरुण के लिए है जिसके पाश से छुट जायँ। वहाँ साम नहीं गाया जाता क्योंकि साम से तो कुछ किया नहीं जाता। वह मौन ही वहाँ जाकर (जले भाग के पात्र को) जल में डुबो देता है ॥४६

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः।
अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥
(य० ३.४८)

हे धीरे चलने वाले जलाशय, तू चुपके-चुपके चलता है। देवों की सहायता से मैं देव-कृत पापों से छूट जाऊं और मनुष्यों की सहायता से मनुष्य-कृत पापों से। हे देव, मुझे राक्षस से बचा।' (स्नान के समय वस्त्रों को) मन चाहे किसी (पुरोहित) को दे दे। क्योंकि ये वस्त्र

दीक्षित पुरुष के तो नहीं होते, जैसे साँप केंचुली छोड़ता है, इसी प्रकार यह पापों को छोड़ता है ।।४७

अब यजमान के बाल और दाढ़ी बनाते हैं। दोनों अग्नियों को लेते हैं। क्योंकि जगह बदलकर ही दूसरा यज्ञ होता है। उत्तर-वेदी पर अग्निहोत्र करना ठीक नहीं। अब घर जाकर अग्नि मथकर वह पूर्णमासी का यज्ञ करता है। यह चातुर्मास्य यज्ञ अलग है; पूर्णमासी का निश्चित यज्ञ है। इसलिये वह निश्चित यज्ञ द्वारा अपने को स्थापित कर लेता है। इसीलिये वह जगह बदलता है ।।४८

वर्षाकाल का वरुण-प्रघास पर्व समाप्त। ब्राह्मण। ३।। [५.२]

अध्याय ५ ब्राह्मण ३ साकमेध पर्व

वरुण-प्रघास के द्वारा प्रजापति ने प्रजा को वरुण के जाल से छुड़ाया और वह रोग तथा दोष से रहित उत्पन्न हुई। इन साकमेध आहुतियों के द्वारा देवों ने वृत्र को मारा और उस विजय को प्राप्त किया जिस को वह इस समय भोग रहे हैं। उसी तरह यह यजमान भी अपने पापी शत्रुओं और अहितैषियों को मारता है और उन पर विजयी होता है। इसीलिये वरुणप्रघास के पश्चात् चौथे मास में यह (साकमेध) यज्ञ करता है। वह इस यज्ञ को लगातार दो दिनों में करता है ।।१

पहले दिन 'अनीकवत्' अग्नि के लिए आठ कपालों का पुरोडाश देता है। क्योंकि अग्नि को अनीक (नुकीला) करके ही वे देव वृत्र को मारने दौड़े थे। उस तेज को अग्निने छोड़ा नहीं। उसी तरह यजमान भी पापी अहितकारी शत्रु को मारने के लिये अग्नि को अनीक करके दौड़ता है। उस तेज को अग्नि नहीं छोड़ता। इसलिये अग्नि अनीकवत् के लिए ।।२

दोपहर को सान्तपन मरुतों के लिये चरु देता है। क्योंकि दोपहरको गर्म हवाओं ने वृत्र को झुलसा दिया। और वह हाँपता हुआ और जख्मी पड़ा था। इसी तरह सान्तपन मरुत् उस यजमान के पापी अहितकारी,शत्रु को झुलसा देते हैं। अतः सान्तपन मरुतों के लिये ।।३

इसके पश्चात् (सायंकाल को) गृहमेधी मरुतों के लिये। शाखा से बछड़ों को दूर करके पवित्रों वाले बर्तन में दुहकर चरु को पकाता है। जो कुछ चावल पकाते हैं वह 'चरु' कहलाता है। जिस अगले दिन देव वृत्र को मारने जा रहे थे उसी शाम को देवों ने यही भोजन किया था। इसी तरह यह यजमान भी पापी अहितकारी शत्रु

को मारने के लिए इसी मेध या भोजन को करता है। दूध और चावल भी शक्तिवाले भोजन हैं। इस प्रकार वह अपने में दोनों शक्तियों को धारण करता है। इसलिये दूध और चावल का चरु बनाते हैं। ४

जो कुशों से आच्छादित 'वेदी सान्तपन मरुतों' के लिए थी वही अब भी काम में आती है। इसी वेदी में परिधि और शकल अर्थात् बड़ी समिधाओं और छोटे टुकड़ों को रखता है और उसी प्रकार दुह कर, चरु पकाकर और घी डालकर आग से हटा लेता है। ५

तब दो बर्तनों या थालियों को माँजता है। और उनमें उस चरुके दो बराबर भाग करके रख देता है, उनमें बीचमें गड्ढा करके घी छोड़ता है। अब स्रुवा और स्रुक दोनों को पोंछता है। भात के दोनों पात्रों को और फिर स्रुवा और स्रुक् को लेकर वेदी तक आता है। कुशों से आच्छादित वेदीको छूकर समिधायें रखकर जितने टुकड़ों को चाहता है रख देता है। तब वह दोनों भात की थालियों को और स्रुवा-स्रुक् को यथोचित स्थान पर रख देता है। होता अपने आसन पर बैठ जाता है। स्रुवा और स्रुक् को लेकर अध्वर्यु कहता है— ।६

अग्नि के लिये कह। अग्नि के आज्य-भाग की ओर संकेत करके- दाहिने भातकी थाली के गड्ढे के घी में से चार भाग लेकर दक्षिण की ओर जाकर 'औषट् अग्निं यज' कहकर वषट्कार कहने के अनन्तर आहुति देता है।७

अब सोम के आज्य भाग की ओर संकेत करके कहता है- सोम के लिये कह। और बायें भात की थाली के गड्ढे के घी में से चार भाग लेकर औषट् और 'सोमं यज' कहकर वषट् कह के आहुति देता है। ८

अब कहता है- गृहमेधी मरुतों के लिए कह। दाहिने भात की थाली के गड्ढेमें घी फैलाता है। उसमें से दो भाग लेकर उन पर घी छोड़कर चला आता है। वहाँ आकर 'औषट् और मरुतो गृहमेधिनो यज' कहता है, और वषट् कह कर आहुति देता है। ९

अब कहता है- स्विष्टकृत अग्नि के लिये कह। बायें भात के गड्ढे के घी को फैलाता है और दो भाग लेकर उन पर घी छोड़ता है और चला आता है। आकर 'औषट् और अग्ने स्विष्टकृत यज' और वषट् कह कर आहुति देता है। अब इडा को काटता है परन्तु अगला भाग नहीं। इडा कहकर वे मार्जन करते हैं। यह साकमेधका एक प्रकार है।१०

अब यह दूसरा प्रकार है— वेदी वही स्तीर्ण रहती है जो सान्तपन मरुतों के लिए थी। इसी आच्छादित वेदी में परिधि और शकलों को रखता है। और गौ दुहकर चरु पकाता है। घृत पास ही रखता है।

चरु पका कर घी डालता है और आग से हटा लेता है। थाली में घी को निकालता है, स्रुवा और स्रुक् को पोंछता है। चरु को बर्तन में लेकर वेदी तक आता है। फिर थाली में घी लेकर स्रुवा और स्रुक् को लेकर आता है। अब वह कुशों से ढकी हुई वेदी को छूता है। और परिधियों को तथा जितने लकड़ी के टुकड़ों को चाहता है रख देता है। फिर वह चरु के बर्तन और घी की थाली को तथा स्रुवा-स्रुक् को रख देता है। होता अपने आसन पर बैठ जाता है। स्रुवा-स्रुक् को लेकर अध्वर्यु कहता है- ।११

अग्नि के लिये कह। यह अग्नि के आज्य-भाग के विषय में है। अब थाली में से घी के चार भाग ले जाकर 'श्रौषट् अग्निं यज' वषट् कहकर आहुति डालता है।१२

अब वह कहता है- सोम के लिये कह। यह सोम के आज्यभाग के सम्बन्ध में कहा। अब थाली में से चार भाग लेकर जाता है। जाकर श्रौषट् तथा सोमं यज कहता है और वषट् कहकर आहुति देता है।१३

अब कहता है- गृहमेधी मरुतों के लिये कह। अब वह जुहू में घी को फैलाता है। चरु में से दो भाग काटता है, उस पर घी डालता है। फिर दो भागों को लेकर जाता है और श्रोषट् तथा 'मरुतो गृहमेधिनो यज।' वषट् कहकर आहुति देता है।१४

अब कहता है—अग्नि स्विष्टकृत् के लिए कह। वह घी को फैलाता है, चरु में से एक टुकड़ा लेकर उस पर दो बार घी छोड़ता है। दोनों टुकड़ों को बिना चुपड़े हुए, जाकर श्रौषट् और अग्निं स्विष्टकृतं यज। कहता है वषट् करके आहुति देता है।१५

अब इडा में से काटता है, प्रशित्र को नहीं। इडा को कहकर वे खाते हैं। घर के जितने लोग बची हुई हवि को खाने वाले हों वे खायें। या ऋत्विज खावें। यदि भात अधिक हो तो अन्य ब्राह्मण भी खावें। जब तक कुम्भी बिल्कुल खाली न होवे उसे ढककर 'पूर्णदर्व' के लिये रख देता है। अब गायों के लिये बछड़ों को छोड़ देते हैं, इस प्रकार पशु भोजन को जाते हैं। उस रात को वह यवागू (जौ और गुड़) से अग्निहोत्र करता है। प्रातः काल पितृयज्ञ के लिए निवान्या गौ को (जो गौ दूसरे गौ के बछड़े को पिलाती है) दुहते हैं ।।१६

इसके बाद प्रातः के समय, अग्निहोत्र करके अथवा उससे पहले जैसा भी वह चाहे शेष चरु को दर्वी चमसे के बिना खाई हुई कुम्भी में से यह कहकर निकालता है—

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत ।
वस्नेव विक्रीणावहा॑ऽइषमूर्जं शतक्रतो ॥ य० ३.४९

हे पूर्ण दर्वि ! दूर जाओ । अच्छी तरह पूर्ण वापस हम तक आओ । हे शतक्रतु इन्द्र, हम दोनों वस्ना (व्यापार वस्तु) के समान अन्न-बल का व्यापार करें ।

उसी प्रकार अनुवाक्य के समान इसे कहकर वह इन्द्र को भाग के लिये बुलाता है ।।१७

अब वह यजमान से कहे– ऋषभ औषधि मँगाओ । कुछ लोग कहते हैं कि यदि ऋषभ मिल जाय तो यह वषट्कार है । इसी की आहुति देनी चाहिये । इस प्रकार वह वृत्र के वध के लिए इन्द्र को उसी रूप में बुलाता है । ऋषभ इन्द्र का ही रूप है । यदि वह मिल जाय तो जानना चाहिए कि मेरे यज्ञ में इन्द्र आ गया, मेरा यज्ञ इन्द्र-युक्त हो गया । और यदि न मिले तो दक्षिण की ओर बैठा हुआ कहे 'जुहुधि' । वह वस्तुत: इन्द्र की वाणी है ।।१८

वह इस मन्त्र से आहुति देता है—

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ।। य० ३.५०

मुझे दे, मैं तुझे देता हूं, मेरे अर्पण कर । मैं तेरे अर्पण करता हूं । मेरे लिये उपहार ला । मैं तेरे लिए उपहार लाऊँ ।।१९

अब सात कपालों का पुरोडाश खेलने वाले मरुतों के लिए देता है । क्योंकि जब इन्द्र वृत्र को मारने के लिये गया तो खेलने वाली मरुत् उसके चारों ओर खेलते थे और उनकी प्रशंसा करते थे । ऐसे ही वह यजमान के चारों ओर प्रशंसा करते हुए खेलते हैं । क्योंकि वह अपने दुष्ट पापी शत्रु को मारने जा रहा है । इसलिए खेलने वाले मरुतों के लिए आहुति दी जाती है । इसके पश्चात् महाहविष होता है । यह उसी प्रकार है जैसे महाहविष की अलग आहुति दी जाय ।।२०

ब्राह्मणम् ।४ [५.३] चतुर्थ: प्रपाठक: समाप्त: । कण्डिका सं० ।१०५

अध्याय ५ ब्राह्मण ४

देवों ने वृत्र को महाहवि के द्वारा मारा । उसी से उन्होंने वह विजय प्राप्त की जो उनको मिली हुई है । इसलिए जो इस यज्ञ को करता है वह अपने पापी, द्वेषी शत्रु को मार डालता और उस पर विजय पा लेता है ।।१

उसकी विधि इस प्रकार है, एक उत्तर-वेदी बनाते हैं। घी की नवनी लेते हैं और अग्नि को मथते हैं। नौ प्रयाज होते हैं, नौ अनुयाज और तीन समिष्ट यजु। पहले ५ हवियां होती हैं ॥२

अग्नि के लिए ८ कपालों का पुरोडाश होता है। अग्नि को तीक्ष्ण करके उन्होंने वृत्र को मारा था, और अग्नि-तेज विफल नहीं हुआ इसलिए अग्नि की हवि होती है ॥३

अब सोम का चरु होता है। सोम-राजा की सहायता से उसको मारा था। इसलिए सोम-राजा की हवि होती है ।४

अब सविता के लिए १२ कपालों या ८ कपालों का पुरोडाश होता है। सविता देवों का प्रेरक है, सविता के प्रेरणा से ही उसको मारा था इसलिए यह सविता की हवि होती है। ५

अब सरस्वतीका चरु होता है,वाणी ही सरस्वती है वाणी ने ही उन को मारो-मारो कहकर उत्साह दिलाया;अतः सरस्वतीका चरु हुआ ।६

अब पूषा का चरु होता है, पृथिवी ही पूषा है, इसी ने वध के लिए वृत्र को प्रस्तुत कर दिया; और तब उन्होंने उसे मारा। इसलिये पूषा का चरु होता है। ७

अब १२ कपालोंका पुरोडाश इन्द्र और अग्नि के लिए होता है, इसी के द्वारा उन्होंने उसको मारा था। अग्नि तेज है और इन्द्र वीर्य। इन्हीं शक्तियों के द्वारा उन्होंने उसे मारा, अग्नि ब्राह्मण है, इन्द्र क्षत्रिय। इन दोनों ब्रह्म और क्षत्र शक्ति को मिलाकर उन्होंने उसको इनके द्वारा मारा था। इसलिये१२कपालोंका पुरोडाश इन्द्र-अग्निके लिए होता है।८

अब महेन्द्र के लिए चरु होता है, वृत्र के वध से पहले वह केवल इन्द्र था, वृत्र के वध के अनन्तर महेन्द्र हो गया जैसे विजय के पीछे महाराजा,इसलिए महेन्द्र के लिए चरु होता है,इससे वह वृत्र के मारने के लिये उसे बलिष्ठ भी कर देता है,अतः महेन्द्र के लिए चरु होता है। ६

अब विश्वकर्मा के लिए एक कपाल का पुरोडाश होता है। देवों ने साकमेध यज्ञ करके [वृत्र पर] विजय पाकर अपने काम को पूरा कर लिया, और सब कुछ जीत लिया। इसी प्रकार जो पुरुष साकमेधयज्ञ कर लेता है और विजय पा लेता है वह अपने काम को पूरा कर लेता है। इसीलिए विश्वकर्मा के लिए एक कपालका पुरोडाश होता है ।१०

देवों की जो प्रगति और श्री इस समय है वह सब इसी यज्ञको करके हुई है। इसी प्रकार जो इस रहस्य को समझकर इस यज्ञको करता है उसकी सन्तान फूलती-फलती है और उसको श्री भी प्राप्त होती है। इसलिये इस यज्ञ को करे ॥११ ब्राह्मणम् ॥१ [१४] अध्यायः॥ ५ [१४]

शतपथब्राह्मण का० २ अ० ६ ब्रा० १

❀ पितृयज्ञ ❀

देवों ने महाहवि के द्वारा ही वृत्र को मारा और उस विजय को पाया जो इस समय उनको प्राप्त है। जिन्होंने उस संग्राम में कष्ट पाया उनको पुष्ट किया वे पितर ही तो थे। इसलिए पितृयज्ञ नाम पड़ा।१

वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा ये हैं जिन्होंने (वृत्र) को जीता। शरद्, हेमन्त और शिशिर ये हैं जिनको दुबारा प्रेरित किया।२

जब वह यज्ञ करता है तो इसलिये करता है कि एक तो (असुर) उसके किसी (सम्बन्धी) को न मार सकें, दूसरे क्योंकि देवों ने यज्ञ किया था। इसके अतिरिक्त वह इसलिए भी यज्ञ करता है कि देवों ने जिन पितरों के लिए भाग निकाला था वह भाग उन तक पहुंच जावे। इस प्रकार जिनको देवों ने पुष्ट किया उनको सन्तुष्ट करता है और अपने पितरों को श्रेय लोक तक पहुँचाता है। और जो कुछ हानि या मृत्यु अपने अनुचित आचार से होती है उसका प्रतीकार हो जाता है। इसलिये यह यज्ञ करता है।३

छः कपालों का पुरोडाश 'सोमवन्त पितरों' के लिये या 'पितृमन् सोम' के लिये होता है। छः ऋतुयें होती हैं, ऋतुयें ही पितर हैं, इसलिये छः कपाल होते हैं।४

अब 'बर्हिषद् पितरों' के लिये अन्वाहार्यपचन (या दक्षिणाग्नि) पर धान भूनते हैं, आधे धान पीस लेते हैं और आधे बिना पिसे होते हैं। ये बर्हिषद् पितरों के लिए होते हैं।५

अब 'अग्निष्वात्त पितरों' के लिए हवि बनाते हैं। इस प्रकार कि (पिसे हुए धानों में) अन्य के बछड़े को पिलाने वाली गाय का दूध मिलाकर और उसे एक शलाका से हिलाकर बनाते हैं। पितर एक बार ही चले जाते हैं इसलिए मन्थ को एक बार ही चलाते हैं। ये हवियाँ हुईं।६॥ शतम् १३००.

जिन्होंने सोम-यज्ञ किया वे 'सोमवन्त पितर' हैं। और जो दिये हुए पके अन्न से लोक को जीतते हैं वे 'बर्हिषद् पितर' हैं। और जिन्होंने न यह किया न वह, और जिनको अग्नि विदा तथा अग्निहोत्र प्रसोता लाद्देता है वे अग्निष्वात्त पितर हुए।७

वह छः कपालों के पुरोडाश के लिये गार्हपत्य के पीछे दक्षिण की ओर बैठकर दाहिने कन्धे पर सामने की ओर जनेऊ रखकर चावल

निकालता है। वहां से उठकर अन्वाहार्यपचन के उत्तर की ओर खड़ा होकर दक्षिण की ओर मुख किये हुये पछोरता है, उनको १ ही बार साफ करता है।८

दक्षिण की ओर दृषद् और उपल को रखता है, और गार्हपत्य के दक्षिण भाग में छः कपालों को रखता है। दक्षिण दिशा में इसलिये रखते हैं कि दक्षिण दिशा पितरों की है। इसलिए दक्षिण दिशा की ओर रखते हैं।९

अब दक्षिणाग्नि के दक्षिण की ओर एक चौकोर वेदि बनाता है, जिसके कोने अवान्तर दिशाओं की ओर होते हैं। अवान्तर दिशा चार हैं और वे ही पितर हैं। इसलिए वेदि के कोने अवान्तर दिशाओं की ओर होते हैं।१०

उसके मध्य में अग्नि को रखता है। देव पूर्व से पश्चिम को मनुष्यों तक आये। इसलिए पूर्व की ओर मुँह करके खड़े होकर आहुति देता है, पितर सभी ओर हैं। अवान्तर दिशा ही पितर हैं। इसलिए वह अग्नि को मध्य में रखता है।११

वहाँ से वह स्तम्बयजु (कुश) को पूर्व की ओर फेंकता है। अब कुशों से वेदि को घेरता है, पहले इस प्रकार (पश्चिम की ओर), फिर (उत्तर की ओर), फिर इस प्रकार [पूर्व की ओर]। पहली लकीर से घेर कर (अध्वर्यु) रेखा खींचता है। जो कुछ हटाना होता है उसे हटा देता है। अब दूसरी लकीर से घेरता है और दूसरी लकीर से घेर कर और चिकना कर कहता है— प्रोक्षणी को रख। अत; वे प्रोक्षणी को रखते हैं; और समिधा तथा बर्हि को वे उसके पास रखते हैं। वह स्रुकों को पोंछता है और घी लेकर आता है, वह यज्ञोपवीत पहने-पहने ही घी को लेता है।१२

इस सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि अनुयाज दो होते हैं इसलिए उपभृत् में दो बार घी ले। परन्तु उसे आठ बार करके घी लेना चाहिए कहीं ऐसा न हो कि वह यज्ञ की विधि से दूर हो जाय। इसलिए आठ बार करके घी लेवे, घी लेकर और जनेऊ को दाहिने कन्धे पर करके—।१३

अध्वर्यु प्रोक्षणी लेता है। पहले समिधाओं पर जल छिड़कता है, फिर वेदि पर। अब वे बर्हि को उसे देते हैं और वह बर्हि को पूर्व की ओर गाँठ करके रखता है। उस पर जल छिड़क कर, गाँठ को खोल कर वह गाँठ को पकड़ता है, न कि प्रस्तर को। पितर एक ही बार चले आते हैं इसलिये वह प्रस्तर को नहीं लेता।१४

(बर्हि के मुट्ठे को) खोलकर वह दाहिनी ओर से बाईं ओर को तीन बार बर्हि को फैलाता हुआ घूमता है। दाहिनी ओर से बाईं ओर को तीन तहों में फैलाकर वह इतने कुश बचा लेता है कि प्रस्तर बन सके। अब वह तीन बार बाईं ओर से दाहिनी ओर को मुड़ता है, इसलिए कि पहले वह अपने तीन पितरों के पीछे गया था अब वह फिर अपने लोक को वापस आ जाता है। इसलिए वह तीन बार बाईं ओर से दाईं ओर को मुड़ता है।१५

वह परिधियों और प्रस्तर को भी दक्षिण की ओर रखता है। दो विधृतियों को बीच मे नहीं रखता। क्योंकि पितर एक बार ही चले जाते हैं। इसलिए दो विधृतियों को बीच में नहीं रखता।१६

अब वह जुहू को रखता है और उसके पूर्व में उपभृत् को। अब ध्रुवा, पुरोडाश, धान, मन्थ को रखकर हवियों को छूता है।१७

वे सब यज्ञोपवीती होकर यजमान और ब्रह्मा इस प्रकार पश्चिम को चलते हैं तथा अग्नीत् पूर्व को।१८

वे इसे धीरे-२ करते हैं। पितर भी छिपे केसमान हैं और जो धीरे-२ पढ़ा जाय वह भी छिपे के समान है। इसलिए धीरे-धीरे ही पढ़ते हैं।१९ वह इस यज्ञको घिरे हुये स्थान में करते हैं। पितर छिपेके समान हैं और जो घिरे हुए स्थान में किया जाता है वह भी छिपे के समान है।२०

अब वह इध्म को रखकर कहता है– 'जली हुई आग के लिये कह' होता एक सामिधेनी ऋचा को तीन बार पढ़ता है। पितर लोग एक ही बार जाते हैं अतः एकही सामिधेनी ऋचा तीन बार पढ़ता है।२१

वह जपता है–

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत ऽआ वह पितॄन् हविषेऽअत्तवे॥' यजु० १९.७०

'प्रेम से हम तुझको रखते हैं, प्रेम से तुझे प्रज्वलित करते हैं। हे कामना-योग्य, प्यारे पितरों को हवि खाने के लिये ला'। अब कहता है– अग्नि को ला, सोम को ला, सोमवन्त पितरों को ला, बर्हिषद् पितरों को ला, अग्निष्वात्त पितरों को ला। घी पीने वाले देवों को ला, होता के लिए अग्नि को ला, अपनी महिमा को ला'। इस प्रकार बुलाकर वह बैठ जाता है।२२

अब श्रौषट् कहकर वह होता का वरण नहीं करता। यह पितृयज्ञ है। ऐसा न हो कि होता को पितरों में रख दे इसलिए होता का वरण नहीं करता। केवल 'होता कहकर बैठिये' बैठ जाता है। होता होता के आसन पर बैठकर प्रेरणा करता है। प्रेरित होकर अध्वर्यु दो स्रुचों

को लेता है और पश्चिम की ओर जाकर श्रौषट् कहकर कहता है–समिध्रो यज्ञ। वह बर्हि को छोड़कर चार प्रयाजों को करता है। बर्हि प्रजा है, ऐसा न हो कि प्रजा पितरों के बीच हो जाय इसलिये बर्हि को छोड़कर चार प्रयाजों को करता है। अब दो आज्यभागों को देते हैं। उनको देकर—।२३

वह अपने यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे पर कर लेते हैं क्योंकि इन हवियों को देने की इच्छा कर रहे हैं। यजमान और ब्रह्मा इस प्रकार [पश्चिम से] पूर्व की ओर मुड़ते हैं, और आग्नीध्र [पूर्व से] पश्चिम की ओर। आगे अध्वर्यु 'श्रौषट् ओ३म् स्वधा' कहता है। आग्नीध्र उत्तर देता है—'अस्तु स्वधा'। और 'स्वधा नमः' कहकर वषट्कार होता है। २४

इस पर आसुरि ने कहा– 'श्रौषट् कहो' और उत्तर में वषट्कार बोलना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि यज्ञ की विधिसे हम हट जायँ।२५

तब (अध्वर्यु) कहता है—'सोमवन्त पितरों को बुलाओ'। सोमवन्त पितरों के लिए (होता) दो अनुवाक्य बोलता है, एक अनुवाक्य देवों के लिए बोला जाता है और दूसरा पितरों के लिए। पितर एक बार ही चले जाते हैं, इसलिए देवपितरों के लिये दो अनुवाक्य हुए।२६

अब घी को फैलाता है। अब पुरोडाश में से टुकड़ा काटता है तथा साथ ही धान और मन्थ। यह सब एक ही साथ (जुहू) में रख देता है। दो बार घी छोड़ता है और टुकड़ों को फिर चुपड़ता है। वह दक्षिण को जाता नहीं किन्तु उठकर और श्रौषट् कहकर कहता है– 'पितॄन् सोमवतो यज'। और वषट्कार के पश्चात् आहुति दे देता है।२७

अब कहता है—'बर्हिषद् पितरों को बुलाओ'। अब घी को फैलाता है और धानों में से एक भाग लेकर मन्थ तथा पुरोडाश के साथ एक ही बार (जुहू में) रख देता है। दो बार घी छोड़ता है और उन पुरोडाश के टुकड़ों को चुपड़ता है। वह जाता नहीं किन्तु उठकर और श्रौषट् कहकर कहता है— 'बर्हिषद् पितरों के लिए हवि दो' और वषट्कार के पश्चात् आहुति दे देता है।२८

अब कहता है—'अग्निष्वात्त पितरों को बुलाओ'। घी को फैलाता है, मन्थ में से एक भाग लेता है। धान और पुरोडाश के साथ एक ही बार में (जुहू में) रख देता है। दो बार ऊपर से घी छोड़ता है, फिर उन टुकड़ों को चुपड़ता है। वह चलता नहीं किन्तु उठकर श्रौषट् कहकर कहता है– 'अग्निष्वात्त पितरों के लिये आहुति दो'। फिर वषट्कार के पश्चात् आहुति दे देता है।२९

अब कहता है– 'कव्यवाहन अग्नि को बुलाओ'। यह स्विष्टकृत् अग्नि के लिये कहा। वह देवों के लिए हव्यवाहन है और पितरों के लिए कव्यवाहन, इसलिए कव्यवाहन अग्नि के लिये ऐसा कहा।३०

अब वह घी को फैलाता है। पुरोडाश में से टुकड़ा काटता है और धान तथा मन्थ के साथ [जुहू में] रख देता है। दो बार घी छोड़ता है और टुकड़ों को चुपड़ता नहीं, न चलता है, किन्तु उठकर और श्रौषट् कहकर कहता है– कव्यवाहन अग्नि के लिए आहुति दो और वषट्कार के पश्चात् आहुति दे देता है।३१

वह चलता क्यों नहीं और उठकर ही आहुति क्यों दे देता है? इस का कारण यह है कि पितर लोग एक ही बार चले जाते हैं। और हवियों में से एक ही टुकड़ा इसलिये काटता है कि पितर एक ही बार चले जाते हैं, और टुकड़ों को काटकर एक साथ इसलिए रखता है कि ऋतुएँ ही पितर हैं। इस प्रकार वह ऋतुओं को मिलाकर रखता है। ऋतुओंमें सन्धि करता है। अतः इन टुकड़ों को एक साथ रखता है।३२

कुछ लोग सब मन्थ होता को देते हैं, होता उसका आवाहन करके सूंघता है और ब्रह्मा को दे देता है। उसे ब्रह्मा सूंघता है और आग्नीध्र को देता है। आग्नीध्र भी उसे सूँघता है। वे ऐसा करते हैं दूसरे यज्ञों में इडा को काटते हैं तो इसमें भी काटना चाहिये। इडा का आवाहन कर सूँघते हैं खाते नहीं। परन्तु आसुरि की सम्मति है कि– हमारा विचार है कि जो कुछ अग्निमें डाला जाय उसका कुछ भाग खाना भी चाहिये।३३

अब जो हवि देने वाला हो— चाहे अध्वर्यु, चाहे यजमान, वह पानी का पात्र लेकर तीन बार दाहिनी से बाईं ओर को पानी देता हुआ चलता है। वह पिता के लिए– 'असौ अवनेनिक्ष्व' [आप धोवें] इस प्रकार दो बार कहकर पानी डालता है, तथा आप धोवें आप धोवें कहकर पितामह के लिए [दक्षिण पश्चिमी कोने में], फिर प्रपितामह के लिए आप धोवें आप धोवें कहकर दक्षिण पूर्वी कोने में जैसे अतिथि को सत्कार के लिये जल देते हैं वैसे यहाँ भी देता है।३४

अब पुरोडाश में से एक भाग, धानों में से भी एक भाग तथा मन्थ में से भी एक भाग लेकर बायें हाथ में लेता है।३५

अब वह अवान्तर दिशा के सामने [उत्तर-पश्चिम की ओर] यजमान के पिता के लिये कि– तुम्हारे लिए कहकर देता है तथा इस अवान्तर दिशा के सामने [दक्षिण-पश्चिम की ओर यजमानके पितामह के लिए यह कहकर कि– यह तुम्हारे लिये। तथा इस अवान्तर दिशा के

सामने (दक्षिण पूर्वकी ओर)यजमान के प्रपितामह के लिए यह कहकर कि- यह तुम्हारे लिए। तथा इस अवान्तर दिशा के सामने उत्तर पूर्व की ओर) इस मन्त्र से हाथ धोता है—

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्। य० २.३१

हे पितरो, यहाँ खाओ। वृषभ के समान अपने-अपने भागों को। इसका तात्पर्य यह है कि अपना-अपना भाग खाइये। वह इस प्रकार पितरोंको क्यों खिलाता है? इसलिए कि अपने पितरोंको यज्ञसे वंचित नहीं करता। ३६

अब वे सब यज्ञोपवीत धारण किये हुए उत्तर की ओर जाकर आहवनीय के उत्तर में खड़े होते हैं। जो आहिताग्नि होकर दर्श पूर्णमास यज्ञ है वह देवों का निकटवर्ती होता है। परन्तु ये अभी पितृ-यज्ञ कर रहे थे। अब ये देवों को सन्तुष्ट करते हैं। ३७

अब वे इन्द्र-सम्बन्धी दो ऋचायें पढ़कर आहवनीय का उपस्थान करते हैं—

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽअधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥ सुसंदृशं त्वा वयम् मघवन् वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ऽअनु योजा न्विन्द्र ते हरी॥

(य० ३.५१,५२ या ऋ० १.८२.२;३)

प्रियजनों ने खा लिया— वे सन्तुष्ट हो जाते हैं, और अपने दोष दूर करते हैं। प्रकाशयुक्त विप्रोंने स्तुति की— हे इन्द्र, अपने बलपराक्रम से युक्त कर, हे इन्द्र तुझ उत्तम को हम स्तुति करेंगे। इस प्रकार स्तुति किया गया तू अपने रथ में हमारी इच्छा के अनुसार आ। हे इन्द्र, तू अपने बल-पराक्रम से संयुक्त हो। ३८

अब वे गार्हपत्य तक लौटते हैं और खड़े होकर इन मन्त्रोंको पढ़ते हैं—

मनो न्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन। पितृणां च मन्मभिः।
आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे॥
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातं सचेमहि॥

(य० ३.५३-५५ और ऋ० १०.५७.३,४,५)

हम नाराशंसी स्तोम के द्वारा और पितरों के स्तोम से मन का आवाहन करते हैं। हमारे पास बुद्धि, शक्ति और जीवन के लिये मन फिर आये कि हम बहुत दिनों तक सूर्य के दर्शन करें। हे पितरो, दैव्य-जन हमको फिर बुद्धि दें कि हम जीवन पा सकें। अब तक वे पितृयज्ञ कर रहे थे, अब वे फिर सामान्य जीवन की ओर लौटते हैं। इसलिए कहा हम जीवन प्राप्त करें। ३९

जो अन्न देता है वह फिर दाहिने कन्धे पर यज्ञोपवीत रखकर यह मन्त्र जपता है—

अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत। [य० २.३१]

पितर वृषभों के समान अपने-अपने भाग को ले जाते हैं। इससे तात्पर्य यह है कि उन्होंने अपना-अपना भाग खाया।४०

अब वह जल के पात्र को लेता है और जल देता हुआ फिर तीन बार बाईं ओर से दाहिनी ओर को लौटता है, और 'आप धोइये' यह कह कर यजमान के पिता, पितामह, प्रपितामह के हाथ धुलाता है। जैसे अतिथि के सत्कार के लिए भोजन, जल दिया जाता है वैसेही यहाँ भी किया जाता है। और तीन बार बाईं ओर से दाहिनी ओर चलने के विषय में वह सोचता है कि हमारा यह काम इसी प्रकार पूरा हो जायगा। इसलिए वह तीन बार बाईं ओर से दाहिनी ओर जल देता हुआ चलता है।४१

अब धोती के निचले भाग को ऊपर उठाकर नमस्कार करता है। नीवि पितरों की है इसलिए उसे खींचकर नमस्कार करता है। नमस्कार यज्ञ है। इस प्रकार वह उनको यज्ञ का अधिकारी बनाता है, छः बार नमस्कार करता है। क्योंकि छः ऋतुएँ होती हैं, ऋतुएं पितर हैं। इस प्रकार ऋतुओं में ही यज्ञ की स्थापना करता है। इसलिए छः बार नमस्कार करता है। अब कहता है—पितरो! हम को घर दो। क्योंकि पितर घर के रक्षक हैं; इस यज्ञ में यह आशीर्वाद है।४२

वे सब यज्ञोपवीत धारण करके तैयारी करते हैं। इस प्रकार यजमान और ब्रह्मा पश्चिम की ओर आते हैं और आग्नीध्र पूर्व की ओर तथा होता अपने स्थान पर बैठ जाता है।४३

अब वह कहता है– हे ब्रह्मा! मैं आगे चलूँगा। अब वह समिधा रखकर कहता है– आग्नीध्र! आग ठीक कर। अब दोनों स्रुचों को लेकर पश्चिम की ओर जाता है। वहाँ जाकर और श्रौषट् कहकर कहता है– देवों के लिए आहुति दे। वह दो अनुयाज देता है, बर्हि का अनुयाज छोड़कर। बर्हि प्रजा है। इसलिए बर्हि का अनुयाज छोड़कर दो अनुयाज ही करता है जिससे प्रजा पितरों के आधीन न हो जाय।४४

अब दोनों स्रुचों को रखकर, अलग-अलग कर और परिधियों को घी में भिगोकर एक परिधि को लेता है और श्रौषट् कहकर कहता है– भद्र कहने के लिये दिव्य होता बुलाये गये और स्तुति के लिये मनुष्य-होता बुलाया गया। होता सूक्तवाक कहता है। अध्वर्यु प्रस्तर को नहीं उठाता, केवल देखता रहता है जबकि होता स्तुति करता है।४५

अब आग्नीध्र कहता है– 'छोड़'। अध्वर्यु कुछ छोड़ता नहीं। केवल चुप चाप अपने शरीर को छू लेता है।४६

अब आग्नीध्र कहता है– संवाद कर। अध्वर्यु पूछता है– हे आग्नीध्र, वह गया ? (उत्तर देता है) वह गया। देव सुनें; दैवी-होता विदा हों। मनुष्य-होता का कल्याण हो। कल्याण के वाक्य कह। यह कहकर वह केवल परिधियों को छूता है। परन्तु अग्नि में डालता नहीं। बर्हि और परिधियों को पीछे से छोड़ता है।४७

कुछ लोग बची हुई हवि को अग्नि में डाल देते हैं परन्तु ऐसा न करना चाहिये। क्योंकि यह आहुति का उच्छिष्ट है। इसलिए ऐसा न हो कि आहुति का शेष छोड़ दिया जाय। इसलिये उसे या तो जल में छोड देना चाहिए या खा लेना चाहिए।।४८ ब्राह्मण २।।[६.१]

अध्याय ६ ब्राह्मण २ त्र्यम्बक–यज्ञ

देवों ने महाहवि के द्वारा ही वृत्र को मारा था। उसी से उनको वह विजय मिली जो उनको प्राप्त है, उनमें से जिनके शरीर में उस युद्ध में वाण लगे थे उनको निकाला। उनको उन्होंने त्र्यम्बक यज्ञ करके निकाला।१

इसलिए जो कोई इस प्रकार यज्ञ करता है वह या तो इसलिये करता है उसके लोगों को कोई तीर न लगेगा, या इसलिए कि देवताओं ने ऐसा किया था। इस प्रकार वह उस सन्तान को, जो उत्पन्न हो चुकी है और जो अभी उत्पन्न नहीं हुई, रुद्र के वश से छुड़ा देता है। और उसकी सन्तान रोग-रहित तथा दोष-रहित उत्पन्न होती है। इसीलिए वह यज्ञ करता है।२

(त्र्यम्बक यज्ञ) रुद्र के लिए किया जाता है, वाण रुद्र के ही हैं। इसलिये रुद्र की ही आहुतियाँ होती हैं। ये एक कपाल के पुरोडाश वाली होती हैं। एक देवता के लिये ही होती है, इसलिये वे एक कपाल की ही होती हैं।३

प्रति पुरुष के लिये १-१ : जितने घर के पुरुष हों उनके लिये १-१ और एक अधिक। १-१ के लिये १-१ – इससे वह उत्पन्न हुई सन्तान को रुद्र के वश से छुड़ाता है। और जो १ अधिक हुई उसके सहारे से जो सन्तान अभी उत्पन्न नहीं हुई उसको रुद्र के वश से छुड़ाता है इसीलिये वे पुरोडाश इतने होते हैं और १ अधिक।४

शतपथ कांड २ अ. ६ ब्राह्मण २

अध्वर्यु यज्ञोपवीत धारण किये हुए उत्तराभिमुख गार्हपत्य के पीछे बैठकर चावल निकालता है। वहाँ से वह उठता है और उत्तराभिमुख खड़ा होकर पछोरता है। अब दृषद और उपल उत्तर की ओर रखता है और गार्हपत्य के उत्तरार्द्ध में कपालों को रचता है। उत्तर की ओर ही क्यों रखता है? इसलिये कि उत्तर रुद्र देव की दिशा है। इसलिए उत्तर की दिशा में रखते हैं ॥५

उनमें घी मिलाना चाहिए, किन्तु हविमें घी मिला होता है, अतः घी न मिलाना ही अच्छा है। यदि घी मिला दिया जायगा तो रुद्र [प्लेग आदि रोग और वैद्य] पशुओं के प्रति आयेंगे। अतः घी नहीं मिलाना चाहिये ॥६

वह एक पात्रमें सबको करके दक्षिणाग्निसे एक जलती लकड़ी लेकर उत्तर की ओर जाकर आहुति दे देता है। क्योंकि उत्तर की दिशा इस देव की है। मार्ग में ही आहुति देता है क्योंकि वह देव (रुद्र) मार्ग में ही चलता है, चौराहे पर ही देता है क्योंकि चौराहे पर ही उसका औषधि रुद्राक्षादि प्राचीन स्थान है, इसलिए चौराहे पर ही आहुति देता है ॥७

पलाश के बीच के पत्ते से आहुति देता है। पलाश वृक्षोंमें ब्राह्मण है इसलिये ब्रह्मके द्वारा ही आहुति देता है। वह सब पुरोडाशों में से १-१ टुकड़ा काटता है, केवल अधिक अतिरिक्त पुरोडाशमें से नहीं काटता ॥८

वह इस मन्त्र को पढ़कर आहुति देता है—

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। य० ३-५७

हे रुद्र, बहिन अम्बिका (विद्या) के साथ यह तेरा भाग है, तू इसे ग्रहण कर। बहिन का नाम अम्बिका (विद्या व आँवा ओषधि) है, उसके साथ मिला हुआ उसका यह भाग है और क्योंकि एक स्त्री उस भाग में सम्मिलित है अतः उन आहुतियों का नाम अम्बिका पड़ा, इन आहुतियों के द्वारा यजमानके जो सन्तान हुई है उसको रुद्रके पंजेसे छुड़ा देता है ॥९

और एक पुरोडाशके अतिरिक्त भागको चूहे के बिलमें गाड़ देता है—

एष ते रुद्र भागऽआखुस्ते पशुः। य० ३-५७

हे रुद्र! यह तेरा भाग है तथा चूहा तेरा पशु है। वह इस प्रकार चूहे को ही नियत कर देता है और वह (रोग) किसी अन्य पशुको नहीं सताता। गाड़ता क्यों है? इसलिये कि गर्भ गुप्त होते हैं तथा जो गड़ा हुआ होता है वह भी गुप्त होता है। इसके द्वारा वह अपनी उस सन्तान

को जो अभी उत्पन्न नहीं हुई रुद्र के पंजे से छुड़ा देता है ॥१०

अब वे लौट कर यह मन्त्र जपते हैं—

अव रुद्र मदीमह्यव देव त्र्यम्बकम् ।

यथा नो वस्यसस्करद् यथा नः श्रेयसस्करद् यथा नो व्यवसाययात्॥

भेषजमसि भेषज गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् ।

सुखं मेषाय मेष्यै ॥ (यजु० ३.५८, ५९)

हम त्र्यम्बक रुद्र को सन्तुष्ट तथा रोगनाश करते हैं कि वह हमें घर आदि से युक्त करे, हमको कल्याण दे और हमको व्यवसायी बनावे।

हे रुद्र ! आप औषध हैं—गाय,घोड़ा, पुरुष के लिये औषध हैं। भेड़ा भेड़ी के लिये सुखद है। अर्थात् सब प्राणियों के लिए सुखके दाता हैं। इस यज्ञ में यह आशीर्वाद है ॥११

अब वे तीन बार वेदि के चारों ओर बाईं ओर से परिक्रमा करते हैं, बाईं जांघों को पीटते हुए तथा यह मन्त्र जपते हुये—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ य० ३-६०

सुगन्धयुक्त और पुष्टि को बढ़ाने वाले त्र्यम्बक का हम यज्ञ करते हैं कि वह हमको मौत के बन्धन से इस प्रकार छुड़ा ले जैसे पका उर्वारुक (खरबूजा) अपने डंठल से छूट जाता है, परन्तु मोक्ष से न छुड़ाये ॥१२

कुमारियाँ भी यज्ञ में परिक्रमा करें इसलिये कि उनका कल्याण हो, रुद्र की बहिन अम्बिका भाग्य की अधिष्ठात्री है। इसलिये कुमारियों को भी परिक्रमा देनी चाहिए,इस इच्छासे कि उनका भाग्य जागे ॥१३

उनके लिये यह मन्त्र है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ।

उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ य० ३-६०

हम पति को प्राप्त कराने वाले सुगन्धयुक्त त्र्यम्बक का यज्ञ करती हैं कि वह हमको इस लोक से, डण्ठल से खरबूजा के समान छुड़ा दे, न कि उस लोक से। इस लोक से तात्पर्य है माता-पिता आदि से। वहाँ से नहीं का तात्पर्य है, पति से नहीं। पति ही स्त्री की प्रतिष्ठा है। इसलिए कहती है वहाँ से नहीं ॥१४

अब वे फिर दाहिनी जाँघों को पीटते हुये और वही मन्त्र जपते हुए वेदी के चारों ओर दाहिनी ओर से फिरते हैं। इसलिये कि वे समझते हैं कि ऐसा करने से हमारे दाहिनी ओर काम सिद्ध होगा। इसलिये वे तीन बार दाहिनी ओर से परिक्रमा देते हैं ॥१५

अब यजमान इस बचे हुये पुरोडाश के भाग को अञ्जलि में लेकर

ऊपर को इप प्रकार फेंकता है कि गो न छू सके और फिर हाथमें लेता है। जो पकड़ में नहीं आवे और गिर पड़ते हैं उनको केवल छू लेता है। इस प्रकार वे उनको औषध के समान बनाते हैं। इसलिए यदि वे पकड़ में नहीं आते तो उठा लेता है ॥१६

अब इनको दो टोकरियों में रखकर या तो बाँस के दो सिरों से या तराजू की डंडी के दोनों सिरों से बाँधकर उत्तर की ओर चलता है। रास्ते में कोई वृक्ष, ठूंठ, बाँस या वल्मीक मिल जाय तो इस मन्त्र से उसमें बाँध देता है—

एतन् ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि । य० ३.६१

हे रुद्र, यह तेरा रक्षक है, इसे लेकर तू मूजवन् (पर्वत) के उस पार जा। रक्षक पदार्थ लेकर ही लोग यात्राको चलते हैं। इसलिये जहाँ जाना हो वहाँ रक्षक पदार्थ लेकर विदा करता है। इस प्रसंग में उसकी यात्रा मूजवत् के उधर है। इसलिए कहता है कि उसके उधर। अब कहता है—

अवततधन्वा पिनाकावसः । य० ३.६१

बिना खिंचे हुए धनुष और वज्रसे युक्त। इससे तात्पर्य है कि हिंसा न करते हुये, कल्याण करते हुए जाओ। अब कहता है—

कृत्तिवासा । य० ३.६१

चर्मवस्त्र पहने हुए। इससे वह उसे सुला सा देता है। सोते हुये कोई किसीको हानि नहीं पहुंचा सकता। इसलिए कहा चर्मवस्त्र पहने हुये।१७

अब वे बिना पीछे देखते हुये दक्षिण की ओर फिरते हैं। लौटकर जल का स्पर्श करते हैं। अब तक रुद्रिय-यज्ञ कर रहे थे। जल शान्ति है, इसलिये शान्तिरूपी जल से अपने को पवित्र करते हैं।१८

अब वह केश और दाढ़ी मुँडवाकर (उत्तर वेदी की) अग्नि लेता है। क्योंकि जगह बदल कर ही तो वह पौर्णमास यज्ञ कर सकता है। यह ठीक नहीं है कि उत्तर-वेदी पर अग्निहोत्र करे, इसलिये वह जगह बदल लेता है। घर जाकर और अग्नियों का मन्थन करके वह पौर्णमास यज्ञ करता है। चातुर्मास्य यज्ञ अलग होते हैं। परन्तु पौर्णमास यज्ञ नियत और प्रतिष्ठित है। अतः वह उस नियत यज्ञ को करके अपने को प्रतिष्ठित करता है। इसलिए जगह बदल देता है ॥१९

ब्राह्मणम् ॥३ [६.२] —०—

अध्याय ६ ब्राह्मण 3 शुनासीर पर्व

जो चातुर्मास्य यज्ञ करता है उसका पुण्य अक्षय है। वह संवत्सर को जीत लेता है इसलिये वह नष्ट नहीं होता। वह इसके तीन भाग करके यज्ञ करता है और जीतता है। संवत्सर का अर्थ है सम्पूर्ण। सम्पूर्ण नाश नहीं होता। इसलिये उसका सुकृत भी अक्षय होता है। वह ऋतु होकर देवों को प्राप्त होता है। देवों में तो क्षय है ही नहीं। इस लिये उसके लिये अक्षय सुकृत होता है। यही प्रयोजन है कि वह चातु-र्मास्य यज्ञ करता है।

शुनासीर यज्ञ क्यों करना चाहिए? साकमेध यज्ञ करने वाले और विजयी देवों की जो श्री थी वह है शुनम्। प्राप्त हुये संवत्सर का जो रस था वह सीर है। साकमेध करने वाले और विजयी देवों की जो श्री थी और प्राप्त हुये संवत्सर का जो रस था उन दोनोंको ग्रहण करके यजमान अपना बना लेता है; इसलिए शुनासीर यज्ञ करता है ।।२

इसकी विधि यह है— उत्तरवेदी नहीं बनाते। नौनी घी नहीं लेते। अग्नि का मन्थन नहीं करते। पांच प्रयाज होते हैं,तीन अनुयाज और एक समिष्ट-यजु: ।।३

पहले साधारण पाँच हवियाँ होतीं हैं। इन्हीं हवियोंसे प्रजापति ने प्रजा उत्पन्नकी थी। इन्हीं के द्वारा दोनों ओर से वरुण के पाश से प्रजा को छुड़ाया, इन्हीं से देवों ने वृत्र को मारा, इन्हीं से उनको यह विजय मिली जो उनको प्राप्त है। और इन्हीं के द्वारा साकमेध-यज्ञ करने वाले और जीतने वाले देवों की जो श्री थी और जो प्राप्त हुए संवत्सर का रस था, उन दोनों को ग्रहण करके अपना बना लेता है। इसीलिए इन पाँच हवियों से यज्ञ करता है ।।४

शुनासीर्य पुरोडाश बारह कपालों का होता है। उसके विषय में पहले ही कह दिया गया ।।५

वायु के लिए दूध की आहुति होती है। प्रजा उत्पन्न होते ही दूध पीती है। वह सोचता है कि मुझ जीते हुये को प्रजा प्राप्त होवे। श्री, यश, अन्न मेरा हो। इसलिये दूध की आहुति होती है ।।६

वायु के लिये क्यों आहुति होती है? यह जो चलता है यह वायु ही तो है। इसीके द्वारा तो वर्षा होतीहै, वर्षासे ओषधियाँ होती हैं। औषध खाकर और जल पीकर ही तो जल में से दूध होता है। इसलिये वायु से ही दूध होता है, इसलिये वायु के लिये आहुति देता है ।।७

अब एक कपाल का पुरोडाश सूर्य के लिए होता है। यह सूर्य ही तो है जो तपता है। यही तो सब की रक्षा करता है, कभी साधु द्वारा कभी असाधु द्वारा। यही सबको धारण करता है; कभी अच्छी किरणों द्वारा कभी तीव्र किरणों द्वारा, यह सोचता है कि मैं विजयी हो गया, अब वह प्रसन्न होकर अच्छी किरणोंसे मेरी रक्षाकरे, मुझे धारणकरे। इसलिये सूर्य का एक कपाल का पुरोडाश होता है ॥ ८

इसकी दक्षिणा सफेद अश्व है। वह उस तपने वाले सूर्य के रूप की होती है ॥६

जब वह साकमेध यज्ञ करे तभी शुनासीर यज्ञ करे। वर्ष में तीन बार करने से सम्पूर्णता मिल जाती है। इसलिए कभी करले ॥१०

कुछ लोग रात्रि को यज्ञ करना चाहते हैं। यदि वह ऐसा चाहे तो जब सामने आकाश में फाल्गुनी पूर्णमासी दिखाई पड़े उस समय शुनासीर यज्ञ को करे ॥११

अब वह दीक्षा लेवे कि कहीं फाल्गुनी पूर्णमासी बिना यज्ञ के न रह जाय। क्योंकि यदि फाल्गुनी पूर्णमासी बिना यज्ञ के बीत जायगी तो उसको फिर प्रयोग करना पड़ेगा। इसलिए फाल्गुनी पूर्णमासी बिना यज्ञ के नहीं बीतनी चाहिए। यह उसके लिए है जो चातुर्मास्य आहुतियों को नहीं देता है ॥१२

जो चातुर्मास्य यज्ञ फिर करना चाहता है, उसे फाल्गुनी पूर्णमासी के पहले दिन शुनासीर यज्ञ करना चाहिए। दूसरे दिन वैश्वदेव यज्ञ, फिर पौर्णमासयज्ञ। यह उसके लिये है जो चातुर्मास्य को फिर आरम्भ करना चाहता है ॥ १३

अब सिर मुँडाना। वह सूर्य तो सब ओर मुख किए रहता है। यह जो कुछ सूखता है उसे सूर्य ही तो पीता है। इसलिए यह सर्वतोमुख और अन्नाद हो जाता है ॥१४

यह अग्नि भी सर्वतोमुख है। क्योंकि जो कुछ अग्नि में जिधर से भी डाला जाय भस्म हो जाता है। इसलिए यह भी सर्वतोमुख अन्नाद हो जाता है ॥१५

यह पुरुष तो एक ही ओर मुख रखता है, परन्तु जो सिर मुँडाता है वह सर्वतोमुख हो जाता है और जो इस रहस्य को समझ कर सिर मुँडाता है वह दोनों [अग्नि तथा सूर्य] के समान अन्नाद होता है। इसलिए उसको बिल्कुल सिर मुँडाना चाहिए ॥१६

इस विषय में आसुरि की राय थी कि चाहे सब लोम मुँडा लें तो भी इससे और से क्या मुखसम्बन्ध ? वर्ष में तीन बार यज्ञ करने से

ही सर्वतोमुख और अन्न पचाने वाला होता है। इसलिये सिर मुँडाने की कोई आवश्यकता नहीं ॥१७

अध्याय ६ ब्राह्मण ४

यह जो कहा गया है कि देवों ने साकमेध यज्ञ के द्वारा वृत्र को मारा और उस विजय को पा लिया जो उनको प्राप्त है। यह सभी चातुर्मास्य यज्ञोंके द्वारा ऐसा हुआ कि देवों ने वृत्र को मारा और जो विजय उन को प्राप्त है वह सभी चातुर्मास्यों के द्वारा हुई है ॥१

उन्होंने कहा– किस राजा के द्वारा और किस नेता की सहायता से हम लड़ेंगे ? अग्नि ने कहा–मुझ राजा और नेता की सहायता से। अग्नि राजा तथा अग्नि नेता की सहायता से उन्होंने चारों महीनों को जीता। तथा ब्रह्म एवं तीन विद्याओं की सहायता से उन(महीनों) को घेरा ॥२

उन्होंने कहा— किस राजा तथा नेता की सहायता से हम लड़ेंगे ? वरुण ने कहा– मुझ राजा तथा मुझ नेता की सहायता से। उन्होंने वरुण राजा तथा वरुण नेता की सहायता से दूसरे चार महीनों को जीता और ब्रह्म एवं तीन विद्याओं की सहायता से उनको घेरा ॥३

उन्होंने कहा–किस राजा और किस नेताकी सहायतासे हम लड़ेंगे। इन्द्र ने कहा– मुझ राजा और मुझ नेता की सहायता से। इन्द्र राजा तथा इन्द्र नेता की सहायता से उन्होंने शेष चार महीनों को जीता। और उनको ब्रह्म तथा विद्याओं की सहायता से घेरा ॥४

१— जब वह वैश्वदेव यज्ञ करता है तो इसी अग्नि राजा एवं अग्नि नेता की सहायता से चारों महीनों को जीतता है। [सिर मुँडाने के लिये] श्येनी शलली [साही का काँटा जिसमें तीन धब्बे हों] और लोहे का उस्तरा होता है। श्येनी शलली तीन विद्याओंका रूप है तथा उस्तरा ब्रह्म का रूप है। अग्नि ब्रह्म है अग्नि लाल है इसलिए लोहे का उस्तरा होता है। उससे चारों ओर मुँडवाता है। इस प्रकार वह [अध्वर्यु को] ब्रह्म और तीन विद्याओं से घेरता है ॥५

२— जब वह वरुण-प्रघास यज्ञ करता है तो वरुण राजा और वरुण नेता के द्वारा दूसरे चार महीनों को जीतता है। तब भी श्येनी शलली और ताँबे का उस्तरा काममें आता है। उसी से सिर मुड़ता है। इस प्रकार ब्रह्म तथा तीन विद्याओं की सहायता से उसको घेरता है ॥६

३— जब वह साकमेध यज्ञ करता है तो इन्द्र राजा और इन्द्र नेता की सहायता से शेष चार मासों को जीतता है। तब भी श्येनी शलली और लोहे के उस्तरे से मुण्डन होता है और ब्रह्म तथा तीन विद्याओं की सहायता से उसको घेरता है ॥७

जब वह वैश्वदेव यज्ञ करता है तो अग्नि ही हो जाता है तथा अग्नि के सायुज्य और सालोक्य को प्राप्त होता है। जब वह वरुण-प्रघास यज्ञ करता है तो वरुण हो जाता है और वरुण के सायुज्य और सालोक्य को प्राप्त होता है। जब वह साकमेध यज्ञ करता है तो इन्द्र हो जाता है और इन्द्र के ही सायुज्य और सालोक्यको प्राप्त होता है ॥८

वह जिस ऋतु में परलोक को जाता है वह ऋतु उसको दूसरी ऋतु के समर्पण करती है, और वह अपने से आगेवाली ऋतु के समर्पण करती है। जो चातुर्मास्य यज्ञ करता है वह परम धाम तथा परम गति को प्राप्त होता है, इसीलिये कहा है कि चातुर्मास्य यज्ञ करने वाले को समता कोई नहीं पाते, क्योंकि वह परमधाम और परमगति को प्राप्त हो जाता है ॥ ९

ब्राह्मणम् ॥५ [६.४] पञ्चम प्रपाठकः ॥ कण्डिका संख्या १०४ ॥
षष्ठोऽध्यायः [१५] अस्मिन्काण्डे कण्डिका संख्या ॥ ५४६ ॥

इति माध्यन्दिनीये शतपथब्राह्मणे एकपादिकानाम
द्वितीयं काण्डं समाप्तम् ॥

माध्यन्दिनीय शतपथ ब्राह्मण के वीरेन्द्रमुनि शास्त्री कृत अनुवाद का एकपादिक नाम द्वितीय काण्ड समाप्त हुआ ॥

द्वितीय-काण्ड

प्रपाठक	कण्डिका संख्या
प्रथम (२.२.२)	११४
द्वितीय (२.३.२)	१०३
तृतीय (२.४.३)	११२
चतुर्थ (२.५.३)	११५
पञ्चम (२.६.४)	१०४
योग	५४६
पूर्व की कण्डिका	८३८
पूर्णयोग	१३८७

—❀—

वीरेन्द्र मुनि शास्त्री

अनुवादक

शुद्धि पत्रम्
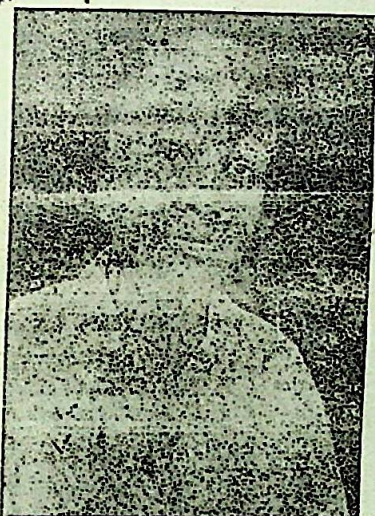
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	३	तस्प्रा	प्रस्ता
१७	३३	लिय	लियकु
२५	३४	दृहे	दंह
१६५	३३	२,१५	३.१६
१९५	१	पर	पत
२०६,२११	१	३.६०	३६१

पृष्ठ १९९ से २०६ तक के स्थान में पृष्ठ १९७ से २०४ शुद्ध करे ।